इन्दिरा गांधी का राजनीतिक खेल

जनार्दन ठाकुर

“सब दरबारी” और “ये नये हुक्मरान” जैसी सर्वप्रिय पुस्तकों के लेखक जनार्दन ठाकुर ने एक बार फिर यथार्थ को गहराई से देखने वाली अपनी पैनी दृष्टि उस घटनाक्रम पर डाली है, जिसने देश को उसके मौजूदा राजनैतिक गतिरोध तक पहुँचा दिया है।

इन्दिरा गांधी के सत्ता से हटाये जाने के समय से आरम्भ करके इस खोजपूर्ण विवरण में यह दिखाया गया है कि जनता पार्टी के शासनकाल में जो कुछ होता रहा, उसकी वजह से इन्दिरा गांधी का पलड़ा ही लगातार भारी होता गया है; जनता पार्टी के शासकों के सर पर श्रीमती गांधी के फिर से सत्ता की बागडोर संभाल लेने के आतंक का जो भूत सवार रहा है, उसकी बदौलत वह हमेशा घटनाओं के मंच पर सबसे आगे रही हैं; और अन्ततः यह कि मोरारजी देसाई का तख्ता उलटने और चरणसिंह की सफलता की चार दिन की चाँदनी की वजह से सबसे अधिक लाभ श्रीमती गांधी को ही हुआ है।

जनार्दन ठाकुर अपने इस हृदयग्राही विवरण में हमें श्रीमती गांधी की वापसी के इस पूरे चमकदार रास्ते से होकर ले जाते हैं और परदे के पीछे होने वाली घटनाओं पर से पहली बार परदा हटा कर उनका जीता-जागता चित्र हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

25 रुपये

क्रुपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

१५।१२।८१

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

इन्दिरा गांधी
का
राजनीतिक खेल

राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा प्रकाशित
जनार्दन ठाकुर की अन्य पुस्तकें :

ये नये हुक्मरान !
सब दरबारी

इन्दिरा गांधी
का
राजनीतिक खेल

जनार्दन ठाकुर

अनुवादक
दीनानाथ मिश्र

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
Vikas House, 20/4 Industrial Area,
Sahibabad, Distt. Ghaziabad
in the English language under the title
INDIRA GANDHI AND HER POWER GAME

प्रथम हिन्दी संस्करण : नवम्बर 1979

मूल्य
25 रुपये
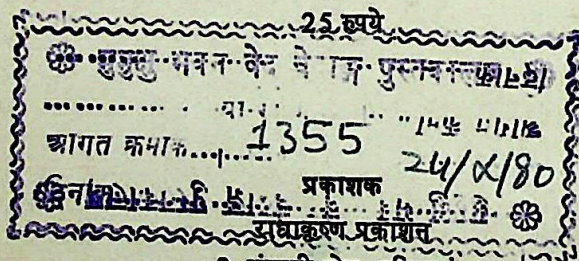
प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मुद्रक
भारती प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

भूमिका

1977 की जुलाई में जब मैंने सब दरबारी लिखना ख़त्म किया तो इंदिरा गांधी से संबंधित तमाम कतरनों को लिफ़ाफ़ों में टेपबंद करके अपनी फ़ाइलों की अलमारी के सबसे निचले ख़ाने में रख दिया। सोचा था, अब इसकी ज़रूरत कभी नहीं पड़ेगी। कभी फेंकने के लिए ही इसे निकालना पड़ सकता है। लेकिन कितना ग़लत था मैं ! कुछ ही महीनों में कई नोटबुकें श्रीमती गांधी की रपटों से भर चुकी थीं। तमाम जनता लीडरों पर मेरे पास जितने नोट थे उससे तीन गुने अकेले श्रीमती गांधी पर थे। केवल ऐसा नहीं था कि राजनीतिक मंच पर वह भी थीं, बल्कि सच तो यह है कि वह उसके केंद्र में पूरी सज-धज के साथ खड़ी थीं और लोग उनके चारों ओर नाच रहे थे। क्या हुआ अगर कुछ लोग उनके ख़ून के प्यासे थे ! सब-कुछ श्रीमती गांधी के पक्ष में जा रहा था।

श्रीमती गांधी की ज़्यादतियों ने जनता पार्टी को जन्म दिया, लेकिन अब घड़ी का पेंडुलम झूलकर दूसरी तरफ़ पहुँचता नज़र आ रहा था। यह कहा जाने लगा था कि वही देश में व्यवस्था और अनुशासन वापस ला सकती हैं। साफ़ है कि बहुत-से लोग इस जाल में फँसने को आतुर थे। उनके 'चमत्कारी नेतृत्व' का जाल फिर कारगर होने लगा। आख़िर उनका यह चमत्कार है क्या चीज़ ? उनके पास देश को देने के लिए क्या है? उन्हें प्रधानमंत्री के रूप में पी० एन० हक्सर से ज़्यादा क़रीब से किसी ने नहीं जाना। हक्सर ही थे जिन्होंने श्रीमती गांधी के इर्द-गिर्द महानता का रहस्यमय प्रभामंडल बनाया था। और अगर आप श्रीमती गांधी के बारे में उनकी राय जानना चाहते हैं तो वह आपको उनके बारे में अपना अंदाज़ा बतायेंगे कि "उनमें कुछ भी नहीं है, कोई निष्ठा नहीं है, कोई सार नहीं है।" जो कुछ है वह यह कि सत्ता पा लेने की प्राथमिक सफलता के लिए ज़रूरी सारे तत्व और तमाम प्रचार-साधनों पर पूरी पकड़—जो अति मानवीय व्यक्तित्व वाली नेत्री की तरह उन्हें उछाल सके। अलावा इसके कड़वाहट और असंतोष से भरे ऐसे लोगों में, जो मुक्तिदाता के सामने सिर झुकाकर सब-कुछ समर्पित करने को तैयार होते हैं, राजनीतिक सूझ-बूझ का अभाव—ऐसे ही लोग अनेक तानाशाहों के लिए रास्ता साफ़ कर देते हैं।

केवल पैंतरेबाज़ी करते जनता-नेताओं ने ही श्रीमती गांधी के सत्ता-अभियान में सहायता की हो सो बात नहीं है, हम सबने की है। जब मैंने यह पुस्तक लिखना

प्रारंभ किया तो अपने पत्रकार-मित्रों से पूछा कि पिछले 28 महीनों में प्रचार-तंत्र ने श्रीमती गांधी के साथ कैसा सलूक़ किया ? एक मित्र के जवाब का लुब्बो-लुबाव यह था कि "प्रचार-तंत्र श्रीमती गांधी से ग्रस्त था। भारतीय पत्रकार श्रीमती गांधी के पीछे इस तरह लगे रहते हैं जैसे अँग्रेज़ अपनी साम्राज्ञी के पीछे लगे रहते हैं। वे मानते हैं कि उनकी अच्छी ख़बर बनेगी। वे सही हो सकते हैं। पर ज्यादा-तर पत्रकारों ने उन्हें उससे कहीं अधिक छापा जितने की वह हक़दार थीं। उन्होंने श्रीमती गांधी के भूत, वर्तमान और भविष्य के सही आकलन के लिए अपनी विवेक बुद्धि का इस्तेमाल नहीं किया। अधिकार रखने वालों और संपादकीय पृष्ठों के ज़िम्मेदार लोगों ने श्रीमती गांधी के ख़ेमे से देश की लोकतंत्री संस्थाओं के विरोध में बजने वाली ख़तरे की घंटी की आवाज़ का मतलब पूरी तरह नहीं समझा। इसकी दो वजहें हो सकती हैं : एक तो यह कि देश के ज्यादातर पत्रकारों के निहित स्वार्थ हैं, क्योंकि वे इस या उस पार्टी के संबंधित हैं। दूसरे यह कि श्रीमती गांधी के विरोधी पत्रकारों के दिमाग़ में यह आशंका रही है कि अगर वह सत्ता पर फिर क़ाबिज़ हो जाती हैं तो उनकी नौकरी चली जायेगी, या फिर आगे बढ़ने के मौक़े ख़त्म हो जायेंगे। वरिष्ठ पत्रकारों की आकांक्षा होती है कि उनकी बहाली कहीं विदेश में हो जाये, या उन्हें कोई राजनीतिक पद मिल जाये। इस तरह की आकांक्षाओं के रहते किसी पत्रकार की क़लम आज़ाद नहीं रह सकती। वह सही और खरी बातें नहीं लिख सकता। जब कोई संपादकीय लेखक अपने टाइपराइटर पर उँगली रखता है, तो एक बार तो उसके दिमाग़ में यह विचार आता ही है कि कहीं वह सत्ता में फिर तो नहीं आ जायेंगी ! उसकी राय पर इस डर का असर पड़ता है।"

मैं खुद यह क़बूल करता हूँ कि मैं भी श्रीमती गांधी से ग्रस्त हूँ। निश्चय ही मैंने उनके बारे में इतना लिखा है जितना और किसी के बारे में नहीं। लेकिन मैंने अपनी योग्यता के मुताबिक़ ठीक वैसा ही देखने की कोशिश की है, जैसी कि वह हैं। और इन्हीं सबके बारे में यह किताब है।

आपको यह पुस्तक सौंपने के पहले मुझे अपने उन मित्रों और साथियों को धन्यवाद देना है, जिन्होंने मेरी इस पुस्तक के सिलसिले में मेरी मदद की या मेरा हौसला बढ़ाया। इस पुस्तक में दिये गये चित्रों के लिए मैं अविनाश पसरीचा, प्रमोद पुष्करणा, मंदिरा पुरी, कृष्णमुरारी किशन, गिरजाशंकर सिंह, मदन मलहोत्रा, राजेंद्र सरीन, विजय वशिष्ठ, पाना इंडिया और फ़ोकस का आभारी हूँ।

मेरी पत्नी और बच्चों के उकसावे और मदद के बिना इस पुस्तक को पूरा होने में एक ज़माना लग जाता। मैं ख़ासतौर पर एहसानमंद हूँ इनका।

—जनार्दन ठाकुर

दामोदर, केशव, मधुसूदन, प्रियदर्शी,
गीता, सीता और प्रभा को

—जनार्दन

क्रम

1

उन आँखों में आँसू

ऐसी रात पहले कभी नहीं आयी थी। शायद ही कोई सोया हो। देश के इस कोने से उस कोने तक, शहरों और क़स्बों में, तमाम लोग सड़कों पर निकल आये थे। गाँवों में भी जहाँ कहीं रेडियो था, लोग उसे घेरे खड़े थे।

यह रात थी 20 मार्च, 1977 की। जीतनेवालों में हर्षोन्माद पैदा करने वाली, हारने वालों पर वज्राघात करने वाली रात।

दिल्ली की खुशियों का तो पारावार नहीं था। आधी रात बीत जाने के बाद तक चुनाव-परिणामों के लिए लगाये गये बोर्डों पर बेतहाशा भीड़ उमड़ रही थी। बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग से तिलक ब्रिज तक कारों, स्कूटरों और लोगों का अभूतपूर्व जमावड़ा था। कुछ ढोल ले आये थे, कुछ बिगुल बजा रहे थे। हर घिनौने नाम के हारने की ख़बर के साथ खुशी की पागल चीख़ों का उफान आ जाता था। तुलना में कितनी अजीब थीं वे यादें जो 1971 के दिसंबर में तब गुज़री थीं, जब लाहौर के आकाश पर भारत का क़ब्ज़ा था। वे दिन थे जब बहुतों ने इंदिरा गांधी को 'दुर्गा' तक कहा था। अब वह रद्दी की टोकरी में पड़ी थीं। देखते-देखते बिलकुल अचानक उनकी शक्ति अस्त हो गयी, उनकी महिमा धूल-धूसरित हो गयी।

धनुष की तरह टँगा हुआ आकाश सारे शहर पर एक-सा था। 1, सफ़दरजंग रोड पर भी, जहाँ सत्ता 11 लंबे वर्षों तक केंद्रित रही और बाक़ी शहर पर भी। लेकिन 1, सफ़दरजंग रोड उदास चुप्पी के घने कोहरे में डूबा हुआ था। ऐसी ठोस चुप्पी जिसे आप छूकर देख सकते थे। वे दो आयरिश खूँख़ार कुत्ते भी कुछ सूँघकर पस्त चुप्पी साधे थे। जब श्रीमती गांधी की तीस वर्षों की चहेती मित्र पुपुल जयकर (उस समय अखिल भारतीय हथकरघा मंडल की अध्यक्षा) क़रीब 9 बजे आयीं तो भी वे नहीं भूँके। उस दिन वहाँ कारों का जमावड़ा नहीं था, लोगों की गहमागहमी नदारद थी। श्रीमती जयकर को बैठक का रास्ता दिखा दिया गया। श्रीमती गांधी अकेली बैठी थीं, विचारों में खोयी हुईं। जब अपनी मित्र को देखा

तो कुछ मुसकरायीं, उठीं और उन्हें गले लगा लिया।

"पुपुल, मैं हार गयी," यह श्रीमती गांधी की आवाज़ थी। श्रीमती जयकर ने यह तो सुन रखा था कि वोटों की गिनती में वह पिछड़ती जा रही हैं, लेकिन अंतिम तौर पर हारने के समाचार से वह बिलकुल हतप्रभ रह गयीं। "क्या तुम्हें पक्की सूचना है, इंदिरा?" उनका सवाल था। श्रीमती गांधी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा। वे दोनों अगले तीन घंटे तक साथ थीं, पर दोनों में से किसी ने कुछ विशेष बातचीत नहीं की। उन दोनों में संवाद के लिए मौन की भाषा उस समय काफ़ी थी। श्रीमती जयकर ने अनुभव किया कि श्रीमती गांधी का चेहरा कुछ दार्शनिक सरीखा निष्क्रिय था। उनमें एक निश्चल साहस, एक अजीब अंदरूनी गरिमा थी। श्रीमती गांधी को अंदर से नापने के लिए उनके पास कोई पैमाना नहीं था। क्या वह पुरानी यादों में खोयी थीं? क्या वह डरावने भविष्य को टटोल रही थीं? या उनका दिल अपने बेटे पर लगा था जो सुलतानपुर से लौटने के धूल-भरे रास्ते में था।

हार की बात पक्की हो जाने के बाद संजय गांधी और उनकी पत्नी—दोनों अपने एक दर्जन तगड़े रक्षकों के साथ लखनऊ लौट गये और अपने विश्वसनीय अंतरंग मित्र मुख्यमंत्री नारायणदत्त तिवारी के साथ अपने कमरे और टेलीप्रिंटर के कमरे के बीच चक्कर लगाते रहे (इंडियन एक्सप्रेस, 21 मार्च, 77)। वे बिलकुल टूटे हुए नज़र आ रहे थे। टेलीप्रिंटर के समाचार के पढ़ते हुए उन्होंने एक अफ़सर से पूछा, "ममी का क्या हाल है?" वोटों की गिनती में ममी के भी पिछड़ते जाने के समाचार से वे बिलकुल सन्न रह गये। 11 बजे रात को पति-पत्नी—दोनों एक विशेष विमान से दिल्ली आ गये।

चुनाव के कुछ दिन पहले श्रीमती गांधी को इसका पूर्वाभास हो गया था कि वह हारेंगी। आई॰ बी॰ अथवा 'रा' की गुप्तचर सूचनाओं से वह ज्यादा चिंतित नहीं थीं। न ही यह अख़बारों की दबी-ढँकी इन चेतावनियों का असर था कि उनकी पार्टी भारी पराजय की कगार पर खड़ी है। क्या निराशा के इन मसीहाओं ने पहले ऐसी बातें नहीं कही थीं? क्या 1971 में भी इन्होंने उनकी पराजय की भविष्यवाणी नहीं की थी? उनको चिंता हुई थी अचानक रुद्राक्ष की उस माला के टूट जाने से, जो उनकी आध्यात्मिक गुरु आनंदमयी माँ ने उन्हें दी थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी मनकों को बटोरा, पर वे पहले से कम थे। वह खोये हुए मनकों को ढूँढ नहीं पायीं। श्रीमती गांधी ने इसे अशुभ संकेत माना था।

हे भगवान! क्यों मैंने संजय गांधी की बात नहीं सुनी? वह कितना ज़ोर दे रहा था कि चुनाव न करायें। उनके प्रतिरक्षा-मंत्री बंसीलाल भी यही कह रहे थे। संजय और बंसीलाल—दोनों ने आपस में मशविरा करके अगले क़दमों का फ़ैसला तक कर लिया था। इस दिशा में पहले क़दम के रूप में वे संविधान सभा का गठन चाहते थे। उन्होंने तो लोगों को इस मत के पक्ष में करना भी शुरू कर दिया था। कहा यह जाता है कि इसमें श्रीमती गांधी की सहमति नहीं थी। लेकिन ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठे उनके अंतरंग भक्त इस दिशा में उनके साथ बढ़ने को तैयार हो चुके थे। 'संविधान पर एक नयी दृष्टि' नामक दस्तावेज़ लोगों तक पहुँच भी चुका था। इसमें फ्रांस के द गाल के ज़माने के राष्ट्रपति-शासन की पद्धति और सर्वोच्च न्यायालय के ऊपर 'न्यायपालिका की वरिष्ठ परिषद' का प्रावधान रखा गया था। असल में वे देश की मौजूदा न्यायपालिका के फ़ैसलों से कुपित थे और यह रास्ता उसी कोप का नतीजा था। खुद श्रीमती गांधी भी इस पक्के मत की हो

गयी थीं कि संविधान में परिवर्तन की ज़रूरत है, पर उन्हें इस बात का भरोसा नहीं था कि वह इन परिवर्तनों को अपनी पार्टी के लोगों के गले के नीचे भी उतार सकेंगी। आपात-स्थिति और प्रेस-सेंसर के बावजूद इसका जैसा व्यापक विरोध हुआ उससे श्रीमती गांधी के इरादे कमज़ोर पड़ गये और एक आदर्श लोकतंत्रीय चेतना के साथ उन्होंने घोषणा की कि "देश की संपूर्ण जनता की सहमति से ही यह निर्णय लिया जा सकता है" (द फ़ार ईस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू, 16 जनवरी, 1977)। उन्होंने इस योजना को अपनी मौत मर जाने दिया। क्या यह एक ग़लती थी?

अगर ये विचार उस रात उनके दिमाग़ में घूम भी रहे थे तो उनका चेहरा इस बात को नहीं दर्शा रहा था। उनके विशेष दूत मुहम्मद यूनुस बुझे हुए चेहरे के साथ अंदर घुसे—मरियल और परेशान मुद्रा में। उनके व्यक्तिगत सहायक श्री आर० के० धवन मुसकराते चेहरे के साथ एक चिट लेकर आये। साफ़ था कि सीधी टेलीफ़ोन-लाइन पर प्राप्त रायबरेली के नवीनतम आँकड़े उसमें थे। उन्होंने उसे बहुत शांति से लिया और श्रीमती जयकर को खाने पर आमंत्रित किया। लेकिन तब राजीव और सोनिया कहाँ थे? उन्हें बताया गया कि उनकी खाने की इच्छा नहीं है। श्रीमती गांधी ने ज़ोर दिया कि 'नहीं, उन्हें खाना पड़ेगा।' उनकी इटैलियन पुत्र-वधू सोनिया आँसू पोंछती हुई आयी। पीछे-पीछे राजीव भी परेशान किंतु शांत मुद्रा में आकर बैठ गया। श्रीमती जयकरने बाद में लिखा कि "वे फलों को उलटते-पुलटते समय काटते रहे।" जब श्री धवन ने आकर यह बताया कि वह 25 हज़ार मतों से पीछे हैं, तब भी श्रीमती गांधी ने अपना संतुलन खोया नहीं। बिना ज़्यादा जानकारी प्राप्त किये श्रीमती गांधी ने मंत्रिमंडल की बैठक बुला ली। श्रीमती जयकर आधी रात के क़रीब जब रवाना हो रही थीं, उस समय मंत्रिगण आने लगे थे। एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया जाना था। आपात-स्थिति को ज़्यादा देर किये बिना ख़त्म करना था। श्रीमती गांधी को भय था कि इसका इस्तेमाल उनके ही ख़िलाफ़ हो सकता है, उनके सलाहकारों ने उन्हें ऐसा बताया। उन्होंने बड़ी तेज़ी से आपात-स्थिति को ख़त्म कर दिया। आधी रात को मंत्रिमंडल की बैठक भी उतनी ही जल्दी ख़त्म हो गयी। आपात-स्थिति लागू करते समय श्रीमती गांधी ने मंत्रिमंडल की तनिक भी चिंता नहीं की थी। लेकिन अब सही तरीक़े से चल रही थीं, ताकि कोई इसकी समाप्ति की वैधता को क़ानूनी चुनौती न दे सके। वह हर तरह के भय से आतंकित थीं, लेकिन अंदर की उन हिलोरों को चेहरे पर नहीं आने दे रही थीं।

उनके मंत्रिमंडल के साथी, जिनके साथ वह चपरासियों जैसा बरताव करती आयी थीं, श्रीमती गांधी के उस रात के शालीन और मधुर व्यवहार को देखकर चकित थे। वह उन्हें विदा करने के लिए पोर्टिको तक बाहर भी आयी थीं। यह एक अस्वाभाविक संकेत था। ख़्वाजा अहमद अब्बास ने, जिन्होंने उस घटनामय दिन की छोटी-छोटी बातों को बड़ी मेहनत से महीनों तक इकट्ठा किया, लिखा है:

> जब आख़िरी कार चली गयी तो वह अकेली खड़ी रह गयीं। फिर वह घर के अंदर गयीं, जिसे (अचानक उन्हें ख़याल आया) अब अपना कहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं रह गया था। बाहर संतरी के जूतों की खट-खट और उसकी राइफ़ल की आवाज़ आ रही थी। उन्होंने नौकर को आवाज़ दी:

'कोई है !' कोई नहीं था। वह टेलीफ़ोन की तरफ़ गयीं। रिसीवर उठाया, आपरेटर की उनींदी आवाज़ थी : 'यस माम ! क्या रायबरेली से मिला दूं ?' वह कैसे जान गया ? उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने ऊँची आवाज़ में कहा, 'नहीं, ओम मेहता से मिला दो।' वह जानती थीं कि ओम मेहता के पास रायबरेली से संपर्क करने के ज्यादा साधन हैं। ('20 मार्च, 1977' नामक किताब से)।

21 मार्च, 1977 की सुबह तक सारा संसार जान गया था कि एक और राज का अंत हो गया। रायबरेली में श्रीमती गांधी के चुनाव-एजेंट श्री फ़ोतेदार की फिर से चुनाव कराने की, या कम-से-कम फिर गिनती कराने की तमाम कोशिशें विफल हो गयीं। ये कोशिशें इसलिए थीं कि रायबरेली के चुनाव परिणाम की घोषणा को रोके रखा जा सके। श्रीमती गांधी के हर तरह के काम करने वाले मुख्य सेवक यशपाल कपूर भी, जिन्होंने 'रायबरेली के राजकुमार' का ख़िताब हासिल किया था, अदालत के कमरे में इधर-उधर चक्कर लगाने, कभी नयी दिल्ली ओम मेहता को टेलीफ़ोन करने, कभी लखनऊ में मुख्यमंत्री या सचिव को टेलीफ़ोन करने, कभी दिल्ली में गृह-सचिव खुराना को टेलीफ़ोन करने के अलावा कुछ नहीं कर सके। नौजवान ज़िलाधीश विनोद मल्होत्रा ने दबाव में आने से इंकार कर दिया और अधिकृत रूप से घोषणा की : "श्रीमती गांधी को 1,22,517 वोट मिले...और श्री राजनारायण को 1,77,719 वोट मिले और वह निर्वाचित घोषित किये जाते हैं।"

श्रीमती गांधी ने जाकर सो जाने का फ़ैसला किया।

सुबह जब वह उठीं तो कुछ भ्रमित, कुछ बेचैन-सी थीं। बदली हुई परिस्थितियों में उन्हें कैसा बरताव करना चाहिए, यह वह सोच नहीं पा रही थीं। लेकिन जैसे-जैसे उनके दल के साथी आते गये और उनमें अपना विश्वास प्रकट करते गये वैसे-वैसे उनमें आत्मविश्वास लौटने लगा। उनकी नज़र वहाँ पर हाथ जोड़े खड़े गुरदयालसिंह ढिल्लों और राजबहादुर पर गयी। उनसे यह सुनना कि केवल वही कांग्रेस को बचा सकती हैं, कितना विश्वासदायक था ! कांग्रेस-अध्यक्ष देवकान्त बरुआ भले ही पहले के मुक़ाबले कुछ कम आदर-भाव से बोल रहे थे। वह जो कुछ कह रहे थे तहेदिल से कह रहे थे या नहीं, लेकिन मौक़े की सही बातें कह रहे थे : "देश को आपकी ज़रूरत है। आपको राजनीति में रहना चाहिए।" वह हर शब्द सुन रही थीं। हर नज़र को पहचान रही थीं। हर व्यक्ति को तोल रही थीं। संजय ने पहले ही से उन्हें चेतावनी दे रखी थी कि "चूहे डूबते हुए जहाज़ को छोड़ भागेंगे" (इंडिया टुडे, 1-15 सितंबर 1977)। अब उसके शब्द श्रीमती गांधी के लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण थे। अब कोई क़दम बनाने के पहले उन्हें सोचना होगा, ज़्यादा सावधान रहना होगा।

कार्यकारी राष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती को 22 मार्च को अपना त्यागपत्र सौंपने के पहले उन्होंने अपने मंत्रिमंडल की आख़िरी बैठक बुलायी थी। उनके साथियों ने, जिनमें से अधिकांश ख़ुद भी मतदाताओं के हाथों पिट चुके थे, श्रीमती गांधी की "विशिष्ट सेवाओं" की "गहरी सराहना" को दर्ज कराया। स्वयं उन्होंने त्यागपत्र देने के बाद की अपनी पहली घोषणा को यथासंभव शालीन और विनम्र बनाते हुए कहा, "जनता के सामूहिक निर्णय का आदर किया ही जाना चाहिए।

मैं और मेरे साथी इस आदेश को तहेदिल से और पूरी विनम्रता से स्वीकार करते हैं।" और एक सच्चे लोकतंत्रवादी की तरह उन्होंने नयी सरकार को 'रचनात्मक सहयोग' देने का वादा किया। एक भावविभोर संवाददाता ने लिखा : "आधुनिक भारत के इतिहास की कई राजनीतिक उठापटकों की दिलेर नेत्री ने, जो मतपत्रों के युद्ध में पराजित हो गयी थीं, अपने ग्यारह वर्षों के ऐतिहासिक और घोर विवादास्पद शासन के अवशेषों को बड़े ही शालीन और शांत ढंग से समेटा" (ए० एन० दर, इंडियन एक्सप्रेस, 23 मार्च, 1977)।

ऐसा लगता था कि वह राजनीति से अवकाश लेने जा रही हैं—कम-से-कम कुछ समय के लिए तो ज़रूर। ऐसा ही संकेत उन्होंने उस समय कुछ लोगों को दिया था। अपनी योजनाओं के बारे में वह स्पष्ट नहीं थीं। अपने कुछ साथियों से उन्होंने यहाँ तक कहा था कि वह कहाँ रहेंगी और कैसे जीवनोपार्जन करेंगी, इसके बारे में भी उन्होंने कोई फ़ैसला नहीं किया है। दो हफ़्ते बाद एक संवाददाता से बात करते हुए ठीक यही उन्होंने कहा था (स्टेट्समैन, 7 अप्रैल, 1977)। कहा था कि अभी वह "मकान खोज रही हैं।" सामान की पैकिंग का ढेर सारा काम पड़ा हुआ है। अपने कुछ साथियों और समर्थकों से उन्होंने बड़े गोलमोल ढंग से कहा था कि वह कुछ महीनों तक किसी आश्रम में या देहरादून की किसी शांत जगह में रहेंगी। बहुत सोच-समझकर यह बात फैलायी गयी कि एक पूंजीपति ने उनके घर का ख़र्च चलाने का प्रस्ताव किया है, ताकि दुनिया को दिखाया जा सके कि सचमुच उन्हें पैसे की बड़ी तंगी है।

विरक्ति की उनकी यह मुद्रा बड़ी सोची-समझी थी। यह दल के अपने साथियों की थाह लेने की चाल थी—यह जानने की कि वह कहाँ खड़े हैं? सरकारी सत्ता उनके हाथ से निकल गयी थी, लेकिन दल पर अपनी पकड़ को वह नहीं छोड़ना चाह रही थीं। अपने दल के लोगों के बारे में वह जानती थीं कि वह किस मिट्टी के बने हैं और इसलिए वह मानती थीं कि उनमें से बहुत कम लोगों में उनके नेतृत्व को चुनौती देने की हिम्मत है। उन्होंने अपने शत्रुओं को पहचान लिया था, ख़ासकर उन शत्रुओं को जो उनके बेटे पर हमला करते रहते थे। उन्होंने काफ़ी पहले ऐलान कर दिया था कि संजय पर किया गया हर हमला उन पर किया गया हमला है। अब यह बात ज्यादा सही थी। वह किसी को भी बरदाश्त कर सकती थीं, पर संजय-विरोधियों को नहीं।

उनमें से एक सुभद्रा जोशी थीं। अरसे से वह श्रीमती गांधी की दोस्त रही थीं, लेकिन आपात-स्थिति के दौरान जिस दिन से वह संजय की गतिविधियों का विरोध करने लगीं, उसी दिन से वह श्रीमती गांधी का कोपभाजन बन गयीं। श्रीमती जोशी के मन में श्रीमती गांधी के लिए सहानुभूति थी। वह चाहती थीं कि एक पुराने मित्र के नाते वह उनके पास जायें और अपना शोक प्रकट करें। वह साहस बटोरकर उनके पास गयीं। जैसे ही वह कमरे में गयीं, श्रीमती गांधी ने अंगारे बरसाती हुई दृष्टि से उनकी तरफ़ देखा। कुछ क्षणों के लिए श्रीमती गांधी बिना बोले खड़ी रहीं। तब सुभद्रा जोशी ने पूछा, "क्या मैं बैठ सकती हूँ?"

"बैठ जाओ।" श्रीमती गांधी ने बड़ी रुखाई से जवाब दिया। दोनों बैठ गयीं, एक-दूसरे से काफ़ी दूर।

श्रीमती गांधी ख़ामोश थीं। उन्होंने यह तक नहीं पूछा कि वह कैसे आयी हैं? तब श्रीमती जोशी ने ही पहल की, "मैं आपकी हार से कितनी दुःखी हूँ, यह बताने के लिए आयी हूँ।"

"मैं इन बनावटी बातों से तंग आ चुकी हूँ।" बड़ी बेरुख़ी के साथ श्रीमती गांधी ने कहा।

"विश्वास कीजिये, मैं सचमुच बहुत दुःखी हूँ।"

श्रीमती गांधी ने व्यंग्यवाण छोड़ते हुए कहा, "क्या इसलिए तुमने मेरी पीठ में छुरा घोंपा था?"

यह एक अनपेक्षित आरोप था। श्रीमती जोशी को अब अंदाज़ा हुआ कि श्रीमती गांधी का इशारा किधर है। एक ही दिन पहले श्रीमती जोशी तथा कुछ मित्रों ने मिलकर माँग की थी कि कांग्रेस-अध्यक्ष को युवक कांग्रेस और संजय-चौकड़ी के सदस्यों की कारस्तानियों की जाँच करनी चाहिए और दल की इस भारी पराजय के लिए ज़िम्मेदार लोगों को दंड देना चाहिए। साफ़ था कि कौन क्या कर रहा है, इस पर श्रीमती गांधी कड़ी नज़र रख रही थीं।

"मैं यह मानती हूँ कि आपका बंसीलाल और उनके साथियों को बरदाश्त करना आत्मघाती रहा है...।" श्रीमती गांधी ने बीच में ही उन्हें टोका, "इससे बढ़कर अपमानजनक बात मेरे लिए क्या हो सकती है," वह बिफरकर आगे बोलीं, "कि जो-कुछ मैं कर रही थी वह बंसीलाल और दूसरे लोगों के कहने से ही कर रही थी!"

श्रीमती जोशी ने सफ़ाई दी, "आपको या दल को हानि पहुँचाना मेरा उद्देश्य कभी नहीं रहा...।" धैर्य खोते हुए श्रीमती गांधी ने बीच में टोका, "मैं आपके इरादे नहीं जानती। जो-कुछ आप कर रही हैं, ठीक है।" यह कहते हुए वह बड़ी रुखाई से 'नमस्ते' कहकर झटके से कमरे से बाहर निकल गयीं। (सुभद्रा जोशी के साथ लेखक की भेंटवार्ता से)।

देवकांत बरुआ, ब्रह्मानंद रेड्डी, सी० सुब्रह्मण्यम और दल के दूसरे नेताओं से मिलकर सुभद्रा जोशी और उनके साथी देसराज गोयल यह कहते रहे कि दल को साफ़ तौर से यह कहना चाहिए कि श्रीमती गांधी और संजय गांधी की चौकड़ी चुनाव में दल की हार का मुख्य कारण रहे हैं। (अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य श्री देसराज गोयल के साथ लेखक की भेंटवार्ता से)। लेकिन उन्होंने देखा कि ये नेता या तो किंकर्तव्यविमूढ़ थे, या कुछ करने के साहस का अभाव था उनमें। उस महिला के दरबारी और चाकर होने के कारण ये नेता अपनी शकल और पहचान कभी के खो चुके थे। इनमें से कुछ अपने-अपने ड्राइंगरूम में श्रीमती गांधी की आलोचना कर देते थे। कभी किसी बंद कमरे में उनकी भर्त्सना कर लेते थे, पर इनमें से अधिकांश अंदर-ही-अंदर श्रीमती गांधी का समर्थन और वरदहस्त प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने श्रीमती जोशी और गोयल से कहा, "देखिये, हम सब अपराधी हैं।" यहाँ तक कि श्री यशवंतराव चह्वाण ने भी सतर्क और टालने वाले जवाब दिये। श्री चह्वाण को श्रीमती गांधी का यह संदेश मिल चुका था कि संसद में दल के नेता-पद के लिए वह उनका समर्थन करेंगी। यह पद मंत्री-स्तर का था और भविष्य में सरकार बनाने के आमंत्रण की संभावनाएँ भी इसमें थीं। हालाँकि तुरंत इसकी कोई संभावना नहीं थी, फिर भी विपक्ष के नेता के साथ यह संभावना तो जुड़ी हुई रहती ही है।

श्रीमती जोशी और उनके साथी कुछ नहीं कर पा रहे थे। बिल्ली के गले में घंटी बाँधने को कोई तैयार नहीं था। वे सोचते थे कि यदि श्रीमती गांधी का सीधा हवाला न दिया जाये और सारा ज़ोर चौकड़ी पर रहे तो समर्थन बढ़ सकता है।

21 मार्च को ही उन्होंने अपराधी व्यक्तियों की जाँच की माँग कांग्रेस-अध्यक्ष के नाम याचिका में की थी। ये इस याचिका के लिए हस्ताक्षर एकत्र करने की कोशिश करते रहे, लेकिन कुछ ही लोग हस्ताक्षर करने को राज़ी हुए। लोकसभा चुनाव की ख़ातिर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति-पद से इस्तीफ़ा देने वाले, हारे हुए श्री कालूलाल श्रीमाली, दिल्ली महानगर परिषद के अध्यक्ष श्री मीर मुश्ताक़ अहमद, कार्यकारी पार्षद श्री ओमप्रकाश बहल आदि कुछ ही लोग सहमत हो पाये। दल के बड़े नेताओं में कोई भी राज़ी नहीं हुआ। बरुआ कह तो रहे थे कि श्रीमती गांधी हार के लिए ज़िम्मेदार हैं, पर वह कोई वक्तव्य नहीं दे रहे थे। केवल स्वर्णसिंह ही श्रीमती गांधी की तरफ़दारी नहीं कर रहे थे। (डी० आर० गोयल के साथ लेखक की भेंटवार्ता से)।

दूसरे ही दिन कांग्रेस कार्यसमिति की चुनाव के बाद की पहली बैठक हुई। श्रीमती गांधी के आने से पहले हमेशा की तरह हड़बड़ाहट हुई। उनकी चाल में वही पुरानी ज़िंदादिली थी। इंतज़ार कर रहे कैमरामैनों के लिए वैसी ही मुसकराहट। संवाददाताओं को उन्होंने बताया कि उनकी "कोई विशेष योजना नहीं है...मैं दल के लिए कार्य करती रहूँगी।" त्यागपत्र देने के सात घंटे बाद, अभी भी, वह प्रधानमंत्री थीं।

हालाँकि वह यह नहीं जानती थीं कि दल उनकी तरफ़ क्या रुख़ अख़्तियार करेगा, फिर भी वह अपना संतुलन बनाये हुए थीं, लेकिन अन्य अभी तक 'हक्का-वक्का' थे। वे सोच नहीं पा रहे थे कि उन्हें क्या करना चाहिए? बरसों से श्रीमती गांधी के नेतृत्व के आदी हो चुके थे, वे। लगभग अनायास ही उनके साथ हो गये। श्रीमती गांधी ने यह सब देखा और अनुभव किया कि अभी भी बागडोर उनके हाथ में है। उनके शब्दों में तनिक भी पश्चात्ताप नहीं था, उलटे उन्होंने घुमा-फिराकर सारा दोष संगठन पर डाल दिया। किसी ने उन्हें चुनौती नहीं दी। कार्यसमिति ने बड़े कर्तव्यभाव से अपने प्रस्ताव में "देश के प्रधानमंत्री और दल के नेता के रूप में विशिष्ट नेतृत्व प्रदान करने के लिए श्रीमती गांधी के प्रति गहरी प्रशंसा और समादर" व्यक्त किया और आशा व्यक्त की कि "वह नेतृत्व प्रदान करती रहेंगी।" श्रीमती पूरबी मुखर्जी ने, जो अभी तक उनकी भक्त थीं, ऐलान किया कि "श्रीमती गांधी का नेतृत्व बरक़रार है।"

इसके बावजूद कांग्रेस कार्यसमिति ने एक ऐसा निर्णय किया जिससे श्रीमती गांधी नाराज़ हो गयीं। निर्णय में कहा गया था कि चुनाव में दल की भारी पराजय के लिए ज़िम्मेदार तत्वों का "विस्तृत विश्लेषण" किया जाये। इसमें छिपे ख़तरे को श्रीमती गांधी देख रही थीं। 'विस्तृत विश्लेषण' में मुख्य अपराधी की तरह वह सामने आ जायेंगी, यह वह जानती थीं। उन्होंने आसानी से यह अनुमान लगा लिया कि इसके पीछे किसका हाथ है। दल के नक़ली वामपंथियों में से एक चंद्रजीत यादव ने दल के लोकतांत्रिक कार्य-संचालन के लिए संगठनात्मक चुनावों की माँग की थी। यादव और बरुआ की मिलीभगत थी। श्रीमती गांधी के सिपह-सालार बंसीलाल तुरंत आस्तीनें चढ़ाकर खड़े हो गये। "क्या ज़रूरत है संगठनात्मक चुनाव की?" उन्होंने चिल्लाकर कहा, "विधानसभा के चुनावों तक यह स्थगित भी रह सकता है।" लेकिन चंद्रजीत यादव ने पूरी तैयारी की थी। उनके साथ बहुत-से लोग उठ खड़े हुए। उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति से यह फ़ैसला भी करवा लिया कि भारी चुनाव-पराजय के बारे में 12 अप्रैल से तीन दिन की बहस होगी।

श्रीमती गांधी आगबबूला हो गयीं। बरुआ को हटाना ही होगा। और उन्होंने अपने स्वामिभक्त शिकारी कुत्तों को उत्तेजित करके छोड़ दिया। एक पुराने भक्त सतपाल कपूर, फिर से बिरादरी में आ जाने को लालायित राजा दिनेशसिंह, ए० पी० शर्मा और कई अन्य लोग बरुआ के खून के प्यासे हो गये। उन्होंने अध्यक्ष-सहित कार्यसमिति के सदस्यों के सामूहिक त्यागपत्र की माँग की। इस योजना के पीछे बंसीलाल और संजय गांधी का हाथ था। वे जानते थे कि क्या खिचड़ी पक रही है। बरुआ से भूतपूर्व प्रतिरक्षा-मंत्री को वह पत्र मिल चुका था जिसमें उनसे कांग्रेस कार्यसमिति से त्यागपत्र देने को कहा गया था। दरबारी मसखरे की यह मजाल कि उसने कार्यसमिति के एक अन्य मनोनीत सदस्य को चलता कर देने के आदेश दे दिये थे। उसके इरादे साफ़ थे! अगला निशाना खुद श्रीमती गांधी नहीं तो संजय गांधी तो होने ही वाले थे।

संजय गांधी को आनेवाली अपमानजनक स्थिति के बारे में कोई शंका नहीं थी। देश के नये हुक्मरान पहले ही घोषणा कर चुके थे कि वे मारुति घोटाले की जाँच करेंगे। संजय जानते थे कि जो लोग उनकी तुलना शंकराचार्य और विवेकानंद से किया करते थे अब वे ही उन पर हमला करेंगे। बरुआ उन्हें पहले ही "अपराधी प्रवृत्ति का बिगड़ा हुआ छोकरा" कह चुके थे। कम-से-कम उस जोकर को तो वह कांग्रेस से उन्हें निकालने का मौक़ा नहीं देंगे। फ़ौरन उन्होंने प्रेस को बताया कि वह "सक्रिय राजनीति" छोड़ रहे हैं। यह उस त्यागपत्र की पूर्व भूमिका थी जो वह बरुआ को भेजने वाले थे। अपनी इस घोषणा के बाद 'इमरजेंसी के हीरो' ने कहा, "जो कुछ मैंने व्यक्तिगत हैसियत से किया अगर उसका कुछ प्रभाव मेरी माँ पर पड़ा है तो मैं और भी ज्यादा दुखी हूँ।" इस तरह के अपराध या पश्चात्ताप की भावना संजय में अपनी माँ से कहीं कम थी। लेकिन 'व्यक्तिगत हैसियत' का फ़िकरा भविष्य के लिए सोची-समझी बहानेबाज़ी थी।

आपात-काल के एक अन्य पहलवान बंसीलाल अपने ऊपर हो रहे हमले के बचाव के लिए श्रीमती गांधी की तरफ़ भागे। वह अपने ढिंढोरची विद्याचरण शुक्ल को तो ग़च्चा दे सकती थीं, लेकिन बंसीलाल को निराश करना महँगा पड़ सकता था। ऐसा करने से स्वयं उनकी परेशानी बढ़ती। वैसे भी वह संबद्ध मामलों से बहुत आशंकित हो गयी थीं। कुछ जनता-नेता, ख़ासकर जार्ज फ़र्नांडीज़, उनके ख़िलाफ़ ज़हर उगल रहे थे। संजय गांधी से निपटने के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें गर्म थीं। संजय गांधी उनकी सबसे दुखती नस थी। उनकी बुआ विजयलक्ष्मी पंडित का भी यही कहना है।

मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री बनने के ठीक एक दिन बाद वह उनके पास अपने लड़के के लिए क्षमा-दान माँगने गयीं। "चाहे जो कुछ कीजिये, लेकिन उसकी जान बचा लीजिये।" यह श्रीमती गांधी की मार्मिक अपील थी।

वह जानती थीं कि वह घिर गयी हैं। फिर भी स्वयं उनके अपने दल के लोग ही शैतानी पर आमादा थे। श्री यशवंतराव चह्वाण को उन्होंने विपक्ष का नेता बनाया। लेकिन वह भी एहसानफ़रामोश होकर लोकसभा में अपने पहले भाषण में कह गये कि चुनाव-परिणामों से कांग्रेस ने शिक्षा ग्रहण की है और "आपात-स्थिति से हमेशा के लिए विदा" ले ली है। लगता था कि आपात-काल से ज्यादा वह श्रीमती गांधी को अलविदा कह रहे हैं। श्रीमती गांधी को जब उनके भाषण का ब्योरा उसी शाम बताया गया तो वह आगबबूला हो गयीं। वह जान गयीं कि लड़ाई घर में भी लड़नी है।

31 मार्च को कार्यसमिति की एक अनौपचारिक बैठक उन्होंने अपने घर पर बुलायी। आनेवालों में बरुआ, चह्वाण, ब्रह्मानंद रेड्डी, सी० सुब्रह्मण्यम, स्वर्णसिंह और सिद्धार्थशंकर राय भी थे। इनमें से कोई नहीं जानता था कि आख़िर यह बैठक बुलायी किसलिए गयी है ? श्रीमती गांधी ने ही जब अपने पत्ते दिखाये तो वह जान पाये। उन्होंने बताया कि बंसीलाल का त्यागपत्र उन्होंने चह्वाण को दे दिया है, लेकिन अगर बरुआ सहित पूरी कार्यसमिति त्यागपत्र दे दे तभी वह पत्र बरुआ को दिया जायेगा। चह्वाण, रेड्डी और सी० सुब्रह्मण्यम उनके प्रस्ताव से सहमत-से लगे। लेकिन स्वर्णसिंह, राय और मीर क़ासिम ने चौकड़ी के बाक़ी लोगों के साथ सभी लोगों को एक ही डंडे से हाँकना ग़लत माना।

इस पर श्रीमती गांधी ने तुरुप का पत्ता फेंका। "अगर अकेले बंसीलाल या अन्य किसी को किसी कार्रवाई का शिकार बनाया जाता है तो मैं दल से त्याग-पत्र दे दूँगी।"

धमकी काम कर गयी। सभी दिग्गज नेता एक बार फिर श्रीमती गांधी के पीछे हो गये। लेकिन केरल के उग्र-नेता वयालार रवि ने जवाबी घोषणा कर दी कि वह चौकड़ी वाली पंगत में क़तारबद्ध होने को तैयार नहीं हैं। उन्होंने चुनौती दी कि "इस अनौपचारिक बैठक की ऐसी कोई वैध स्थिति नहीं है कि कार्यसमिति की बैठक के निर्णय को पलट सके।"

इससे बरुआ में कुछ हिम्मत आयी और उन्होंने हामी भरते हुए कहा : "यह हमारे लिए सच की परख की घड़ी है। हमें खुलकर मुक्त बहस करनी चाहिए।" श्रीमती गांधी का वार ख़ाली गया। लेकिन वह आसानी से हार मानने-वाली नहीं थीं। अब वह कुछ नयी चाल चलेंगी : बरुआ को मनायेंगी। श्रीमती गांधी के निजी विशेष दूत मोहम्मद यूनुस को बरुआ के पास सुलह के लिए भेजा गया। उनके विफल होने पर श्रीमती गांधी के विशेष निजी सचिव आर० के० धवन बरुआ को प्रधानमंत्री-निवास पर लिवा लाने को गये। लेकिन बरुआ अपनी जगह पर अड़े रहे। बरुआ तब चुप रहे थे जब श्रीमती गांधी ने कहा था कि 12 अप्रैल की कार्यसमिति की बैठक में वह नहीं आयेंगी। शायद उन्होंने सोचा था कि बरुआ उनसे कार्यसमिति की बैठक में आने का आग्रह करेंगे। लेकिन वक़्त बदल गया था।

बरुआ ने उस बैठक को क़रीब-क़रीब अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी का छोटा-मोटा अधिवेशन बना दिया। इसमें तमाम प्रदेश कांग्रेस-अध्यक्षों, सभी मुख्यमंत्रियों, सभी भूतपूर्व केंद्रीय मंत्रियों को बुला लिया गया था। श्रीमती गांधी बहुत बेचैन हो गयीं। उन्हें आशंका होने लगी कि उनका दल भी उनकी पकड़ से फिसला जा रहा है। इस छोर तक पहुँचने के बाद उनकी प्रतिरक्षा-नीति ने एक पलटा खाया। अब विनम्रता की भंगिमा नहीं थी। हर मौक़े पर वह डटकर अपने बेटे संजय की तरफ़दारी और बचाव करने लगीं।

हार के बाद अपनी पहली भेंटवार्ता (स्टेट्समैन, 7 अप्रैल, 1977) में उन्होंने कहा कि चुनाव में सफ़ाये के लिए संजय या बंसीलाल को दोषी ठहराना अति सरलीकरण है। "बंसीलाल ने भले ही हरियाणा में कुछ किया हो, पर निश्चय ही वह और किसी चीज़ के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं... जहाँ तक मैं जानती हूँ, संजय अपने पाँच-सूत्री कार्यक्रम से ही जुड़ा रहा...।" उन्होंने दो-टूक ढंग से कहा कि हार तो "ज़बरदस्त विरोध-प्रचार अभियान" के कारण हुई थी। अब जाकर उन्हें पता चला था कि उनके विपक्षी दलों ने कितना तीखा और गहरा प्रचार किया था।

उन्होंने इससे साफ़ इंकार किया कि मंत्रिमंडल के अपने साथियों के मशविरे के बिना उन्होंने कोई निर्णय लिये थे। छिपाकर कुछ भी नहीं किया गया था। लेकिन, बाद में याद करके उन्होंने कहा कि दो मौक़ों पर उन्होंने मंत्रिमंडल में अपने साथियों से मशविरा नहीं किया था—एक तो रुपये के अवमूल्यन के समय और दूसरे आपात-स्थिति लागू करते समय। उनमें खेद या पश्चात्ताप की भावना लेश-मात्र भी नहीं थी। अपने दल के साथियों के ज़ोरदार संजय-विरोधी अभियान का भी उन पर कोई असर नहीं पड़ा था। "अब इन बातों को लेकर दहाड़ने के बजाय उन्हे पहले ही अपनी आशंकाओं के बारे में बताना चाहिए था...।"

कार्यसमिति की बैठक में जब बंसीलाल को 12 घंटे के अंदर प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र देने को कहा गया था और त्यागपत्र न देने पर उन्हें निकाल देने का निर्णय लिया गया था, तो श्रीमती गांधी उन्मादियों की तरह चीख़ पड़ीं, "मुझे निकाल दीजिये, मुझे निकाल दीजिये।"

वह जानती थीं कि ये नेता चुनाव में दल के सफ़ाये के लिए कोई बलि का बकरा तलाशने से ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते। उन्हें विश्वास था कि वे लोग उन पर हाथ नहीं डालेंगे। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया था कि अपने बल पर तो ये लोग एक सभा तक नहीं कर सकते। 12 अप्रैल के पहले कांग्रेस कार्यसमिति की पहली बैठक में भाग लेने वह नहीं आयीं। कार्यवाही शुरू होने से पहले सुनियोजित नारेबाज़ी होने लगी कि "श्रीमती गांधी को बुलाओ।" बिहार के उनके एक भक्त सीताराम केसरी ने इसका पक्का इंतज़ाम किया था। बरुआ ने यह सफ़ाई दी कि खुद उन्होंने श्रीमती गांधी से बैठक में आने का आग्रह किया था, लेकिन उन्होंने न आने का फ़ैसला किया है। इस पर सीताराम केसरी और अन्य लोगों ने आवाज़ लगायी, "नहीं, नहीं, हम उनके बिना आगे नहीं बढ़ सकते।" बरुआ, चह्वाण और त्रिपाठी—तीन दिग्गजों ने जल्दी से आपस में मशविरा किया। दूसरे ही क्षण तीनों बाहर पोर्टिको में आ गये। "क्या वे मीटिंग छोड़कर रहे थे?" यह एक चकित संवाददाता का सवाल था (विजय संघवी, संदेश, 13 अप्रैल 1977)। "नहीं, हम लोग श्रीमती गांधी के पास जा रहे हैं।" यह आवाज़ बरुआ की थी। तनाव और उदासी से भरे थे, वह।

जब वह श्रीमती गांधी के पास पहुँचे तो वह कपड़े पहने तैयार बैठी थीं। लेकिन बैठक में आने में आनाकानी कर रही थीं। तीनों नेताओं ने दलील दी कि "सदस्य आपकी उपस्थिति की माँग कर रहे हैं। आपको चलना चाहिए।" वह 'ना, ना' कहते हुए भी मान गयीं।

उनके पहुँचते ही बिगुल बजाये गये। युवक कांग्रेस के लोगों ने नारे लगाये : "देश की नेता इंदिरा गांधी!" लेकिन ये युवक कांग्रेसी और चाहे कुछ रहे हों, पर युवक तो नहीं थे। उसी दिन सुबह उन्होंने बरुआ को हटाने के लिए मुख्य दरवाज़े पर अनशन शुरू किया था। यह पूरा सिलसिला नियोजित रहा हो या अनियोजित, लेकिन श्रीमती गांधी ने बाज़ी मार ही ली।

श्रीमती गांधी के चहेतों के ख़िलाफ़ जो चाकू तेज़ किये जा रहे थे, उनकी धार उन्होंने एक ही क़रारी चोट से कुंद कर दी थी। बैठक से एक रात पहले श्रीमती गांधी ने बरुआ के नाम बहुत चतुराई से लिखा हुआ एक पत्र भेजा था। उसमें लिखा था : "मैं यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि सरकार का नेतृत्व करने के नाते मैं बिना किसी संकोच के पराजय की पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेती

हूँ। मैं कोई बहाना नहीं खोजना चाहती, न ही किसी को बचाने में दिलचस्पी रखती हूँ। मेरी कोई चौकड़ी नहीं जिसे मुझे बचाना है और न ऐसा कोई गुट है जिससे मुझे निपटना है। मैंने कभी गुट के नेता की तरह व्यवहार नहीं किया...।"

दुश्मन का वार होने से पहले ही उसकी काट कर देने की इस चाल के पीछे उन्हीं द्वारिकाप्रसाद मिश्र का दिमाग़ था, जिन्होंने 1969 में कांग्रेस विभाजन के दौरान चाणक्य की भूमिका अदा की थी। मिश्र ने उनसे कहा था कि "ऐसा करके तुम बरुआ और उनके साथियों के ख़िलाफ़ पाँसा पलट दोगी।" यह पत्र श्रीमती गांधी के विरोधियों को शांत तो नहीं कर सका, अलबत्ता हवा का रुख़ उसने ज़रूर पलट दिया। अब उन्होंने सारी ज़िम्मेदारी अपने पर ले ली थी, और चौकड़ी के अस्तित्व से इंकार कर दिया था। अब वे क्या कर सकते थे? क्या वह श्रीमती गांधी को ही निकाल देने की, या उनको फटकारने की माँग कर सकते थे?

केरल के एक वाकपटु सांसद और वामपंथी झुकाव के उन्नीकृष्णन का मानना था कि फटकार लगाना बिलकुल उचित होता (लेखक के साथ भेंटवार्ता में)। जब तक श्रीमती गांधी की निरंकुश शैली उनकी बरदाश्त के बाहर नहीं हो गयी तब तक उन्नीकृष्णन उनके बड़े मुखर समर्थक थे। वह मानते थे कि दल ने 22 मार्च को ही ग़लती की जब उसने श्रीमती गांधी के नेतृत्व में फिर अपना विश्वास प्रकट किया।

उन्नीकृष्णन का दावा है कि चुनाव-परिणाम के कुछ दिन बाद चंद्रजीत यादव के घर कुछ कांग्रेसजनों की एक बैठक में सबसे पहले उन्होंने ही श्रीमती गांधी पर जमकर प्रहार किया था। उनका कहना था कि अगर दल को बचाना है तो उसे अपने तौर-तरीक़े बदलने ही होंगे। श्रीमती गांधी को अच्छा लगे या बुरा, दल को यह पता लगाना ही होगा कि आख़िर पार्टी की इतनी शर्मनाक पराजय क्यों हुई? श्रीमती गांधी के नेतृत्व में अब कोई दम नहीं रह गया है। उनके पास देश को देने के लिए कुछ नहीं है। श्रीमती गांधी को ऐसा अवसर मिला जैसा उनके पिता नेहरू को भी नहीं मिला था। जब नेहरू ने 1947 में सत्ता संभाली थी तब उनके सामने राष्ट्र-निर्माण की विराट समस्याएँ खड़ी थीं। उन्हें विरासत में क्षत-विक्षत आर्थिक स्थिति, खाद्यान्न का भारी अभाव और छोटी-सी सेना मिली थी। लेकिन श्रीमती गांधी रातोंरात राष्ट्रीय नेत्री बन गयी थीं। अचानक 1969 में वह राष्ट्रीय महाजागरण की प्रतीक बन गयी थीं। 1971 के चुनाव में उन्हें पूर्ण लोक-आदेश मिला था। जो कांग्रेसजन सिंडीकेट की राजनीतिक तिकड़मबाज़ी से पिंड छुड़ाकर श्रीमती गांधी के साथ आये थे, वे आशा कर रहे थे कि श्रीमती गांधी पार्टी को कार्यकर्ता-प्रधान स्वरूप प्रदान करेगी। उन्होंने सोचा था कि हुक्म चलाने का ज़माना लद गया है। लेकिन कौन जानता था कि वह तो अब शुरू हुआ था!

श्रीमती गांधी की सरकार के एक उपमंत्री श्री धर्मवीर सिन्हा ने (लेखक के साथ भेंटवार्ता में) यह क़बूल किया कि "हम सब लोगों ने व्यक्ति-पूजा के विकास में अपना-अपना योगदान किया है।...लेकिन मैंने हमेशा यही सोचा कि जिस नेतृत्व को उत्तरदायी बनाये रखा जा सके वह व्यक्ति-पूजा का विकृत रूप नहीं ले सकता। उन दिनों वह हमको, कांग्रेस को नया जीवन प्रदान करने वाली शक्ति प्रतीत होती थीं। उनके नेतृत्व के गिरते जाने की प्रक्रिया एक रहस्य है। हम सब के लिए एक पहेली है।"

उन्नीकृष्णन और उनके मित्रों ने दल का वर्चस्व स्थापित करने की भरपूर कोशिश की थी। वे बरुआ के पास गये, लेकिन बरुआ लड़खड़ाते नज़र आये। कभी

श्रीमती गांधी को और कभी उनके बेटे को दोष देते। उन्नीकृष्णन ने कांग्रेस-अध्यक्ष से कहा, "संजय गांधी की बात करने का क्या तुक है? संजय कौन है? क्या उसकी कोई स्वतंत्र हस्ती थी? बलि के बकरे खोजने से कोई फ़ायदा नहीं है।" उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि "श्रीमती गांधी को अपने किये का फल भुगतने से बच निकलने का मौक़ा क़तई नहीं दिया जाना चाहिए।" लेकिन बरुआ इतनी दूर जाने को कम-से-कम खुलेआम तो तैयार नहीं थे। जिस वंसीलाल और संजय गांधी ने उन्हें आपात-काल के दौरान अपमानित किया था उनका पर्दाफ़ाश करने के लिए बरुआ किसी भी सीमा तक जा सकते थे। उन्हें मालूम था कि सिद्धार्थ शंकरराय संजय गांधी से अच्छी तरह निबट लेंगे, क्योंकि उन्हें भी संजय गांधी से अपना हिसाब-किताब बराबर करना था। जहाँ तक उस दबंग जाट का सवाल है, बरुआ मुख्यमंत्री बनारसीदास गुप्त के कान में मंत्र फूंक रहे थे। जब वंसीलाल को केंद्रीय प्रतिरक्षा-मंत्री बनाकर दिल्ली लाया गया था तब बंसीलाल ने बनारसीदास गुप्त को हरियाणा का मुख्यमंत्री बनवाया था। बरुआ को यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई थी कि बंसीलाल की कठपुतली उन्हीं पर निशाना साध रही है। बनारसीदास बड़े अजीबोग़रीब ढँग से अपना क़सूर क़बूल रहे थे और कह रहे थे कि वह अपनी कायरता के कारण बंसीलाल के इशारों पर नाचते रहे थे। उसी शाम कांग्रेस कार्यसमिति ने बंसीलाल को औपचारिक रूप से दल से निकाल दिया।

अपने बेटे और बंसीलाल को बचाने के लिए सब-कुछ दाँव पर लगाकर श्रीमती गांधी दूसरे दिन सुबह बरुआ के घर गयीं। महारानी को अपने दरबारी मसख़रे के दरवाज़े पर दस्तक देते देख बरुआ फिर गद्‌गद हुए। कहा जाता है कि उनकी बड़ी भावपूर्ण मुलाक़ात हुई। श्रीमती गांधी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह उन्हें अध्यक्ष-पद से हटाना नहीं चाहतीं। वह तो सिर्फ़ यह चाहती हैं कि बंसीलाल और संजय गांधी को अपमानजनक स्थिति से बचाया जाये। उन पर बाहर से तो हमले हो ही रहे हैं, अंदर से क्यों हमला किया जाये? बरुआ ने बंसीलाल के लिए तो कुछ नहीं कहा, लेकिन उन्होंने श्रीमती गांधी को वचन दिया कि वह "फ़ीरोज़ गांधी के बेटे को कोई नुक़सान नहीं होने देंगे।" आखिर फ़ीरोज़ उनके जिगरी दोस्त थे। वह उन्हें बचाने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे। तत्काल संजय गांधी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यों ने यह खोज निकाला कि संजय गांधी तो कभी पार्टी के प्राथमिक सदस्य तक नहीं थे। वे कर ही क्या सकते थे, सिवा इसके कि कांग्रेस-अध्यक्ष बरुआ का मज़ाक़ उड़ा देते कि उन्होंने उस लड़के को बिना सदस्य बनाये अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का सदस्य बना दिया। यहाँ तक कि बरुआ के मित्र सिद्धार्थशंकर राय ने भी उन्हें नहीं बख़्शा। राय ने टिप्पणी की कि "आख़िर कोई अध्यक्ष इस तरह की वाहियात बात कर कैसे सकता है?" बरुआ पलक झपकाते रहे और चुप्पी साधे बैठे रहे।

श्री बरुआ ने अपने वचन का पालन किया और यह आशा की कि श्रीमती गांधी भी अपने वचनों का पालन करेंगी, लेकिन वह श्रीमती गांधी को जानते नहीं थे। चौकड़ी के भेड़िये अभी भी उनके ख़ून के प्यासे थे। श्रीमती गांधी और उनके समर्थक जानते थे कि जब तक अध्यक्ष-पद पर उनके विश्वास का आदमी नहीं होगा तब तक पार्टी पर क़ब्ज़ा नहीं किया जा सकता। बरुआ पर विश्वास नहीं किया जा सकता था, क्योंकि वह दुश्मनों की ढाल बने हुए थे।

जब अंततः बरुआ ने त्यागपत्र दिया तब श्रीमती गांधी चाहती थीं कि उनके गूँगे गृह-मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी कार्यकारी अध्यक्ष बन जायें। लेकिन बरुआ ने बड़ी तेज़ी से कुछ गोटियाँ बिठायीं और सरदार स्वर्णसिंह का नाम अध्यक्ष-पद के लिए प्रस्तावित कर दिया। यह मुँहतोड़ जवाब जाते-जाते श्रीमती गांधी को बरुआ का तोहफ़ा था !

लेकिन लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई थी, रणनीति बन रही थी। अगले दौर की लड़ाई बिलकुल नाटकीय थी और शायद इसीलिए नयी दिल्ली का मावलंकर हॉल, जहाँ पर नाच-गाने के कार्यक्रम और नाटक हुआ करते हैं, इसके लिए चुना गया। दल की पराजय के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के पहले अधिवेशन के लिए कांग्रेस-जन मई के शुरू में यहीं एकत्र हुए। यह नाटक तसवीरों के बारे में एक निहायत घटिया प्रहसन से शुरू हुआ। बहुतों ने इसे "चित्रों का युद्ध" कहा।

नाटक के पात्र मंच पर अपनी जगहें ले रहे थे। कार्यकारी अध्यक्ष सरदार स्वर्णसिंह दो मसनदों पर जमकर बैठ गये थे। उनके एक तरफ़ उनके महासचिव थे और दूसरी तरफ़ चह्वाण और सी० सुब्रह्मण्यम। होनेवाले अध्यक्ष श्री ब्रह्मानंद रेड्डी बीच में अकेले बैठे थे। ऋषियों-जैसी सफ़ेद लंबी दाढ़ी के साथ पं० द्वारिका-प्रसाद मिश्र मंच के पिछले भाग में बैठे हुए थे। छोटे-छोटे पात्र (एक्स्ट्रा) हॉल में श्रोताओं के बीच बैठे हुए थे। किसी ने देखा कि हँसमुख-सजीले विद्याचरण शुक्ल चुपचाप सरक कर मंच पर आ गये थे, लेकिन तभी किसी ने आवाज़ दी कि "यह लताड़ा हुआ आदमी मंच पर क्या कर रहा है ?" शुक्ल कुछ देर तो जमे रहे, लेकिन अंत में वहाँ से खिसक गये।

कार्यवाही शुरू ही होने वाली थी कि अचानक प्रहसन चालू हो गया। भड़कीले हरिजन-नेता श्री बी० पी० मौर्य अपनी सीट से उछलकर खड़े हो गये और आतंकित करनेवाली आवाज़ में बोले, "पंडितजी की तसवीर कहाँ है ? यह सब चमचों की कारस्तानी है।" तब तक दूसरी आवाज़ें भी उठीं। "श्रीमती गांधी की तसवीर कहाँ है ?" किसी दूसरे ने माँग की। अपनी चुटीली फब्तियों के लिए प्रसिद्ध श्री शंकरदयालसिंह ने बनारसीदास गुप्त को आवाज़ देकर पूछा, "आप संजय और बंसीलाल की तसवीरों के बारे में क्यों नहीं पूछते ?" अक्खड़ हरियाणवी बनारसीदास ने जवाब दिया कि "राजनारायण की तसवीर लगाना कैसा रहेगा ?"

महासचिव पूरबी मुखर्जी माइक पर आ गयीं और उन्होंने कोशिश की कि लोग उनकी बात सुनें। उन्होंने इस ग़लती के लिए माफ़ी माँगी। यह पहला ऐसा साल था जब कांग्रेस महासम्मेलन में बाप-बेटी की तसवीर मंच पर नहीं थी। अगर अब तक योजना के अनुसार सब-कुछ चला होता तो देव-कुल की तसवीरों की पंक्ति में संजय की तसवीर भी जुड़ गयी होती। पूरबी मुखर्जी शोर मचानेवाली भीड़ को बदले हुए समय की याद दिला रही थीं। लेकिन उनका इशारा सिर्फ़ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वस्तुस्थिति की ओर था। वरना वह अभी भी श्रीमती गांधी की समर्थक थीं।

क़रीब आधे घंटे बाद नेहरू व इंदिरा गांधी की तसवीरें आयीं। बेटी की तसवीर बाप से कहीं बड़ी थी। दोनों के बीच में महात्मा गांधी की तसवीर अचानक भिंचकर सिकुड़ गयी थी। दीवार पर श्रीमती गांधी की मुसकान सबसे प्रभावी ढँग से छायी हुई थी।

श्रीमती गांधी खुद अभी नहीं आयी थीं। वह मँजी हुई खिलाड़ी थीं। उनके प्रवेश को नाटकीय होना था और इसलिए उनका समय उसी हिसाब से तय था।

वह उमड़ती भीड़ को चीरती हुई स्वर्णसिंह के नीरस लड़खड़ाते भाषण के बीच में आयीं। 'ज़िदाबाद' की गूंज और धड़ाधड़ फ़ोटो खींचनेवाले कैमरों की चकाचौंध ने उनके विरोधियों को पस्त-सा कर दिया था।

उनके चेहरे पर हलकी-सी उदासी की झलक थी—बस उतनी ही जितनी कि इस अवसर के लिए ज़रूरी थी। माइक की तरफ़ वह यों झिझकती हुई बढ़ीं जैसे उन्हें कोई जबरन ढकेल रहा हो। उन्होंने काँपते हुए स्वर से बोलना शुरू किया कि वह तो आना नहीं चाहती थीं। लेकिन दक्षिण और उत्तर से, ('उत्तर' पर काफ़ी ज़ोर था, कोई चूक उसे समझने में किसी से नहीं हुई) देश के हर भाग से आये सदस्यों ने उनसे यहाँ आने का इतना आग्रह किया कि उन्हें आना पड़ा।

"मैं यहाँ केवल आप लोगों से मिलने और आप लोगों ने मुझे जितना अपार समर्थन दिया, उसका धन्यवाद देने आयी हूँ। आप लोग...अच्छे-बुरे हर समय में मेरा साथ देते रहे।" इतना कहकर वह आँसुओं में डूब गयीं और जल्दी से वहाँ से चली गयीं। एक पत्रकार ने उस समय भी इंदिरा गांधी का वर्णन "दयनीय मूर्ति" के रूप में किया है।

श्रीमती गांधी के चले जाने के बाद गोलाबारी शुरू हुई। लोग आग उगल रहे थे। लगता था, कुछ तो कई दिनों से उसका रिहर्सल कर रहे थे। बोल पाने का साहस जुटा रहे थे। टी० ए० पई को भी अंत में अपनी खोयी हुई आवाज़ मिल गयी थी। उन्होंने बताया कि कैसे पार्टी की ऐसी दुर्दशा हो गयी। यह भीषण पराजय तो कांग्रेस कमेटी के चंडीगढ़ अधिवेशन में ही शुरू हो गयी थी जब संजय गांधी को उछालने की कोशिश की गयी थी; और गोहाटी अधिवेशन में तो यह तबाही पूरी हो चुकी थी, जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जगह युवक कांग्रेस को दे देने की कोशिश की गयी थी। संजय गांधी कांग्रेस के असली नेता हो गये थे और सच तो यह है कि वह सरकार के भी सर्वेसर्वा हो गये थे। बिना किसी क़ानूनी अधिकार के वह सरकार की सभी फ़ाइलें देख सकते थे। वह मंत्रियों तक की नियुक्ति व पदोन्नति का निर्णय करने लगे। जो उनके सामने नतमस्तक नहीं होते थे, आतंक उन्हें घेरे रहता था। जिसने खुद प्रधानमंत्री के पुत्र को चढ़ाने में अपनी भूमिका अदा की थी और 'दरबार' के दबाव के सामने आत्म-समर्पण किया था, उस आदमी के मुँह से निकलने वाले सचमुच ये काफ़ी साहसपूर्ण शब्द थे। "अब हम सच्चाई को जान लेने के बाद भी क्या अग्निपरीक्षण के लिए तैयार हैं ?" यह पई की गर्जना थी। दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी : "अगर कोई चौकड़ी थी, तो वह यहीं है।" यह कर्नाटक के संसद-सदस्य कृष्णप्पा की आवाज़ थी। उन्होंने मंच पर पीछे बैठे बरुआ की तरफ़ संकेत करके कहा : "यह रही चौकड़ी !" उन्होंने उपहास करते हुए एक बार फिर दोहराया। कृष्णप्पा यह इशारा सिद्धार्थशंकर राय, रजनी पटेल, चंद्रजीत यादव की तरफ़ भी कर सकते थे। ये सभी श्रीमती गांधी की हाल ही की चौकड़ी में शामिल रह चुके थे। सब-के-सब श्रीमती गांधी के ताबेदार थे। अचानक ये सब हिम्मतवर बन गये। श्रीमती गांधी और उनकी संजय-चौकड़ी के ख़िलाफ़ ग़ुस्से से आगबबूला हो रहे थे। कल के इन पिट्ठुओं की क्या विश्वसनीयता हो सकती थी ? जब तक वह महिला पछाड़ खाये हुए सत्ता-स्पर्द्धा के बाहर थी, तब तक यह सब ठीक था। लेकिन ये लोग कब तक इस बात को छिपाये रख सकते थे कि उनकी हैसियत कौड़ी की भी नहीं है ? श्रीमती गांधी के इन विरोधियों का खोखलापन ही श्रीमती गांधी की सबसे बड़ी शक्ति थी।

विरोधियों के अकड़ने-खीझने के बावजूद श्रीमती गांधी अपनी थोड़ी ही देर

की नाटकीयता के कारण उस दिन छायी रहीं। अरसे से आँसू उनके अस्त्रागार का एक अभिन्न अंग रहे हैं। जब उनका छल-कपट और प्रपंच विफल हो जाता, तब वह रो पड़तीं। 1969 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अभियाचित सम्मेलन में, जब उन्होंने दल को विभाजित किया था, कम-से-कम दो बार उन्होंने रोने-धोने का नाटक किया था। और इस बार तो कम-से-कम अपने दल पर पूरा क़ब्ज़ा जमाने के लिए वह अपनी हर हिकमत का इस्तेमाल करनेवाली थीं।

अगले दिन 6 मई को दल के अध्यक्ष-पद का महत्वपूर्ण चुनाव होना था। इस पद के लिए कई लोग गुपचुप ढँग से श्रीमती गांधी का समर्थन जुटाने में लगे हुए थे। दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंके गये दरबारी राजा दिनेशसिंह उनकी नज़रों में चढ़ने की भरपूर कोशिश कर रहे थे। शायद वह उन्हें दल का अध्यक्ष बनवा दें, इस उम्मीद से। कश्मीर के राजकुमार भी अपनी ख़याली दुनिया में यह मानते थे कि इस पद के लिए कोई दूसरा व्यक्ति उनसे ज़्यादा उपयुक्त हो ही नहीं सकता। एक और दावेदार थे, सिद्धार्थशंकर राय। यह कभी उनके विश्वसनीय भक्त रह चुके थे, अब आलोचक हो गये थे। संजय गांधी द्वारा झिड़के जाने के बाद वह शत्रुओं के खेमे में चले गये थे। वैसे यह स्वयं आपात-स्थिति के प्रस्तावकों में से थे। लेकिन अब वह चौकड़ी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रहे थे। नतीजा यह निकला कि दरबार की नज़र में वह गिर गये। 'प्रगतिशील' कांग्रेसियों ने अध्यक्ष पद के लिए इन्हें इंदिरा-विरोधी प्रत्याशी की तरह उछालना शुरू किया। लेकिन अंतिम कुछ दिनों तक वह हिचकिचाते रहे। सोचते रहे कि क्या वह बिना श्रीमती गांधी के समर्थन के जीत सकते हैं? अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में प्रायः श्रीमती गांधी द्वारा चुने गये लोग भरे थे। वह जानते थे कि किस तरह पूरी योजना व व्यवस्था के साथ श्रीमती गांधी ने अपने ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों को सम्मेलन में एकत्र किया था। दल में कोई भी अन्य नेता साधनों में उन्हें मात नहीं कर सकता था। यह सच है कि दल के कम्युनिस्ट-समर्थक धड़े ने उनमें से एक बड़े वर्ग को अपने पक्ष में करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया था। लेकिन क्या वह श्रीमती गांधी के सामने टिक सकते थे?

सिद्धार्थशंकर राय को इसमें शक था, इसीलिए वह गुप्त रूप से श्रीमती गांधी से मिलने गये थे। उन्होंने सोचा कि अगर वह श्रीमती गांधी का आशीर्वाद पाने गये तो वह पिघल जायेंगी। आख़िर राजनीति में कोई स्थायी शत्रु या मित्र नहीं होता। लेकिन राय को फटकार सुनकर लौटना पड़ा। "किस तरह के कांग्रेसी हैं, आप?" श्रीमती गांधी ने उन्हें झिड़कते हुए कहा। क्या वह यह भी अनुभव नहीं करते थे कि दक्षिण ने कांग्रेस का साथ दिया था? यह एक आम समझ की बात थी कि इस पद पर इस समय कोई दक्षिण भारतीय आना चाहिए। "मैंने ब्रह्मानंद रेड्डी को पहले ही वचन दे दिया है।" यह उन्हें श्रीमती गांधी का जवाब था। "होना तो यह चाहिए था कि रेड्डी को संसदीय दल का नेता बनाया जाता। चह्वाण को नेता चुनना ग़लती थी।" चह्वाण ने श्रीमती गांधी को पहले ही नाराज़ कर रखा था। श्रीमती गांधी ने फ़ैसला कर लिया था कि जिस पर उनका पक्का भरोसा नहीं होगा, उसका वह हरगिज़ समर्थन नहीं करेंगी। इन सभी लोगों ने श्रीमती गांधी के साथ चालाकी करने की कोशिश की थी। आपात-स्थिति में केवल ब्रह्मानंद रेड्डी ने बतौर गृह-मंत्री अपनी उपयोगिता सिद्ध की थी। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि उनके पास अपना कोई दिमाग़ नहीं है। वही समर्थन के असली हक़दार हो सकते थे।

अभी तक बी० पी० मौर्य उनके तूफ़ानी दस्ते में शामिल नहीं हुए थे। वह सिद्धार्थशंकर राय का समर्थन कर रहे थे। जब श्रीमती गांधी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने मौर्य को अपने घर बुलाया (लेखक के साथ भेंटवार्ता में)। उन्होंने मौर्य से पूछा कि वह राय का समर्थन क्यों कर रहे हैं? क्या इसलिए कि वह संजय गांधी के ख़िलाफ़ भड़क रहे हैं? शायद इससे ही वह प्रभावित हुए होंगे, श्रीमती गांधी ने अंदाज़ा लगाया। मौर्य समझ नहीं पाये कि क्या कहें? आख़िर वह मंत्रि-मंडल में एक अरसे तक कनिष्ठ-मंत्री रह चुके थे। वह उनके विरुद्ध कड़वा व्यवहार नहीं करना चाहते थे। ख़ासकर उनके मुँह पर ऐसा कुछ कहना तो और भी कठिन था। श्रीमती गांधी अंदर गयीं और एक पत्र लाकर उन्हें थमाते हुए बोलीं, "इसे पढ़ लीजिये।" यह सिद्धार्थशंकर राय का पत्र था। इसमें उन्होंने संजय गांधी की भरपूर तारीफ़ की थी और उसे "देश के भविष्य की आशा" कहा था। पत्र में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की व कांग्रेस के अंदर की रूसी लाबी की जम-कर निंदा की गयी थी। इस लाबी ने संजय-विरोध शुरू कर दिया था। "इसी बहादुर आदमी का आप समर्थन कर रहे हैं!" श्रीमती गांधी ने यह वाक्य कुछ उपहासपूर्वक कहा। मौर्य ने उसके बाद ब्रह्मानंद रेड्डी को जिताने के लिए काम करना शुरू कर दिया।

दूसरे दिन जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन शुरू हुआ, तो संभावित परिणाम बिलकुल साफ़ हो चुका था। अध्यक्ष-पद के उम्मीदवारों के चेहरों पर इस परिणाम को पढ़ा जा सकता था। कलकत्ता के साप्ताहिक पत्र, रविवार के संपादक एम० जे० अकबर ने सिद्धार्थशंकर राय से पूछा, "कैसी स्थिति है?" बहुत उत्तेजित होते हुए उन्होंने जवाब दिया, "मुझे क्या मालूम! आप किसी और से पूछिये।" वह परेशान नज़र आ रहे थे। उनकी आंखों में नींद भरी थी। कोई भी उन्हें देखकर बता सकता था कि हारने वाले हैं। हॉल का माहौल भी पिछले दिन के मुक़ाबले बदला-बदला लग रहा था। बरुआ की युवक कांग्रेस के अध्यक्ष प्रियरंजनदास मुंशी के बदले संजय की युवक कांग्रेस के अध्यक्ष जनार्दनसिंह गहलौत "मंच पर मुसकराते" नज़र आ रहे थे। हॉल के बाहर भी संजय-टोली का दबदबा छाया हुआ था।

जब ब्रह्मानन्द रेड्डी निर्वाचित घोषित किये गये तो ज़िंदाबाद के नारे इंदिरा गांधी के नाम के लगते रहे। किसी को कोई शक नहीं था कि असली जीत किसकी हुई थी। निश्चय ही यह रेड्डी की जीत नहीं थी। उन्होंने तुरंत श्रीमती गांधी के प्रति आभार व्यक्त किया।

उन्होंने यह विजयी स्थिति कैसे बनायी? कुछ हद तक बेहतर साधनों के ज़रिए वोटों का "जुटाया जाना" इसका कारण था। दूसरे शब्दों में, हवाई जहाज़ के टिकट, पैसे और मनोरंजन वग़ैरह का प्रबंध किया गया था। लेकिन दूसरे कारण भी थे। तथाकथित "प्रगतिशीलों" और कम्युनिस्ट-समर्थक तत्वों के एकाएक श्रीमती गांधी के विरुद्ध एकजुट हो जाने से परंपरागत कांग्रेसी शंकित हो गये थे। प्रारम्भ ही से कांग्रेस सभी तरह के विचारों के लोगों के लिए, एक छोर से दूसरे छोर तक हर तरह के सिद्धांतों को मानने वालों के लिए एक शरणस्थल रही थी। हर तरह के लोगों के श्रीमती गांधी के नेतृत्व को स्वीकार करने का एक राज़ यह भी था कि वह हर तरह के लोगों को जोड़े रखती थीं। किसी भी तरह के 'वाद' या किसी भी निष्ठा से मुक्त श्रीमती गांधी का एक ही 'वाद' था 'स्वार्थवाद'। पूंजीवाद, समाज-वाद, साम्यवाद अथवा वैज्ञानिक समाजवाद कुछ भी हो, उनके लिए संजय से बढ़

कर कुछ नहीं था। चाहे रूबल हों या डॉलर, मार्क हों या पौंड, जब तक उनका बहाव इस ओर जारी रहे, उनके लिए उनमें कभी कोई फ़र्क़ नहीं रहा। शायद यही उनकी गुटनिरपेक्षता थी।

इन तत्वों (रूस्की एलीमेण्ट) के एकजुट हो जाने से परंपरागत कांग्रेसी श्रीमती गांधी व संजय गांधी की गोद में जा गिरे। उन्हें यह जगह ज़्यादा आराम-देह लगी। फिर विधानसभा चुनावों की तलवार भी सर पर लटक रही थी। मार्च के लोकसभा चुनावों वाले "भूचाल"(लंदन के 'गार्जियन' अख़बार ने मार्च के परि-णामों को भूचाल कहा था) की पृष्ठभूमि में कांग्रेसजन यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि किधर जायें? ज़्यादातर लोगों का यह निष्कर्ष था कि जहाँ तक चुनावों का ताल्लुक़ है, अभी भी श्रीमती गांधी के साथ ही दाँव लगाना ठीक होगा। बहुत-से लोग अनुभव करते थे कि 'देवी माँ' के साथ वे सुरक्षित रहेंगे।

स्टेट्समैन में एस० निहालसिंह ने लिखा : "अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के परिणामों में जार्ज आरवेल की पुस्तक '1984' वाले संकेत मिलते हैं तो स्वयं कांग्रेसजन ही उसके लिए दोषी हैं;...बंसीलाल को दंडित किया गया, विद्याचरण शुक्ल को फटकार बतायी गयी, लेकिन कुल मिलाकर जो व्यक्ति तमाम घटनाओं के लिए जवाबदेह था, उसे फिर नेता स्वीकार कर लिया गया। मतदाताओं के निर्णय की घोर अवहेलना की गयी। और दल ने अपनी मुद्रा कुछ इस तरह की बनायी जैसे संजय गांधी हवा में विलीन हो गये। इस कार्यवाही में श्रीमती गांधी ने एक घिनौना अध्याय आपात-काल के नामधारी गृह-मंत्री रहे ब्रह्मानंद रेड्डी को अपनी ओर से अध्यक्ष चुनवाकर जोड़ दिया। भारतीय राजनीति के इतिहास में आरवेल की पुस्तक की तरह का यह नाटक अपने-आप में ढिठाई का एक अच्छा-ख़ासा नमूना है।"

एक महीने पहले श्रीमती गांधी ने यह ऐलान किया था कि वह "राजनीति में नहीं हैं" (स्टेट्समैन 7 अप्रैल, 1977)। अलबत्ता उन्होंने इसमें बड़ी चालाकी से 'फ़िल-हाल" की शर्त जोड़ दी थी। लेकिन यह बयान दिये जाने के दिन के सहित एक दिन भी ऐसा नहीं गुज़रा था जब वह राजनीति में पूरी तरह डूबी न रहीं हों। अब तो वह खुलेआम राजनीति में लिप्त थीं। ब्रह्मानंद रेड्डी ने कर्तव्यभाव से उन्हें कांग्रेस कार्यसमिति और संसदीय बोर्ड दोनों में मनोनीत किया था। इक्कीस सदस्यों की कार्यसमिति में श्रीमती गांधी के भक्तों को अच्छी-खासी संख्या में उन्होंने रखा था। इसमें कमलापति त्रिपाठी, वीरेंद्र वर्मा, ख़ुर्शीद आलम ख़ाँ, वी० पी० राजू आदि थे। हालाँकि स्वर्णसिंह शामिल किये गये थे, लेकिन बरुआ को निकाल फेंका गया था। पत्रकारों ने रेड्डी से कार्यसमिति की घोषणा के बाद पूछा, "बरुआ को कार्यसमिति में क्यों नहीं लिया गया?" उन्होंने सिर्फ़ यह कहा कि "उनका नाम सूची में नहीं है" (इंडियन एक्सप्रेस 13 मई, 1977)। इससे यह शक पैदा हुआ कि कार्यसमिति के सदस्यों को चुनने में रेड्डी की सलाह ली भी गयी थी या नहीं? अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी कई इंदिरा-समर्थकों को चुना। उनमें ए० पी० शर्मा, वी० पी० नाइक, सी० एम० स्टीफ़ेन, वी० पी० नरसिंहराव, एस० डी० शर्मा और श्रीमती चंद्रशेखर थीं। लेकिन उसमें चंद्रजीत यादव और प्रियरंजनदास मुंशी जैसे उनके विरोधी भी जीते। लेकिन इनका असर ख़त्म किया जा सकता था। पर श्रीमती गांधी ने कुछ ही समय में अनुभव कर लिया कि पार्टी जिस तरह उनकी मुट्ठी में होनी चाहिए थी वैसी नहीं है।

दल में अपनी सफलता के बावजूद वह "भयाक्रांत" व्यक्ति थीं। इस शब्द का बी० पी० मौर्य तथा उनके अनेक नज़दीकी लोगों ने उस समय की उनकी मानसिकता का वर्णन करने के लिए बार-बार इस्तेमाल (लेखक के साथ भेंटवार्ता में) किया। हर दिन वह एक नयी समस्या अपने सामने खड़ी देखती थीं—ऐसी समस्या जिसे वह तनिक भी नहीं जानती थीं। 19 मई को मंत्रिमंडल ने आपात-स्थिति की ज़्यादतियों की जाँच के लिए एक-सदस्यीय आयोग बिठा दिया। केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने उनके बेटे संजय के मारुति मोटर कारखाने पर छापा मारा। उनके और बंसीलाल के ख़िलाफ़ जाँच आयोग बिठाया जा रहा था। जनता सरकार में जार्ज फ़र्नांडीज़-जैसे उनके कट्टर दुश्मन उनके पीछे हाथ धोकर पड़ गये थे। वे उन्हें न छपने योग्य गालियाँ दे रहे थे। यहाँ तक कि गृह-मंत्री चरणसिंह, जिन्होंने जनवरी में चुनाव घोषित होने के एक हफ़्ते पहले तक शांति के लिए अनुनय-विनय करनेवाला पत्र लिखा था, अब उनके ख़िलाफ़ नूरेमबर्ग की तरह के मुक़दमे की माँग कर रहे थे। श्रीमती गांधी को विश्वास था कि उनका टेलीफ़ोन टैप किया जाता था और उनके व उनके परिवार के लोगों का हर जगह पीछा किया जाता था। तीनमूर्ति भवन छोड़ने के बाद से वह जिस घर में रहती आयी थीं, उससे बाहर निकलने के तरीक़े की वजह से अब उनके चेहरे पर एक ख़ास तरह की "पीड़ा" दिखायी देती थी।

मैंने दूर से 12 विलिंगडन क्रिसेंट में उस शाम उन्हें देखा था, जिस दिन वह वहाँ आयी थीं। लगता था, वह घंटों बरामदे में एक लंबे खंभे से टिककर खड़ी रही थीं। उनकी आँखें जैसे शून्य में टिकी थीं। मैं चकितभाव से यह अनुमान लगा रहा था कि वह क्या सोच रही थीं? क्या वह अपनी गुज़री ज़िंदगी के सूत्रों को सहेज रही थीं? या वह अभी हाल में गुज़रे दुर्भाग्य को या ग्रहण में पड़े वर्तमान को नाप-तौल रही थीं?

लगभग एक हफ़्ते बाद उस निवास पर मैं फिर गया। इस बार मैं आर० के० धवन से मिलने गया था। कम्पाउंड में शामियाना लगा हुआ था। स्विटज़रलैंड के ढँग की कुटियाएँ बन रही थीं। नव-निर्वाचित अध्यक्ष ब्रह्मानंद रेड्डी और आधे दर्जन कांग्रेसी आये हुए थे और अंदर बुलाये जाने का इंतज़ार कर रहे थे। धीरे-धीरे मगर लगातार अब फिर तमाशा जमने लगा था।

एक महीने बाद श्रीमती गांधी ने एक टी० वी० भेंट-वार्ताकार डेविड फ्रॉस्ट को बताया कि वह कोई राजनीतिक काम नहीं कर रही थीं। और यह कि जैसे ही उन्हें अपनी हार की ख़बर मिली थी तो उन्होंने राहत अनुभव की थी, "मानो कोई भारी चट्टान मेरे कंधे से हट गयी हो।"

"राहत?" डेविड ने कुछ विस्मय से पूछा।

"राहत, चरम राहत, पूरी राहत," श्रीमती गांधी ने कहा। एक घंटे की भेंट-वार्ता में श्रीमती गांधी की सुरक्षा के अभाव की आशंका, मक्कारी, उलझन, चारों ओर से घिरे होने के भय आदि की वे तमाम भावनाएँ उभरकर सामने आ गयीं जो उनकी मानसिकता का अभिन्न अंग बन गयी थीं।

डेविड : अब आप क्या कर सकती हैं? क्या आप कुछ करने को स्वतंत्र हैं? क्या आप यात्रा करने को स्वतंत्र हैं?

इंदिरा : अब तक उन्होंने खुले रूप में तो कुछ नहीं कहा है, पर मुझे आशंका है कि वे मुझे शायद ही इसकी स्वतंत्रता दें।

डेविड : लेकिन क्या आप मानती हैं कि यह सब चलता रहेगा ? मेरा मतलब है, किसी ने कहा था कि मौजूदा सरकार को, उन जैसे अलग-अलग तरह के लोगों को एक करने वाली चीज़ आपके प्रति उनका विरोध और आपसे उनकी नफ़रत है ?

इंदिरा : मैं नहीं जानती। लेकिन मुझे बताया गया है कि वे मुझे नापसंद करते हैं, और समझते हैं कि मैं उनके लिए ख़तरा हूँ। मैं ख़तरा क्यों हूँ, मैं नहीं जानती। मैं तो बिलकुल शांत हूँ। मैं तो कोई भी राजनीतिक काम नहीं कर रही हूँ।

डेविड : क्या आपके इर्द-गिर्द के लोगों ने आपके लिए ठीक से काम नहीं किया ?

इंदिरा : कुछ लोगों ने तथ्य नहीं बताये, यह बाद की घटनाओं से स्पष्ट है। इसीलिए नयी सरकार द्वारा ये लोग सबसे पहले अपनाये गये।

डेविड : कौन लोग ?

इंदिरा : गुप्तचर विभाग के लोग और अन्य लोग।

डेविड : आप कह रही हैं कि गुप्तचर विभाग के लोगों ने आपसे तथ्य छिपाये ?

इंदिरा : ऐसा मैं नहीं कहती—मेरा मतलब है, मैं सोचती हूँ—मेरा मतलब है, मैं कल्पना करती हूँ कि इसीलिए ये लोग विपक्ष के कुछ लोगों के इतने क़रीब हो गये हैं।

डेविड : मैं सोचता हूँ कि आपका बेटा चुनाव कराये जाने के पक्ष में नहीं था, क्या इस पर बहस हुई थी ?

इंदिरा : मेरे बेटे का नीतियों और निर्णयों से कोई ताल्लुक़ नहीं था। न ही मैं चुनाव या और किसी चीज़ पर उससे मशविरा करती थी।

डेविड : लेकिन हर कोई कहता है और इसकी कई रिपोर्टें हैं कि वह आपकी आपात-परिषद की दैनिक बैठक में भाग लेता था। आपके दफ़्तर से कार्य संचालित करता था। कभी-कभी तो मंत्रियों तक को आदेश देता था।

इंदिरा : दैनिक बैठक जैसी कोई बात नहीं थी। और उसने एक भी बैठक में भाग नहीं लिया। कभी भी नहीं।

डेविड : अच्छा ठीक है, उसने भाग नहीं लिया। लेकिन आपके दफ़्तर से काम संचालित करने के बारे में क्या कहना है आपका ?

इंदिरा : मेरा दफ़्तर बिलकुल अलग ब्लॉक में है। उसने कभी ऐसा नहीं किया। मैं नहीं समझती कि उसने कभी मेरा दफ़्तर देखा भी होगा।

डेविड : कभी आपका दफ़्तर नहीं देखा उसने ?

इंदिरा : मेरा मतलब है, वह गया होगा उस दफ़्तर में जब मैं प्रधानमंत्री बनी थी। मुझे याद नहीं। पर निश्चय ही आपात-काल में वह कभी नहीं गया।

डेविड : मंत्रियों और उच्चतम सरकारी अफ़सरों को आदेश देने के बारे में क्या कहना है आपका ?

इंदिरा : नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ? मेरा मतलब है, यह सरासर बेतुकी बात है।

डेविड : लेकिन क्या आप यह नहीं मानतीं कि उसकी व्यापारिक गतिविधियों

को आपके प्रधानमंत्री होने का लाभ मिलता था ?

इंदिरा : हो सकता है। लेकिन इसलिए नहीं कि मैंने ऐसा कहा या किसी और ने कहा।

डेविड : क्या यह सच नहीं है कि आपने प्रजातंत्र को तक़रीबन ख़त्म कर दिया ?

इंदिरा : नहीं, निश्चय ही नहीं।

इंग्लैंड में टी० वी० पर उनके सवाल-जवाव देखकर लेखक नीरद चौधरी ने आश्चर्य प्रकट किया कि वह तो "ऊपरी तौर पर भी खतरनाक न होने का" संकेत नहीं दे रही थीं। वह समझते थे कि चुनाव की पराजय ने उन्हें कुछ शुद्ध और परिष्कृत कर दिया होगा...। "कोई पुरुष या नारी, जिसमें तनिक भी नैतिक समझ हो, वह इस तरह की पराजय के वाद राजनीति में रहने की वात नहीं सोच सकती थी। लेकिन उनमें कोई नैतिक चेतना नहीं है, वह दंभी हैं, और इसके अलावा हठी, दुस्साहसी हैं। और इन प्रवृत्तियों के कारण वह ख़तरनाक हैं।"

विलकुल भविष्यवक्ता की तरह नीरद चौधरी ने कहा था : "इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती कि वह राजनीति से निकल जायेंगी। स्पष्ट रूप से इसके संकेत मिल रहे हैं कि उनकी हिम्मत और आकांक्षाएँ लौट आयी हैं...।"

2

फिर अखाड़े में

उस दिन पालम हवाई अड्डे पर सुबह की उड़ान के लिए और यात्रियों की तरह वह भी एक यात्री होतीं, लेकिन उनके प्रसिद्ध चेहरे ने ऐसा नहीं होने दिया। वह छः बजे के कुछ पहले एक अम्बैस्डर कार में अकेले वहाँ आयी थीं। कोई पाइलट कार नहीं थी। न कोई रक्षक था। तनाव से भरी हुई वह कुछ अटपटा-सा महसूस कर रही थीं। अपने दो सहायकों के साथ, जो बहुत पहले वहाँ आ गये थे, वह लाउंज में पहुँचीं। वह उनसे आगे चल रही थीं, जैसे उन्हें किसी की सहायता की ज़रूरत न हो। इंडियन एयरलाइंस के नागपुर काउंटर पर लगभग एक दर्जन लोग लाइन में पहले ही खड़े थे। पास में दूसरी उड़ानों की लाइनें भी थीं। कोई देखे, इससे पहले वह नागपुर की लाइन में खड़ी हो गयीं। उनके हाथ में टिकट था। कुछ उत्सुक यात्री खुसुर-पुसुर करने लगे। कुछ लाइन से बाहर आकर देखने लगे। कुछ नितांत उदासीन बने रहे। श्रीमती गांधी एक आम आदमी की तरह व्यवहार करने की भरपूर कोशिश कर रही थीं। केवल एक क्षण के लिए उन्हें लाइन में खड़ा रहने दिया गया। तभी उनका एक सहायक आया और उनके हाथ से टिकट ले गया। कुछ संकोच करते हुए वह लाइन से बाहर निकल आयीं। कुछ समय तक वह समानांतर लाइनों के बीच हॉल में खड़ी रहीं। कुछ लोग उनके चारों ओर जमा हो गये। दिल्ली की एक पत्रिका की पत्रकार-फ़ोटोग्राफर ने मौक़ा पाते ही कैमरे का खटका दबा दिया। श्रीमती गांधी ने एक मुसकराहट बिखेरने की कोशिश की, लेकिन वह तनावपूर्ण थी। इतने सवेरे भी वह चेहरे पर पाउडर वग़ैरह लगाना नहीं भूली थीं। लेकिन उनकी आँखों के नीचे की काली झाईं साफ़ नज़र आ रही थी। शायद वह ठीक से सोयी नहीं थीं, या बहुत रोती रही थीं। उन्होंने सादे बार्डर की सफ़ेद साड़ी पहन रखी थी। गले में रुद्राक्ष की माला थी। वह आश्रम जा रही थीं और उसी के अनुकूल वेश-भूषा में थीं।

सत्ता से हटने के चार महीने बाद पहली बार श्रीमती गांधी दिल्ली से बाहर जा रही थीं। यह एक कठिन निर्णय था। कुछ महीने पहले तक उन्हें पक्का

विश्वास था कि भारत की जनता उन्हें चाहती है, उनकी पूजा करती है। लेकिन अब ऐसी बात नहीं थी। उनका आत्मविश्वास ढह गया था। वह डरने लगी थीं कि न जाने लोग उनके साथ कैसा बरताव करेंगे। मार्च के अंत में एक दिन बी० पी० मौर्य ने उनसे अलीगढ़ में 23 अप्रैल को अंबेडकर जयंती की मीटिंग में जाने को कहा था। श्रीमती गांधी ने आश्चर्य से पूछा था, "क्या तुम पागल हो गये हो?"(बी०पी० मौर्य के साथ लेखक की भेंटवार्ता में) "मुझे सुनने कौन आयेगा?" यशवन्तराव चह्वाण और अन्य वरिष्ठ नेता मानते थे कि उन्हें अभी जनता के बीच नहीं जाना चाहिए। वसंत साठे-जैसे उनके समर्थक भी ऐसा सोचते थे कि कुछ महीने तक उन्हें चुपचाप पड़े रहना चाहिए और खुद उन्होंने भी देहरादून या ऐसी ही किसी शांत पहाड़ी जगह पर रहने की बात कही थी।

लेकिन मौर्य दूसरी तरह से सोचते थे। विरोध तो होगा ही। ऐसा उनका मत था। लेकिन कभी तो उसका मुक़ाबला करना ही होगा। तो फिर अभी क्यों न किया जाये? बहुत-से लोगों के मन में श्रीमती गांधी के लिए सहानुभूति भी थी। ख़ासकर रायबरेली से उनके हार जाने के बाद भी कांग्रेस में अगर कोई नेता था जो अंततः लोगों को दल के पक्ष में कर सकता था तो वह श्रीमती गांधी ही थीं और उनके चमत्कार के बल पर ही ऐसा हो सकता था। यही सबसे बड़ा कारण था कि मौर्य, साठे, और ऐसे अन्य लोग उनके नेतृत्व के साथ बने रहे। मौर्य बराबर कहते रहे, "आपको जनता के बीच जाना चाहिए। आप देखेंगी कि जनता अब भी आपको चाहती है।" लेकिन श्रीमती गांधी को भरोसा नहीं होता था। वह सोचती थीं कि ये सिर्फ़ मौर्य की अच्छी-अच्छी बातें हैं।

एक दिन यमुना के उस पार की एक रिहायशी कालोनी में एक मामूली कांग्रेसी के घर शादी थी। मौर्य ने श्रीमती गांधी पर दबाव डाला कि वह उस शादी में ज़रूर जायें। इससे उन्हें यह समझने का अवसर मिलेगा कि उनके बारे में लोगों की क्या प्रतिक्रिया है, भले ही वह अवसर बहुत छोटा हो। वह हिचकिचा रही थीं। "मौर्यजी, इससे क्या फ़ायदा है?" श्रीमती गांधी ने कहा था, "शादी के समय क्यों परेशानी खड़ी की जाये?" लेकिन मौर्य ने अपना आग्रह बनाये रखा। अंत में वह मान गयीं। लेकिन एक शर्त भी रखी कि उनके वहाँ जाने की कोई जानकारी नहीं दी जायेगी। मौर्य ने बाद में बताया, "हम लोगों ने किसी को कानों-कान ख़बर नहीं होने दी थी, लेकिन जैसे ही वह वहाँ पहुँचीं, बात फैल गयी। आस-पास से काफ़ी लोग श्रीमती गांधी को देखने के लिए इकट्ठे होने लगे।" बाद में मौर्य ने उनसे कहा, "मादाम, आपने देखा कि लोग किस तरह आपको देखने के लिए उमड़ पड़े थे।" लेकिन श्रीमती गांधी अभी तक शंकित थीं। उन्होंने कहा, "हमें इसे गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। आख़िर शादियों में लोग इकट्ठे होते ही हैं।"

अगर यह उन पर ही छोड़ दिया गया होता तो शायद अपने ख़ोल से बाहर निकलने में श्रीमती गांधी को कुछ ज्यादा समय लगता। लेकिन उन पर और उनके परिवार पर होने वाले हमलों से वह चैन से नहीं बैठ पायीं। संजय और उनकी पत्नी को पालम पर अफ़सरों ने परेशान किया था। बंबई में जिस मकान में वे ठहरे थे, एक उत्तेजित भीड़ उसे घेरकर खड़ी हो गयी थी। एक तरफ़ जनता पार्टी के नेता रात-दिन उन्हें गालियाँ दे रहे थे, दूसरी ओर खुद उनकी पार्टी के कुछ नेता उन्हें अपमानित करने पर तुले हुए थे। उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि जून के विधानसभा के चुनावों में दल उन्हें चुनाव-अभियान में लगाना नहीं

चाहेगा। कमलापति त्रिपाठी ने तो यह घोषणा की थी कि श्रीमती गांधी दल के उम्मीदवारों के चुनाव-अभियान में भाग लेंगी, लेकिन महासचिव कृष्णचंद्र पंत ने स्पष्ट रूप से अखबार वालों से कह दिया था कि वह चुनाव-अभियान में भाग नहीं लेंगी। जब पंत से पूछा गया कि अगर श्रीमती गांधी ने मतदाताओं के नाम अपील जारी की तो क्या होगा? तो पंत ने सवाल को टालते हुए उदासीन-सा जवाब दिया था, "मुझे मालूम नहीं।"

इन सबसे बढ़कर एक और बात हुई। ब्रह्मानंद रेड्डी ने पैंतरा बदल लिया था। वह अ "अहसानफ़रामोश व्यक्ति" यह जतलाने की कोशिश कर रहा था कि वह "रबर की मोहर जैसा अध्यक्ष" नहीं है। उन्होंने एक प्रेस-सम्मेलन में घोषणा की कि चुनाव घोषणापत्र श्रीमती गांधी द्वारा पास नहीं किया गया। उन्होंने कहा कि इसका मसौदा भी श्रीमती गांधी को नहीं दिखाया गया था। अध्यक्ष के चुनाव के बाद श्रीमती गांधी-विरोधी गुट ने ब्रह्मानंद रेड्डी पर डोरे डालना शुरू कर दिया था और अंत में उन्हें अपने पक्ष में कर लिया था। अब श्रीमती गांधी एक महान राष्ट्रीय नेता से केवल एक गुट की नेता रह गयी थीं।

श्रीमती गांधी और ब्रह्मानंद रेड्डी में आख़िरी संबंध-विच्छेद तब हुआ जब राष्ट्रपति-पद के लिए संजीव रेड्डी की उम्मीदवारी का सवाल उठा। ब्रह्मानंद रेड्डी को मालूम था कि श्रीमती गांधी किसी को भी बरदाश्त कर सकती हैं, पर संजीव रेड्डी को नहीं। उन्हीं संजीव रेड्डी की उम्मीदवारी के सवाल पर श्रीमती गांधी ने 1969 में दल का विभाजन कर डाला था, लेकिन मुलम्मा चढ़ाया था बड़ी प्रगतिशीलता का। उनकी कोशिशों के बावजूद संजीव रेड्डी राष्ट्रपति भवन में अधिष्ठित हो जायें, इसे वह बरदाश्त नहीं कर सकती थीं। फिर भी अन्य कांग्रेसी नेताओं के मशविरे से ब्रह्मानंद रेड्डी ने राष्ट्रपति-पद के लिए संजीव रेड्डी के नाम पर दल की सहमति की घोषणा कर दी थी। श्रीमती गांधी के लिए इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता था?

इन सब बातों के कारण उन्हें कुछ समर्थन की तलाश थी ताकि वह मज़बूत धरातल पर खड़ा होकर फिर से ज़बरदस्त प्रहार कर सकें। लेकिन ऐसा समर्थन था कहाँ? लगभग इसी समय गृह-मंत्री चरणसिंह ने उनके ख़िलाफ़ एक नया आरोप लगाया। 13 जुलाई को उन्होंने लोकसभा में कहा कि पिछली सरकार नज़रबंद राजनीतिक नेताओं को जेलों में गोली से उड़ा देने का विचार कर रही थीं। वसंत साठे ने बाद में बताया कि "यह तो हद हो गयी थी और यह बात बरदाश्त से बाहर थी। हम लोगों में से कुछ श्रीमती गांधी के पास गये और उनसे कहा कि अब वह चुप नहीं रह सकतीं। उन्हें इस वक्तव्य का खंडन करना ही चाहिए। हमने सुझाया कि इसका खंडन करने के बाद अब उन्हें जनता के बीच जाना शुरू करना चाहिए। हमें जनता के साथ जीना और मरना है।"

वह स्वयं भी अब कुछ पहल करने का विचार कर रही थीं। वह नहीं चाहती थीं कि जिस दिन संजीव रेड्डी अपना पद ग्रहण करें, उस दिन वह दिल्ली में रहें। अगर वह दिल्ली में रहीं और उस समारोह में नहीं गयीं तो इसे अशिष्ट व्यवहार समझा जायेगा। अच्छा है कि वह कहीं बाहर रहें। लेकिन जायें कहाँ? रायबरेली के लोगों से निमंत्रण प्राप्त हुआ था। लोगों ने राजनारायण को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया था, लेकिन प्रारंभ करने के लिए रायबरेली कोई अच्छी जगह नहीं थी।

निर्मला देशपांडे ने सुझाया, "पवनार क्यों न जाया जाये?" निर्मला एक अर्से

से विनोबा भावे की शिष्या रही थीं और पराजय के बाद श्रीमती गांधी की सचिव हो गयी थीं। श्रीमती गांधी ने तुरंत सहमति दे दी। दूसरे साथियों का भी यही ख़याल था कि प्रारंभ करने के लिए पवनार बहुत अच्छी जगह थी। एक तो यह कि वह "सबसे बड़ी पराजय के क्षेत्र" से दूर था और दूसरे यह कि वह महाराष्ट्र में था, जहाँ अभी भी कांग्रेस का राज्य था। पवनार जाने का निर्णय पक्का हो गया।

विनोबा भावे काफ़ी वर्षों से 'सरकारी साधु' रहे हैं। उन्होंने सही क़दम उठाये थे, श्रीमती गांधी के बारे में सही टिप्पणियाँ की थीं, और यहाँ तक कि सर्वोदय आंदोलन को पूरी तरह से जयप्रकाश नारायण के साथ जाने से बचाने के लिए विभाजित तक कर दिया था। एक तरह से उन्होंने आपात-स्थिति को भी आशीर्वाद दिया था; उसे 'अनुशासन पर्व' कहा था। फिर भी उन पर और आश्रमवासियों पर पूरा भरोसा नहीं किया गया था। महाराष्ट्र सरकार ने आपात-स्थिति के दौरान आश्रम पर छापा मारा था। विनोबा ने आपात-स्थिति पर विभिन्न पहलुओं से विचार करने के लिए पवनार में एक आचार्य-सम्मेलन बुलाया था। इस सम्मेलन में जो आम राय बनी थी वह श्रीमती गांधी के लिए श्रेयस्कर नहीं थी :

> सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या में नज़रबंदी, नागरिक स्वतंत्रताओं में कटौती, प्रेस पर सेंसर लगाना आदि देश के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं हैं और इन्हें अनिश्चित काल के लिए जारी नहीं रखा जा सकता।...आपात-स्थिति को ख़त्म करने के लिए नयी शुरुआत की ज़रूरत है।

विनोबा के नाखुश होने के कारण थे। सफलता के नशे में चूर श्रीमती गांधी ने आचार्यों की सिफ़ारिशों की न केवल उपेक्षा कर दी, बल्कि विनोबा के दूत श्रीमन्नारायण से मिलने तक से इंकार कर दिया। लेकिन अब जब वह ज़मीन पर आ गिरीं तो उन्हें न केवल विनोबा के आशीर्वाद की ज़रूरत थी, बल्कि उन्हें अपने प्रति जनता सरकार का विरोध कम करने के लिए भी उनकी मदद की ज़रूरत थी।

लेकिन तीन दिन तक बंद कमरे में लगभग आधी दर्जन मुलाक़ातों में उस साधु की तरफ़ से सिर्फ़ एक सलाह मिली कि 'चलते रहो।' विनोबा ने बार-बार यही दोहराया। विनोबा 'कर्ममुक्ति' का पालन कर रहे थे। और स्वास्थ्य और आध्यात्म के अलावा किसी विषय पर बात नहीं करते थे, लेकिन उनकी सलाह का क्या मतलब था? एक आश्रमवासी ने स्पष्ट किया कि विनोबा का मतलब सिर्फ़ यह था कि वह अपने को स्वस्थ रखें। ज़्यादा घूमेंगी तो स्वस्थ रहेंगी। लेकिन विचित्र संयोग यह था कि सलाह भी ठीक वैसी ही थी जो नागपुर से पवनार तक के रास्ते में श्रीमती गांधी के समर्थकों ने अपने नारों में ध्वनित की थी : "इंदिरा गांधी आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं!"

उन पर इसका संजीवनी जैसा प्रभाव हुआ। नागपुर से पवनार तक का सफ़र 24 जुलाई को तीसरे पहर उन्होंने बहुत तेज़ी से पूरा किया था। रास्ते की सड़कों पर खड़ी भीड़ को थोड़ी-थोड़ी देर के लिए वह संबोधित भी करती गयी थीं। हर बार जब भी वह भीड़ के सामने आयीं, ज़्यादा तरोताज़ा होती

गयीं। चेहरे पर ज़्यादा रौनक़ आती गयी। धीरे-धीरे वही पुराना अंदाज़ आने लगा था। नागपुर में जब एक नेता ने उनसे कहा कि लोग आपको सुनना चाहते हैं तो उनकी आँखों में आँसू आ गये। बाद में जब कुछ लोगों ने उनसे पूछा कि "आप बाहर कब आ रही हैं?" तो उनका जवाब था: "क्या इस वक़्त मैं बाहर नहीं आ गयी हूँ।" पवनार की तीन दिन की यात्रा के दौरान ठकुरसुहाती सुनते-सुनते और पैर छूनेवालों की क़तारों को देखने के बाद वह साहस से भर गयीं। श्रीमती गांधी ने लौटते समय एक पत्रकार को बताया कि उनके राजनीति में लौटने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, क्योंकि "राजनीति उन्होंने कभी छोड़ी ही कब थी?"

पवनार से लौटने के बाद श्रीमती गांधी ने अनुभव किया कि दल में उनके साथियों का मूड बिलकुल बदला हुआ है। लोग निडर होकर उनके ख़िलाफ़ आग उगल रहे थे। पहला हमला 18 जुलाई को कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में हुआ। रेड्डी, चह्वाण और यहाँ तक कि त्रिपाठी सहित दल के तमाम बड़े नेता उस समय चुप्पी साधे बैठे रहे जब देश के विभिन्न भागों के सदस्यों, ख़ासकर असम और पश्चिम बंगाल के सदस्यों ने "दल के अंदर लोकतंत्र" ख़त्म करने के लिए (जिसकी चर्चा स्तालिन के वाद के रूप में अकसर सुनी जाती थी) और दल के आर्थिक कार्यक्रमों में "ढील" के लिए श्रीमती गांधी की अच्छी ख़बर ली। श्रीमती गांधी के समर्थकों द्वारा की गयी उनकी प्रशंसा की आवाज़ें आलोचना के तीखेपन में डूब गयीं। कर्नाटक से लोकसभा के सदस्य एफ़० एच० मोहसिन और श्रीमती पूरबी मुखर्जी अभी भी श्रीमती गांधी की तारीफ़ कर रहे थे, लेकिन चौकड़ी के ख़िलाफ़ उन्हें भी बोलना पड़ा। पश्चिम बंगाल के राज्यसभा के सदस्य काली मुखर्जी ने, जिन्होंने हाल में दल से श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की माँग की थी, कहा कि "अख़बारों में बातें छपवाने में क्या बुराई है? या तो वह हमारा सही ढंग से नेतृत्व करें, या अवकाश ले लें।" असम के राज्यसभा के सदस्य एन० आर० चौधरी ने साफ़-साफ़ कहा कि "हमें जनता को स्पष्ट बता देना चाहिए कि इमरजेंसी के लिए पार्टी ज़िम्मेदार नहीं है।"

कांग्रेस संसदीय दल में अगले दिन भी हमला जारी रहा। एक सदस्य ने चिल्लाकर कहा, "हम लोग दल में एक आदमी के शासन को नहीं चलने देंगे।" हर व्यक्ति "स्वतंत्र सोच-विचार की क्षमता रखने वाले सामूहिक नेतृत्व" की माँग कर रहा था। पश्चिम बंगाल के एक उग्र सदस्य सौगतराय ने डेविड फ्रॉस्ट की भेंट-वार्ता में श्रीमती गांधी द्वारा आपात-स्थिति और संजय गांधी दोनों का पक्ष लिये जाने पर खेद व्यक्त किया। साठे ने बीच में टोकते हुए कहा, "श्रीमती गांधी को उसमें सही-सही उद्धरित नहीं किया गया था।" उन्होंने इस बात को अनुभव ही नहीं किया कि श्रीमती गांधी को "सही-सही उद्धरित" न करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था, क्योंकि श्रीमती गांधी को कहीं उद्धरित नहीं किया गया था, बल्कि वह सीधे दूरदर्शन पर बोल रही थीं। साफ़ था कि साठे श्रीमती गांधी के विचारों को ही प्रतिध्वनित कर रहे थे।

पवनार में पत्रकारों से बातचीत करते हुए श्रीमती गांधी ने कहा था कि बी० बी० सी० ने वचन दिया था कि वह "इस तरह की कोई बात नहीं करेगा।" मैंने तो पूरी तरह चुप रहने का फ़ैसला किया था। लेकिन यह एक ऐसी पहेली थी जिसे इसी तरह रहने नहीं दिया जा सकता था। साहस करके मैंने पूछ ही लिया, "माफ़ कीजियेगा, मादाम, क्या आप कृपा करके इसका कुछ और स्पष्टीकरण करेंगी?"

उन्होंने मेरी तरफ़ तीखी नज़र से देखते हुए झिड़ककर कहा, 'उन्होंने मुझे आश्वासन और वचन दिया था।'

यह स्पष्टीकरण भी पहले वाली उस पहेली जैसा ही था, जिसका मैंने स्पष्टीकरण माँगा था।

"मादाम, किस तरह का स्पष्टीकरण ?"

"इस तरह की कोई बात न करने का।"

मैं अब तक भौंचक्का था। मैंने फिर कहा, "माफ़ कीजियेगा, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। किस तरह की ? क्या दूरदर्शन कार्यक्रम में कोई तोड़-मरोड़ की गयी थी ? क्या आपकी बात को ग़लत तरह से पेश किया गया था ?"

वह बुरी तरह फँस गयी थीं। टेप के नफ़े-नुक़सान दोनों रहते हैं। निक्सन को इसका सबक़ मिल चुका था। शब्दों के टटोलने में वह बड़बड़ाती हुई बोलीं, "नहीं-नहीं, उन्होंने हमें साफ़ शब्दों में वचन दिया था।"

डेविड की कला से मैं अनजान था। अपने धंधे के कुछ वरिष्ठ साथियों को मुझे उस महान हस्ती के सामने से खदेड़ देने पर, आमादा देखकर मैंने भी दुस्साहस के बजाय विवेक से ही काम लेना बेहतर समझा। मैं चुप हो गया। लेकिन यह समझ नहीं पाया कि उस दूरदर्शन भेंटवार्ता में डेविड से कहाँ चूक हुई थी ? क्या बी० बी०सी० ने जिस ढंग से उस कार्यक्रम को प्रस्तुत किया था उसमें कोई ग़लती थी ? वह कार्यक्रम श्रीमती गांधी के एक बड़े-से व्यंगचित्र के साथ प्रारंभ हुआ था। इसमें श्रीमती गांधी को वृद्धा, दुष्टा और उदास दिखाया गया था। उनके एक हाथ में उन्हीं की शक्ल की एक हँसती हुई कठपुतली थी। इसके ख़त्म होते ही दो व्यंग-चित्र और दिखाये गये थे—इंदिरा के दो रूपों के। लेकिन क्या इन रेखाचित्रों का कोई असर होता अगर डेविड ने भी लीपापोती करने वाली वैसी ही कोई भेंटवार्ता की होती जैसी आज पत्रिकाओं में आये-दिन प्रकाशित होती रहती हैं ?

श्रीमती गांधी ने अब रात्रिभोज की राजनीति लड़ाना शुरू किया। निखिल चक्रवर्ती ने 30 जुलाई 1977 के मेनस्ट्रीम में लिखा : बिल्ली शिकार की घात में निकल पड़ी है। वह इस फ़िराक़ में है कि कांग्रेस के ज़्यादा-से-ज़्यादा भाग को हड़प ले। श्रीमती गांधी के कर्नाटक के मित्रों ने इस रात्रिभोज का आयोजन किया था। देवराज अर्स बंगलौर से हवाई जहाज़ से आये थे। 4 अगस्त की शाम को अतिथियों का इंतज़ार करते हुए देवराज अर्स माँ-बेटे के बारे में अपने बिखरे हुए विचार व्यक्त कर रहे थे। पाइप का कश खींचते हुए उन्होंने कहा, "आख़िर तो वह माँ हैं। उन्होंने राजनीति में अपनी ग़लती को समझ लिया है" (हिंदुस्तान टाइम्स, 5 अगस्त, 1977)। एक पत्रकार ने अर्स से पूछा, "लेकिन बेटे के बारे में आपका क्या कहना है ?" अर्स ने बहुत गंभीर मुद्रा धारण करते हुए जवाब दिया, "मैं समझता हूँ कि उसे अपने मेकैनिक के काम पर पूरा ध्यान देना चाहिए, राजनीति पर नहीं। मशीनों के काम में वह दक्ष है, राजनीति में बिलकुल नहीं। मैंने उससे पहले ही कहा था, 'नौजवान, तुम राजनीति नहीं कर सकते। राजनीति अपनी माँ के लिए छोड़ दो'।" यह आनेवाली घटनाओं का पूर्वाभास था।

भोज-राजनीति विफल रही। श्रीमती गांधी आ गयी थीं। कमलापति भी ताबेदारी में थे। लेकिन न तो रेड्डी आये और न चह्वाण। यहाँ तक कि कांग्रेस संसदीय दल के दो उपनेता भी नहीं आये। आयोजकों ने भोज में भाग लेनेवाले

संसद-सदस्यों और भूतपूर्व संसद-सदस्यों की संख्या को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताने की लाख कोशिश की, मगर हर कोई जानता था कि आयोजन बहुत फुसफुसा रहा।

इसके अलावा यह खेल तो दूसरे लोग भी खेल सकते थे। अगली शाम को लगभग सौ संसद-सदस्य, भूतपूर्व राज्यमंत्री वी० ए० सैयद मुहम्मद के घर पर एकत्र हुए। वहाँ उन लोगों ने श्रीमती गांधी के पक्ष में भोज-राजनीति की खतरनाक प्रवृत्ति की निंदा की। (स्टेट्समैन, 6 अगस्त, 1977)। उन्होंने घोषणा की कि "सामूहिक नेतृत्व का यह मतलब नहीं है कि तीन-चार लोग एक जगह इकट्ठे हो जायें। इसका मतलब है कि गाँव से लेकर संसदीय बोर्ड तक की सभी कमेटियों में नयी जान डाली जाये।" श्रीमती गांधी की राय इससे बिलकुल अलग थी। जो पार्टी श्रीमती गांधी के निजी स्वार्थों को पूरा न कर सके उसका उनके लिए कोई उपयोग नहीं था।

वह जानती थीं कि पार्टी को अपने क़दमों में झुकाने के लिए कुछ दूसरे तरीक़े अख़्तियार करने पड़ेंगे। उन्हें जनता के बीच अपने चमत्कार का जादू फिर से जगाना पड़ेगा। उन्हें उद्दंड लोगों को बता देना पड़ेगा कि कांग्रेस में सिर्फ़ उनकी हस्ती है। अब उन्हें केवल अनुकूल अवसर की ज़रूरत थी।

बेलछी के नरभक्षी उन्माद की खबरें कुछ समय पहले समाचारपत्रों में खूब छपी थीं। पटना और नालंदा की सीमा पर बेलछी नाम का एक छोटा-सा गाँव है। इस इलाक़े में प्रायः अपराध होते रहते हैं। इस सुदूर गाँव में नवधनाढ्य कुर्मियों के नेतृत्व में एक गिरोह ने 11 हरिजनों को गोलियों से भून डाला था और उन सबके शव एक ही चिता में झोंक दिये थे। किसी भी नेता के लिए, जो अपने को ग़रीबों का हमदर्द जताना चाहता हो, यह भगवान का भेजा हुआ ज़बरदस्त मौक़ा था। लेकिन श्रीमती गांधी हिचकिचा रही थीं। बेलछी पवनार या नागपुर नहीं था। यह बिहार था—जे० पी० आंदोलन का गढ़, जहाँ से उनके ख़िलाफ़ राजनीतिक हमले की शुरुआत हुई थी। निश्चय ही यहाँ गड़बड़ हो सकती थी। मगर बिहार के उनके अंतरंग साथियों, केसरी, मिश्र आदि ने उन पर बेलछी जाने के लिए दबाव डाला। उन्होंने कहा कि अब वह जे० पी० आंदोलन वाला बिहार नहीं है। जे० पी० बीमार हैं, निराश हैं। अपने कदमकुआँ के घर में चुपचाप पड़े हैं। उनकी "युवाशक्ति" ख़त्म हो गयी है। उनके सपने ध्वस्त हो चुके हैं। जनता अपने नये शासकों से निराश होती जा रही है। यहाँ तक कि छात्र-संघर्ष समिति, या उसका जो-कुछ भी बचा है, अपनी क्रांति में नयी जान डालने की कोशिश कर रही है। बिहार बिलकुल बदल गया था। "वह आपका इंतज़ार कर रहा है," केसरी ने श्रीमती गांधी से कहा था।

निर्णय लेने में टालमटोल करते-करते उन्होंने नौ दिन निकाल दिये। हाँ, अब वह जायेंगी, क्योंकि चह्वाण ने वहाँ जाने की तारीख़ घोषित कर दी थी। वह उनसे पहले वहाँ पहुँच जायेंगी।

हवाई जहाज़ में वह आगे की खिड़की के पास वाली पहली सीट पसंद करती थीं और प्रायः वह उन्हें मिल जाती थी। एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं थी। शुरू की कुछ पंक्तियों में उनकी जय-जयकार करनेवाले बैठे थे। श्रीमती गांधी के इतने क़रीब बैठकर वे गद्गद हो रहे थे। जो औरत पहले उनके लिए एक मिनट का समय भी निकालने को तैयार नहीं थी आज वही हर

संसद-सदस्य के साथ चिपके रहने को बेताब थी, भले ही वह हारा हुआ हो। वह भी तो हारी हुई थीं।

उनके पासवाली सीट पर श्रीमती प्रतिभासिंह बैठी थीं, जिन्हें श्रीमती गांधी राज्यसभा में इसलिए लायी थीं कि उनके पिता सर सी० पी० एन० सिंह नेहरू के उतने ही भक्त थे जितने अँग्रेज़ों के थे। उनके साथ दूसरी महिला थीं—कुमारी सरोज खापर्डे। पवनार की यात्रा को सफल बनाने में कुमारी खापर्डे का बहुत हाथ था। वह हरिजन संसद-सदस्या होने के कारण श्रीमती गांधी के लिए बहुत महत्व रखती थीं, क्योंकि श्रीमती गांधी देश की सबसे बड़ी हरिजन नेता बनने की ठान चुकी थीं।

लेकिन उनके साथ ऐसे लोगों का होना आसानी से समझ में नहीं आता था जो जीवन-भर सामंतवाद के बल पर फले-फूले थे। लेकिन वे भी "दबे-कुचले लोगों के अलमबरदार" होने का दावा करते थे। मार्क्स और एंगेल्स के बारे में लगातार बातें करते रहते थे। उनमें से एक पहले कृष्ण मेनन के प्रश्रय में था, बाद में पी० एन० हक्सर के प्रश्रय में, जिन्होंने श्रीमती गांधी को गौरव के शिखर पर पहुँचाया था। दूसरा, बिहार के उन सिंडीकेट नेताओं का पिट्ठू रह चुका था जिनके खिलाफ़ 1969 में श्रीमती गांधी ने लड़ाई लड़ी थी।

हवाई जहाज़ की सारी हलचल और गहमागहमी आगे की ही कुछ लाइनों में थी। चाटुकार कांग्रेसियों के बीच कुछ ऐसे उद्योगपति भी थे जो कभी 1, सफ़दरजंग रोड की कोठी के आसपास मँडराया करते थे और आजकल जनता शासकों के दरबार में हाज़िरी देने लगे थे। सच तो यह है कि केवल कांग्रेसजनों में ही खतरे से दूर रहने की प्रवृत्ति नहीं थी। इन उद्योगपतियों का तो उनसे कहीं ज़्यादा दाँव पर लगा हुआ था, इसलिए वे भी उनमें आ मिले थे। पीछे की क़तारों में यात्री न केवल उदासीन थे, बल्कि कुछ तो तीखी टिप्पणियाँ भी कर रहे थे। एक व्यापारी-कंपनी के बड़े अफ़सर ने दूसरे से कहा, "वापसी का अभियान चालू हो गया है।" दूसरे ने संदेह प्रकट करते हुए कहा कि शायद अगली क़तारों में उस दिन के अखबार की प्रतियाँ नहीं हैं, जिसमें यह छपा था कि कुछ कांग्रेस सांसदों ने भूतपूर्व प्रधानमंत्री से चुनाव कोष का हिसाब-किताब माँगा है!

13 अगस्त, 1977 की सुबह। 6.50 का समय। विमान के उड़ान भरने का वक़्त। श्रीमती गांधी के सामने कार्यक्रमों से भरा एक लंबा दिन था। वह पीठ टिकाकर बैठ गयीं और खिड़की से बाहर देखने लगीं। उनकी आँखों के नीचे झाइयाँ फिर दिखायी देने लगी थीं। एयर-होस्टेस खाने-पीने का सामान लेकर आयी तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। भीष्मनारायण सिंह सेब लेकर आये। पर उन्होंने वह भी नहीं लिया। एक प्रशंसक ने कहा, "उनके अंदर की शक्ति का जो अपार भंडार संचित है उसकी लोगों को कल्पना नहीं है।" वे सब श्रीमती गांधी की तारीफ़ों के पुल बाँध रहे थे। उनके अनुसार उन्हें वापस आने से अब कोई रोक नहीं सकता था। और जब उनकी वापसी होगी तो उनकी तक़दीर भी बदल जायेगी। वे उन्हें याद दिला सकेंगे कि जब वह सत्ता से बाहर अपने बुरे दिन काट रही थीं, तब केवल उन्होंने ही उनका साथ दिया था। क्या तब वह उनकी तरफ़ से अपनी नज़रें फेर लेंगी? लेकिन वे लोग श्रीमती गांधी को कितना कम जानते थे!

लखनऊ के अमौसी हवाई अड्डे पर श्रीमती गांधी को भीड़ ने घेर लिया। एक स्थानीय पत्रकार ने मुझे एक तरफ़ खींच लिया। वह मुझे हवाई अड्डे

की बिल्डिंग के दूसरे सिरे पर ले जाकर बोला, "यह देखिये, दस ट्रक खड़े हैं। उनके भूतपूर्व गृह-मंत्री उमाशंकर दीक्षित ने इस 'स्वागत' का इंतज़ाम किया है। 400 आदमी इन्हीं ट्रकों पर लाये गये हैं।" दीक्षितजी ने मोतीलाल नेहरू के यहाँ "मुनीमजी" की हैसियत से अपनी रोज़ी कमाना शुरू किया था।

पटना में पानी बरस रहा था। खासी भीड़ थी। क़रीब एक हज़ार की। ज़्यादातर कांग्रेसी थे। कुछ ऐसे उत्सुक लोग थे, जो यह देखने आये थे कि हारने के बाद श्रीमती गांधी कैसी लग रही हैं। जैसे ही पानी रुका, राज्य कांग्रेस के नेता हाथों में मालाएँ लेकर उनका स्वागत करने को दौड़े। वे अनुमान लगा रहे थे कि वह अगले दरवाज़े से उतरेंगी। लेकिन न जाने किस कारण पिछले दरवाज़े को खोला गया। और वह लगभग सबसे अंत में उतरीं। आगेवाले मुसाफ़िरों को नारे लगाती भीड़ को चीरकर गुज़रना पड़ रहा था। यह देखकर उनका हौसला बढ़ा। जे० पी० के राज्य में जैसी उन्हें अपेक्षा थी, यह सब ठीक उसके विपरीत था। दल में उनकी खुलकर आलोचना करनेवाले भी कुछ लोग वहाँ थे, जो यह देखने आये थे कि लोग अब श्रीमती गांधी के प्रति किस तरह पेश आते हैं।

बेलछी की यात्रा में श्रीमती गांधी की कार के पीछे कारों का एक लंबा क़ाफ़िला चल रहा था। लोग रास्तों पर भाग-भागकर आ रहे थे। जगह-जगह स्वागत-द्वार बने हुए थे। कहीं-कहीं पर बैंड फ़िल्मी धुनें बजा रहे थे। एक जगह बैंड पर 'जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो क़ुर्बानी' का तराना बज रहा था। कौन-से शहीद—बेलछी के या मार्च के चुनाव के?

सीधे बेलछी जाकर ही रुकना था। लेकिन किसी कारण मोटरों का क़ाफ़िला रास्ते से कुछ दूरी पर स्थित बिहारशरीफ़ की तरफ़ मोड़ दिया गया। वह स्थानीय 'निरीक्षण बँगले' पर रुकीं—शायद हाथ-मुँह धोने के लिए। पर तभी कुछ कांग्रेसी नेताओं ने कहना शुरू किया कि वह बेलछी नहीं जा सकतीं, क्योंकि रास्ता खराब है। मिनटों में भीड़ इकट्ठी हो गयी और श्रीमती गांधी के कमरे में घुसने लगी। नारेबाज़ी और धक्का-मुक्की ज़ोरों पर थी। समर्थक लोग श्रीमती गांधी को इतने क़रीब से देखने का अपने जीवन का यह सुनहरा मौक़ा हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। लड़के पेड़ों पर चढ़ गये थे और लोग चारों तरफ़ से भागे चले आ रहे थे। जब वह बाहर आयीं तो कांग्रेसजनों ने नारे लगाना शुरू कर दिया। बिहार कांग्रेस के नये अध्यक्ष श्री केदार पांडे ने धुआँधार भाषण छेड़ दिया। सभी श्रीमती गांधी से बोलने का आग्रह करने लगे। वह थोड़ा-सा बोलीं। तभी भोजन की सूचना दी गयी। एक कांग्रेसी ने एक पत्रकार से कहा, "बहुत शानदार खाना आपको मिलेगा। सैंकड़ों मुर्ग़े कटे हैं।"

"खाना रहने दीजिये। बस अब चलिये।" श्रीमती गांधी ने दृढ़तापूर्वक कहा। केदार पांडे ने कहा, "रास्ता काफ़ी खराब है। बेलछी कोई कार नहीं पहुँच सकती।" बिना परेशान हुए श्रीमती गांधी ने कहा, "हम लोग पैदल चलेंगे, भले ही सारी रात लग जाये।"

मोटरों का क़ाफ़िला बिहारशरीफ़ की सड़कों से बाहर निकला। जैसे ही गाड़ियाँ रुकीं, हर व्यक्ति उनके पास दूसरों से पहले पहुँच जाने की कोशिश करने लगा। यह बड़ी दरगाह थी, जहाँ हज़रत शेख सर्फ़ुद्दीन अहिया मनेरी का मज़ार था। उन्हें बताया गया था कि जो कोई इस दरगाह में प्रार्थना करता है, उसकी मनोकामना पूरी होती है। श्रीमती गांधी ने प्रार्थना की। उनकी आँखें बंद थीं।

शहर से कुछ मील चलने के बाद कच्ची सड़क आ गयी थी, कीचड़-भरी।

बेलछी का 'मार्ग' शुरू हो गया था। श्रीमती गांधी की जीप कीचड़ में फँस गयी और उसे निकालने के लिए ट्रैक्टर लाया गया। मगर वह भी फँस गया। एक टी० वी० कैमरामैन ने टिप्पणी की : "यहीं बेलछी-यात्रा ख़त्म समझो।" लेकिन श्रीमती गांधी जीप से उतर पड़ीं और उस कीचड़-भरे रास्ते पर पैदल चलने लगीं। पीछे-पीछे उनकी वाहवाही करनेवाले नेता थे। बहुत दूर बेलछी तक इसी तरह पैदल जाने की संभावना से डरकर एक कांग्रेसी नेता ने कहा, "वह इस तरह बहुत दूर नहीं जा सकेंगी। लोग कहते हैं कि 'कमर-कमर तक' पानी से गुज़रना पड़ता है।" यह कहकर वह आराम से अपनी कार में बैठ गये।

श्रीमती गांधी आगे बढ़ती चली जा रही थीं। उन्होंने अपनी साड़ी टखने के ऊपर उठा रखी थी। वह अपनी सहमी हुई साथी प्रतिभासिंह से कह रही थीं, "मैं पानी को भी पार कर सकती हूँ।" हर मिनट कठिनाई बढ़ती जा रही थी, लेकिन इलाक़े के समझदार बाबू साहब ने उन्हें बेलछी पहुँचाने के लिए अपना हाथी भेज दिया था। केदार पांडे और दूसरे कांग्रेसियों ने बहुत चिंतित होकर उनसे पूछा, "लेकिन आप हाथी पर चढ़ेंगी कैसे ?" श्रीमती गांधी ने तुरंत जवाब दिया, "यह मेरे लिए हाथी पर बैठने का पहला मौक़ा नहीं है।" दूसरे ही क्षण वह हाथी पर पैर फैलाये बैठी हुई थीं। लेकिन प्रतिभासिंह को चढ़ने में बड़ी परेशानी हुई। जब हाथी उठने लगा तो प्रतिभासिंह ने पीछे से श्रीमती गांधी को कसकर जकड़ लिया। एक कैमरामैन ने जोश में आकर नारा लगाया, "इंदिरा गांधी—ज़िंदाबाद !" श्रीमती गांधी उसकी तरफ़ देखकर मुसकरा दीं।

जहाँ जीप से उतरे थे, वहाँ से बेलछी साढ़े तीन घंटे का रास्ता था। लेकिन उन्होंने अपने संकल्प को पूरा किया। "हरिजनों की रक्षक" कहकर उनकी सराहना की गयी। कौन सोच सकता है कि चह्वाण या ब्रह्मानंद रेड्डी या उनमें से कोई और नेता वैसा कर सकता था जैसा श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया ! आधी रात को लौटते समय वह रास्ते में पड़ने वाले एक कॉलेज में भाषण दे रही थीं।

दूसरे दिन सुबह जब वह जयप्रकाश नारायण से मिलने गयीं तो कोई यह नहीं कह सकता था कि पिछली रात उन पर कितनी कड़ी गुज़री थी। वह हमेशा से ज्यादा तरोताज़ा थीं। अभी कुछ ही दिन पहले तक के अपने शत्रु जयप्रकाश से 50 मिनट की बातचीत के बाद जब वह निकलीं तो और भी प्रफुल्लित थीं। बल्कि उनमें से कोई भी अर्से से उतना प्रसन्न नज़र नहीं आया था। जयप्रकाश जब उन्हें विदा करने आये तो काफ़ी प्रसन्न नज़र आ रहे थे। जयप्रकाश ने श्रीमती गांधी को "उज्ज्वल भविष्य, उज्ज्वल अतीत से भी उज्ज्वल भविष्य" का जो आशीर्वाद दिया था, और जिसकी बाद में बार-बार चर्चा हुई, उसकी नाना प्रकार से व्याख्याएँ की गयीं। कुछ लोगों ने कहा कि श्रीमती गांधी ने उन्हें अपने पक्ष में कर लिया था। दूसरे लोगों ने कहा कि यह "केवल मुँहदेखी बात" थी। कुछ और लोगों का कहना था कि यह तो उन्होंने लगे हाथ वैसे ही कह दिया था।

उस आशीर्वाद का कोई भी मतलब रहा हो, इस यात्रा ने श्रीमती गांधी की अपनी अपराजेयता की धारणा को फिर से स्थापित करने में काफ़ी मदद की। उनकी इस धारणा को भी बल मिला कि "देश की जनता की वही एकमात्र नेता हैं।" राज्य कांग्रेस के मुख्यालय सदाक़त आश्रम में कांग्रेसजनों के बीच केदार पांडे ने कहा था, "बीस-सूत्री कार्यक्रम के बारे में कोई सौदेबाज़ी नहीं हो सकती।" उपस्थित कांग्रेसजनों ने इसका तालियों से स्वागत किया था। कुछ ही दिनों पहले चह्वाण और ब्रह्मानंद रेड्डी पटना में थे। सदाक़त आश्रम में काफ़ी भीड़ जमा हुई

थी। पर श्रीमती गांधी के लिए जितनी भीड़ जमा हुई थी उससे उसका कोई मुक़ाबला नहीं था। उनके एक कांग्रेसी आलोचक ने कहा, "वह एक बार फिर नेता बनकर उभर सकती हैं, क्योंकि देश में उनकी जितनी बड़ी भीड़ एकत्र करने वाला और कोई नहीं है।"

जब श्रीमती गांधी माइक पर आयीं तो उनमें अपने किये का कोई पश्चात्ताप नहीं था, तनिक भी मलाल नहीं था। उन्होंने आपात-स्थिति लगाने को बिलकुल वाजिब बताया। बाद में प्रेस, कान्फ्रेंस में उन्होंने अपने आसपास कोई चौकड़ी होने से साफ़ इंकार किया। लगता था, उन्होंने कभी यह शब्द सुना ही नहीं है।

दूसरे ही दिन सुबह एक करारा प्रहार हुआ। कानपुर और दिल्ली में केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने बड़े तड़के भूतपूर्व केंद्रीय रसायन व खाद्य-मंत्री पी० सी० सेठी, यशपाल कपूर, आर० के० धवन और उनके भाई के० एल० धवन को गिरफ़्तार कर लिया। चार उद्योगपतियों को भी गिरफ़्तार किया गया, जिनकी आर० के० धवन के साथ मिलीभगत थी। कैप्टेन वासुदेव को कानपुर में और के०एल० श्राफ़, के० एल० भाटिया और सुधीर सरीन को दिल्ली में पकड़ा गया।

यह प्रहार इसलिए भी बहुत करारा था कि यह श्रीमती गांधी की बेलछी की हाथी-यात्रा की सफलता के ठीक बाद हुआ था। बेलछी की हाथी-यात्रा और जनता सरकार के संत-शिरोमणि जयप्रकाश नारायण द्वारा आशीर्वाद की वर्षा के बाद श्रीमती गांधी ने अवश्य सोचा होगा कि उनकी वापसी निश्चित है, अब सवाल सिर्फ़ समय का था। तभी अचानक तड़के ये छापे पड़े और इसके लिए 15 अगस्त का दिन चुना गया था!

पिछले 12 वर्षों में पहली बार वह लाल क़िले के परकोटे से देश को संबोधित नहीं कर रही थीं। यही क्या कम था कि इससे भी बुरी बात यह थी कि वह वहाँ उपस्थित भी नहीं हो पायी थीं। दूसरे दिन उनके अख़बार नेशनल हेरॅल्ड ने छापा कि जनता सरकार ने जान-बूझकर उनका निमंत्रण उन्हें बहुत देर से भेजा था। लेकिन वह किसी भी हालत में इस समारोह में जातीं भी तो उन्हें कोई आनंद न मिलता, क्योंकि उनके प्रसिद्ध चहेते पुलिस की हवालात में बंद थे।

केंद्रीय जाँच ब्यूरो की प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया था कि कांग्रेस पार्टी का छः करोड़ रुपया ग़ैर-क़ानूनी ढंग से उन व्यापारिक फ़र्मों में लगा दिया गया था जिनमें कपूर, धवन और उनके साथियों के हिस्से थे। इनके मित्रों और रिश्तेदारों द्वारा चलायी जा रही कुछ फ़र्मों के पास तो सिर्फ़ एक छोटा-सा कमरा था जिसमें एक टेलीफ़ोन लगा था, एक कुर्सी-टेबुल था और बाहर साईनबोर्ड टँगा था।

यशपाल कपूर को पुलिस की हिरासत में रखने का आदेश देते हुए चीफ़ मैट्रोपोलिटन मैजिस्ट्रेट मोहम्मद शमीम ने कहा कि "मैंने वह पत्र देखा है जो मुलज़िम पी० सी० सेठी ने भूतपूर्व प्रधानमंत्री को लिखा था। उसमें यशपाल कपूर के नाम का उल्लेख है जो नेशनल हेरॅल्ड का कामकाज देखते थे और उसके लिए पैसा इकट्ठा करते थे...।"

लेकिन कपूर की हस्ती इससे कहीं बड़ी थी। इंदिरा का यह पुराना सेवक अगर उससे पहले से नहीं तो कांग्रेस-विभाजन के समय से बड़ी-बड़ी रक़में संभाल ही रहा था। वह श्रीमती गांधी का एक सबसे उपयोगी कारिंदा था। 1971 में अपनी सरकारी नौकरी छोड़कर उसने उनके चुनाव का सारा बंदोबस्त अपने ज़िम्मे ले लेने के अलावा उनके मुक़दमे की पूरी ज़िम्मेदारी भी अपने ऊपर ले ली

थी। उसने इस काम को इतनी "चतुराई और घिस्सेबाज़ी" से किया कि वह मुक़दमा हार गयीं। इसके बावजूद श्रीमती गांधी ने 1977 के चुनाव में भी उसे अपने चुनाव की व्यवस्था का काम सौंपा। इस बार उसने अपना काम और भी क़ाबिलियत से किया और इतनी क़ाबिलियत से कि वह एक जोकर से चुनाव हार गयीं। फिर भी वह उनका विश्वासपात्र बना रहा, जिससे ज़ाहिर है कि श्रीमती गांधी के लिए उसका कितना महत्व था। धवन भी इसी साँचे में ढला हुआ आदमी था, लेकिन वह बेटे के माध्यम से उनके दरबार में प्रविष्ट होने की वजह से कपूर के मुक़ाबले में ज़्यादा महत्वपूर्ण बन गया था। सत्ता के गलियारों से मारुति की फ़ाइलों को सफलतापूर्वक आगे बढ़वाने का काम धवन ने ही किया था।

आपात-काल की एक बहुत बड़ी विशेषता ऊँचे स्तरों पर घोर भ्रष्टाचार का फैलना था। "आपात-स्थिति के साथ पैसे की यह छीनाझपटी इंदिरा के गुर्गों का एक मुख्य काम बन गया, जिसमें यशपाल कपूर और धवन-जैसे घरेलू कारिंदों के अलावा बंसीलाल से लेकर ब्रह्मचारी तक पूरी मंडली को जुटा दिया गया। सहारा देने के लिए रघुरमैया-जैसे कुछ और लोग भी थे। इस चोरमंडली की अध्यक्षता कर रही थीं श्रीमती गांधी और उनके सहायक थे उनके वारिस, संजय गांधी।" (निखिल चतुर्वेदी, मेनस्ट्रीम, 20 अगस्त 1977)।

रिपोर्टर और फ़ोटोग्राफ़र चीफ़ मैट्रोपोलिटन मैजिस्ट्रेट के बँगले पर उस दिन बहुत सुबह पहुँचे, लेकिन नामी शिकार निकल चुके थे। जब कपूर के एक बेटे ने तीसहज़ारी कोर्ट में आँखों-देखी रिपोर्ट देनी शुरू की तो इन लोगों ने सोचा कि भागते भूत की लँगोटी भली। उसने बोलना शुरू ही किया था कि एक आदमी ने आकर उसे चुप कर दिया। अदालत में अर्जुनदास भी उपस्थित थे जिनकी पंचर लगाने की दुकान आपात-काल में "शासकों" का खुफ़िया अड्डा बन गया था। उनका हौसला पूरी तरह पस्त भले ही न हुआ हो, पर उनकी नज़रें नीची ज़रूर थीं। एक मुजरिम सुधीर सरीन (यशपाल कपूर का दामाद) एक फ़ोटोग्राफ़र का जोश बढ़ा रहा था। ये लोग वहाँ जमानत पर छोड़े जाने के समय उनके आर० के० धवन के "वीरोचित सम्मान" के लिए आये थे। धवन बुझे हुए थे लेकिन उनके मित्रों ने "आर० के० धवन ज़िंदाबाद" के नारों से उनका हौसला बढ़ाये रखा। अगर कपूर और धवन को गिरफ़्तार किया जा सकता था तो श्रीमती गांधी और संजय की बारी आने में बहुत देर नहीं थी। गृह-मंत्री चौधरी चरणसिंह पहले ही से संकेत दे रहे थे कि जल्दी ही इनसे बड़े-बड़े लोग गिरफ़्तार किये जायेंगे। 30 अगस्त 1977 के हिंदुस्तान टाइम्स में उनका बयान छपा था कि "शिकंजा जकड़ता जा रहा है।" हालाँकि श्रीमती गांधी जनता सरकार को उन्हें गिरफ़्तार करने की चुनौती देकर बहुत साहस का दिखावा करती रहती थीं, फिर भी अंदर से उनका साहस एक बार फिर डूबने लगा था।

ऐसी ही एक बुझी हुई मनःस्थिति के दौरान श्री मौर्य ने श्रीमती गांधी को समझाया कि "आप हरिद्वार क्यों नहीं हो आतीं ? वहाँ कोई माताजी हैं न ?" हाँ, वहाँ आनंदमयी माँ हैं ! वहाँ क्यों न चला जाये ? निश्चय ही इससे उनको नयी शक्ति मिलेगी। पर इसमें एक परेशानी थी। वहाँ जाने में चौधरी चरणसिंह के इलाक़े से, यानी गाजियाबाद, मेरठ, मुजफ़्फ़रनगर से होकर गुज़रना पड़ेगा। क्या इस जाट-क्षेत्र से गुज़रना सुरक्षित होगा ? श्री मौर्य ने आश्वासन दिलाया, "आप इसकी चिंता मत कीजिये। आख़िर मैं भी तो उसी इलाक़े का रहने वाला हूँ। मैं सारा बंदोबस्त कर दूंगा।"

"मैंने अपनी पूरी ताक़त लगाकर अपने लोगों को इस यात्रा का बंदोबस्त करने में जुटा दिया," मौर्य ने बाद में बताया। "क्योंकि श्रीमती गांधी असुरक्षित अनुभव कर रही थीं, इसलिए मैंने अपनी पत्नी, बेटी और अपने छोटे बेटे को उनकी कार में बिठा दिया और एक तगड़ा संतरी भी साथ कर दिया। काम करने के अपने खास अंदाज़ में मैंने दो ट्रकों पर रिवाल्वरों और बंदूकों से लैस तगड़े नौजवानों को कार के पीछे लगा दिया। ट्रकें उनकी कार के पीछे थीं और मेरी फ़िएट कार पायलट की तरह उनकी कार के आगे थी। पहला हमला शाहदरा में हुआ। कुछ पत्थर और लाठियाँ चलीं। अच्छी-ख़ासी लड़ाई हुई। ग़ाज़ियाबाद में भी हमारी कार पर हमला हुआ, लेकिन ट्रक के लोगों ने परिस्थिति को संभाल लिया। मोदीनगर और मेरठ में भारी भीड़ थी। हम लोग जैसे भीड़ में तैर रहे थे। मुज़फ़्फ़रनगर में ज़बरदस्त हमला हुआ। लोगों ने मोटर पर जूते और चप्पलें फेंकीं। मंच को तोड़ दिया। लड़ाई जारी रही और वह बोलती रहीं। हम लोग हरिद्वार पाँच घंटे देर से पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक बड़ी सभा को संबोधित किया। रात में भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स के कर्मचारियों को संबोधित करने का कार्यक्रम था, लेकिन वहाँ पर संगठित विरोध था। काले झंडे दिखाये गये, विरोधी नारे लगाये गये। वे श्रीमती गांधी को बोलने नहीं दे रहे थे, लेकिन मैंने उनसे बोलते रहने को कहा और आश्वासन दिया कि मेरे लोग बदमाशों से निबट लेंगे।"

आधी रात गये जब मौर्य श्रीमती गांधी को आनंदमयी आश्रम में छोड़ने गये जहाँ वह ठहरने वाली थीं, तो श्रीमती गांधी ने कहा, "मौर्यजी, आप ठीक कहते थे, बिलकुल ठीक कहते थे। लोग साथ देंगे...।"

आनंदमयी माँ ने उन्हें रुद्राक्ष की एक नयी माला दी। श्रीमती गांधी ने उसे पहन लिया और अपने अंदर एक नयी ताक़त अनुभव की।

3

गिरफ्तारी का नाटक

संजय गांधी और उनकी पत्नी मेनका बग़ीचे में बैडमिंटन का नेट लगा रहे थे। राजीव के बच्चे राहुल और प्रियांका पास ही खेल रहे थे। श्रीमती गांधी अंदर बैठी थीं। वह अपने वकील के साथ शाह कमीशन के सामने अपनायी जाने वाली रणनीति पर विचार करके उसे अंतिम रूप दे रही थीं। अचानक एक कारिंदा घबराया हुआ आया और बोला, "सी०बी०आई० वाले आये हैं।" यह कोई नयी बात नहीं थी। वे पहले भी आ चुके थे। "क्या चाहते हैं ?" संजय ने पूछा। वह आदमी बौखलाया हुआ था। पुलिस-अफ़सर ने उसे सिर्फ़ इतना बताया था कि वह श्रीमती गांधी से मिलना चाहता है। कोई श्रीमती गांधी को सूचित करने गया। श्रीमती गाधी ने उसे दूर से ही इशारा करके कह दिया, "उनसे इंतज़ार करने को कहो।" तब तक पुलिस के 200 सिपाही और 10 अफ़सर फाटक पर आ गये थे। यह 3 अक्तूबर, 1977 को 5 बजे शाम की बात है।

परिवार के एक मित्र को घर में घुसने से रोका गया। इस पर संजय ने लपककर पूछा, "क्या मतलब है इसका ? यह घर तुम्हारी जायदाद नहीं है। लोगों को रोकने का हुक्म दिखाओ।" अफ़सर ने कहा, "मेरे पास वारंट है।" मेनका सीधे टेलीफ़ोन की ओर भागी और नंबर मिलाने लगी। सबसे पहले उसने पी० सी० सेठी को टेलीफ़ोन किया। सेठी कांग्रेस के कोषाध्यक्ष और श्रीमती गांधी के मंत्रिमंडल के सदस्य थे। मेनका ने उन्हें पूरी घटना बतायी। सेठी ने कहा कि वह आ नहीं सकते, क्योंकि वह भी गिरफ़्तार कर लिये गये थे और ज़मानत के बाद ही आ सकते थे। तब मेनका ने अख़बारों के दफ़्तरों में टेलीफ़ोन घुमाया, पर जब उसे सभी वांछित नंबर न मिले तो उसने सूर्या के दफ़्तर में अपने आदमियों से कहा कि वे तुरंत यह समाचार सब जगह फैला दें।

इसके बाद राजीव ने टेलीफ़ोन उठाया, लेकिन सी० बी० आई० के एक लंबे-तड़ंगे ख़ूबसूरत अफ़सर एन० के० सिंह ने उसे टोका कि इसकी सूचना वह किसी को न दें। वह चाहता था कि यह सारी कार्रवाई गुप्त रूप से हो जाये। सिंह हाल

ही में उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ सबूत इकट्ठा करने गये थे। कुछ ही दिन पहले वह यहाँ लौटे थे और आते ही यह महत्वपूर्ण काम उन्हें सौंपा गया था।

भीड़ इकट्ठी हो गयी थी और बढ़ती जा रही थी। श्रीमती गांधी अंदर अपनी बैठक में व्यस्त थीं—देखने में वह बिलकुल परेशान नहीं थीं। उनके लिए इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। वह जानती थीं कि यह होने वाला है। सच तो यह है कि उन्होंने इसकी माँग की थी। अपने सार्वजनिक भाषणों में उन्होंने दबंग ढँग से नयी सरकार को बार-बार चुनौती दी थी, "वे डरते हैं। उनमें मुझे गिरफ़्तार करने की हिम्मत नहीं है।" लेकिन साहस के इस दिखावे के पीछे उनका डर दिखलायी पड़ जाता था। वह नहीं जानती थीं कि किस तरह की जेल में उन्हें भेजा जायेगा और जेल की ज़िंदगी कैसी होगी? जब एक विदेशी पत्रकार ने उनसे पूछा था कि अगर उन्हें जेल में डाल दिया गया तो क्या वह कुछ लिखेंगी? इस पर उनका जवाब था, "यह तो इस पर निर्भर है कि वह जेल में मुझसे क्या करवाते हैं। अगर मेहनत-मशक़्क़त का काम मुझे दिया गया तो लिख पाना संभव नहीं होगा।" औरत के लिए जिसने आपात-काल के दौरान यातना और आतंक का राज क़ायम कर रखा था, इस तरह का डर कोई अजीब बात नहीं थी।

जब श्रीमती गांधी बाहर निकलकर गैलरी में आयीं तो एन० के० सिंह वहाँ मौजूद थे। उन्होंने श्रीमती गांधी से कहा, "मैं आपको गिरफ़्तार करने और तुरंत ज़मानत पर छोड़ देने के लिए आया हूँ।"

उन्होंने त्योरियाँ चढ़ाकर पूछा, "किस आरोप में?"

सिंह ने कहा, "यह मैं आपको नहीं बता सकता।"

श्रीमती गांधी ने कहा, "वारंट दिखाइये। प्रथम सूचना रिपोर्ट कहाँ है?"

"केंद्रीय जाँच-ब्यूरों के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट या गिरफ़्तारी का वारंट दिखाना आवश्यक नहीं है," पुलिस अफ़सर ने जवाब दिया।

श्रीमती गांधी के साथ बैठक में बात करने वाले उनके क़ानूनी सलाहकार फ्रैंक एंथोनी ने बीच में कहा, "यह चरणसिंह का नया क़ानून है?"

श्रीमती गांधी ने चिल्लाकर कहा, "कहाँ है आपकी हथकड़ी? हथकड़ी लाओ। जब तक मुझे हथकड़ी नहीं पहनाओगे तब तक एक इंच भी नहीं हिलूँगी।" वह पूरी तरह अपने असली रूप में आ चुकी थीं; स्थिति पूरी तरह उनके क़ाबू में थी। काग़ज़ की एक शीट उन्हें दी गयी। यह प्रथम सूचना रिपोर्ट थी। वह सीढ़ियों के जँगले पर बैठ गयीं और पास ही खड़े फ्रैंक एंथोनी व आनंदनारायण मुल्ला को ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर उसे सुनाने लगीं। श्री मुल्ला भूतपूर्व न्यायाधीश और कांग्रेस सांसद थे। श्रीमती गांधी पर दो मामलों में आरोप लगाये गये थे—एक तो जीप-केस और दूसरे बंबई-हाई में तेल निकालने का ठेका एक फ्रेंच कंपनी को देने के संबंध में। श्रीमती गांधी पर यह आरोप लगाया गया था कि इस कंपनी को उन्होंने एक करोड़ सत्तर लाख डॉलर पर ठेका दिया था जबकि दूसरी कंपनी यह काम 40 लाख डॉलर में करने को तैयार थी। दूसरा आरोप 40 लाख रुपये की जीपें उनके चुनाव-अभियान के लिए देने के सिलसिले में एक कंपनी पर बेजा दबाव डालने के संबंध में था। अन्य गिरफ़्तार लोगों में उनके मंत्रिमंडल के साथी के० डी० मालवीय, एच० आर० गोखले, पी० सी० सेठी और डी० पी० चट्टोपाध्याय थे। इसके अलावा भारत सरकार के दो सचिव

बी० बी० वोहरा, एस० एम० अग्रवाल, तीन उद्योगपति आर० पी० गोयनका, एम० वी० अरुणाचलम और जीतपाल भी थे। इस सूची में के० के० बिड़ला का नाम भी था, लेकिन उद्योगपति और कई अख़बारों के मालिक श्री बिड़ला गृह-मंत्री चरणसिंह से मिलकर कुछ दिन पहले ही विदेश निकल गये थे।

तथाकथित प्रथम सूचना रिपोर्ट पढ़ने के बाद श्रीमती गांधी अपने शयन-कक्ष में गुम हो गयीं। बरामदे में एन० के० सिंह अकेले खड़े रह गये। संजय गांधी सारी दुनिया के पत्रकारों और टी०वी० रिपोर्टरों को श्रीमती गांधी का साइक्लोस्टाइल किया हुआ वक्तव्य बाँट रहे थे। स्पष्ट है, वह वक्तव्य पहले से तैयार रखा गया था। अब तक लगभग 2000 लोग 12, विलिंगडन क्रिसेंट के अहाते में मँडरा रहे थे। सड़क पर कुछ और लोग इधर-उधर खड़े थे। कुछ पत्रकार पुलिस के डी० आई० जी० (रेंज) वाई० राजपाल को एक ओर ले जाकर घेरे खड़े थे। वे उनसे पूछ रहे थे कि अंदर क्या हो रहा था? उन्होंने बताया कि वह तो सिर्फ़ क़ानून और व्यवस्था की देखभाल के लिए वहाँ भेजे गये थे, गिरफ़्तारी तो सी० बी० आई० कर रही थी। श्रीमती गांधी के दोनों वकील अभी से यह मान बैठे थे जैसे वे अदालत में हों और श्रीमती गांधी के मुक़दमे की पैरवी कर रहे हों। एंथोनी ने निंदा करते हुए कहा: 'जैसे वह तो चुनाव में जीपों का इस्तेमाल ही नहीं करते! आरोप यह है कि कहीं किसी मोदी ने और कहीं किसी दूसरे मोदी ने कुछ जीपें चुनाव-अभियान के लिए दीं। और ये सरकारी अफ़सरों के दबाव के कारण मिली थीं। चुनाव के दौरान जीपें प्राप्त करने और उनको इस्तेमाल करने में बुराई क्या है? भूतपूर्व न्यायाधीश आनंदनारायण मुल्ला ने तो कहा कि दंडसंहिता के अनुसार ही नहीं, चुनाव-क़ानून के तहत भी ये आरोप लग ही नहीं सकते।

गृह-मंत्री ने एक बड़ी गूँज-गरज के साथ वक्तव्य दिया था, "जो अपराध उन्होंने किये हैं और जो अपमान उनकी वजह से देश को सहने पड़े हैं—संविधान विकृत कर दिया गया, मौलिक अधिकार छीन लिये गये, अख़बारों की आज़ादी कुचल दी गयी, न्यायपालिका की स्वतंत्रता छीन ली गयी—उनके लिए उनके ख़िलाफ़ नूरेमबर्ग के ढँग का मुक़दमा चलाया जाना चाहिये।" लेकिन इन ग़लतियों और अपमानजनक परिस्थितियों का आरोप उन पर नहीं लगाया गया था। एक अमरीकी अख़बार डेट्रायट फ्री प्रेस (10 अक्तूबर, 77) ने टिप्पणी की कि लगाये गये आरोप बिलकुल "चिल्लर" थे। श्रीमती गांधी के वकील मन-ही-मन हँस रहे थे।

श्रीमती गांधी के दरवाज़े के बाहर एन० के० सिंह को प्रतीक्षा करते हुए देखकर एक पत्रकार ने उनसे पूछा, "आप प्रतीक्षा किसलिए कर रहे हैं?" एन० के० सिंह ने जवाब दिया, "मैं प्रतीक्षा कर नहीं रहा हूँ। मुझसे प्रतीक्षा करायी जा रही है।"

कांग्रेस के तमाम बड़े-बड़े लोग, जिनमें उनकी निंदा करने वाले लोग भी थे, बाहर भीड़ के बीच इधर-उधर घूम रहे थे। ब्रह्मानंद रेड्डी, कमलापति त्रिपाठी, के० सी० पंत, बंसीलाल, राधारमण, यशपाल कपूर, शंकरदयाल शर्मा, ए० आर० अंतुले और कितने ही दूसरे लोग वहाँ मौजूद थे। कुछ ही दिन पहले तक इनमें से बहुत-से लोग श्रीमती गांधी को नीचा दिखाने को उतारू थे। वे श्रीमती गांधी के "पापों" से अपने हाथ गंदे करना चाहते नहीं थे, लेकिन अब कांग्रेस पार्टी पूरी तरह उनके साथ हो गयी और घोषणा की कि उनकी गिरफ़्तारी

"राजनीति से प्रेरित है और सरकार की बदला लेने की और दुश्मनी की भावना इसमें साफ़ झलकती है।" कांग्रेस कार्यसमिति ने देश के कांग्रेसजनों का आह्वान किया कि सारे देश में इसका "ज़ोरदार विरोध" संगठित करके श्रीमती गांधी की गिरफ़्तारी की चुनौती को स्वीकार करें। यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ था। इसकी एक पृष्ठभूमि थी। 15 अगस्त को सुबह बड़ी संख्या में कांग्रेसजनों की गिरफ़्तारी और सैकड़ों व्यापारिक संस्थानों के खिलाफ़ मुक़दमे दायर किये जाने से दल में घबराहट फैल गयी। देश-भर में कांग्रेसजन अचानक खतरा महसूस करने लगे। बहुतों ने सोचा कि "चरणसिंह का शिकंजा" उनकी गरदन में भी पड़ सकता है। बंबई में रजनी पटेल, जिन्होंने शहर में एस० के० पाटिल वाली "शक्तिशाली नेता" की जगह ले ली थी, दल के मतभेदों को मिटाने के लिए उत्सुक हो गये। कोषाध्यक्ष पी०सी० सेठी आतंकित और परेशान तो पहले ही से थे, अब वह बिलकुल बौखला उठे थे। यहाँ तक कि देवकांत बरुआ ने भी अपने मित्रों से कहना शुरू कर दिया कि यह श्रीमती गांधी से लड़ने का वक़्त नहीं है (लेखक के साथ डॉ० आर० गोयल की भेंटवार्ता के आधार पर)। इस एक कार्रवाई से कांग्रेस के अंदर ध्रुवीकरण की प्रक्रिया कम-से-कम अस्थायी तौर पर रुक गयी। श्रीमती गांधी और उनके साथियों की गिरफ़्तारी से कांग्रेसी नेता भौंचक्के रह गये। श्रीमती गांधी अपने कमरे से बार-बार बाहर निकलकर फिर अंदर चली जाती थीं, मानो उचित समय का इंतज़ार कर रही हों। दूसरे कमरे में उनकी पुत्र-वधू सोनिया और निर्मला देशपांडे उनका सूटकेस जल्दी-जल्दी तैयार कर रही थीं। यही एकमात्र संकेत था, जिससे लगता था कि वह चलने को तैयार हैं।

पौने सात बजे तक वह अपने कमरे से बाहर नहीं आयीं। और उनके बाहर आते ही पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया। बंसीलाल ने उन्हें पहले ही से सिखा दिया था कि वे उनसे ज़्यादा-से-ज़्यादा सवाल पूछें, ताकि उनके रवाना होने में ज़्यादा-से-ज़्यादा देर हो। और इसीलिए श्रीमती गांधी भी पत्रकारों के छोटे-बड़े ढंग के और बेतुके सभी सवालों का जवाब खुशी से दे रही थीं। वह हरे किनारे की सफ़ेद साड़ी पहने थीं और माँ आनंदमयी की दी हुई रुद्राक्ष की माला गले में डाले थीं।

वह जब कमरे से निकलीं तो गंभीर और उदास लग रही थीं, लेकिन जैसे ही फ़ोटोग्राफरों के कैमरों की चमक होने लगी, पत्रकारों के सवाल आने लगे, उनके चेहरे पर भी चमक आती गयी। श्रीमती गांधी के पास कहने को ज़्यादा कुछ नहीं था, सिवाय इसके कि "उन्हें इस बात का खेद था कि गुजरात में लोग अगले दिन उनका इंतज़ार करते होंगे और वह वहाँ पहुँच नहीं पायेंगी।" अपने लिखित वक्तव्य में उन्होंने कहा था कि उनकी गिरफ़्तारी बदले की राजनीतिक भावना से प्रेरित है। उन्होंने जनता से आग्रह किया था कि 'वह अपना उत्साह और संकल्प कम न होने दें। मेरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता अस्थायी तौर पर ख़त्म हो सकती है, लेकिन आपको अपने देश की आत्मनिर्भरता पर आये हुए वास्तविक ख़तरे की चुनौती का मुक़ाबला करने के लिए तैयार रहना है। इसके बिना हम न तो सफलतापूर्वक ग़रीबी से लड़ सकते हैं, न आज़ादी को बचा सकते हैं...।"

एक पत्रकार ने पूछा, "आप ज़ाती मुचलके पर ज़मानत क्यों नहीं ले रही हैं?" उन्होंने चट से प्रश्न पूछा, "क्यों निजी ज़मानत दूं? यह सारी-की-सारी कार्रवाई ग़ैर-क़ानूनी है...।"

हॉल का सारा रास्ता खचाखच भरा हुआ था। उन्होंने आग्रह किया कि उनके निकलने के लिए रास्ता साफ़ किया जाये। तनाव बढ़ रहा था। कानाफूसी

हो रही थी कि केंद्रीय जाँच-ब्यूरो के अधिकारियों ने महिला-सिपाहियों की माँग की है कि अगर श्रीमती गांधी गाड़ी में बैठने से इंकार कर दें तो उन्हें उठाकर गाड़ी में बिठाया जा सके। पोर्टिको में खड़ी कार की छत पर संजय के कुछ आदमी चढ़ गये थे और "चरणसिंह हाय—हाय !" का नारा लगा रहे थे। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला एक गुंडा कार के आगे लेट गया था और कह रहा था कि वह कार को आगे नहीं बढ़ने देगा। अंततः श्रीमती गांधी कार के पास आयीं। उन्होंने वहाँ तक आने में क़रीब तीन घंटे लगा दिये थे। यह साफ़ था कि वह ज्यादा-से-ज्यादा समय बिताना चाहती थीं ताकि भीड़ इकट्ठी हो जाये और वह अपने इस नाटक का ज्यादा-से-ज्यादा फ़ायदा उठा सकें।

जैसे ही वह कार में घुसीं, उन पर गुलाब का पंखुड़ियाँ फेंकी गयीं, 'ज़िंदाबाद' के नारे लगे और उनका चेहरा खिल उठा। पहलवान कार के सामने चीख़-चिल्ला रहा था, छाती पीट रहा था और हिलने का नाम नहीं ले रहा था। उस नौजवान के इस कारनामे से श्रीमती गांधी प्रभावित हुईं कि उन्होंने उसे उस दिन से निजी रक्षक के रूप में साथ ले लिया।

उस पागल माहौल में कार किसी तरह आगे बढ़ी। बाक़ी सब पीछे की गाड़ियों में सवार हो गये। श्रीमती गांधी के पुत्र और पुत्र-वधुएँ प्रसिद्ध मेटाडोर में बैठ गये। जाँच-ब्यूरो के अफ़सरों के लाख मना करने पर भी ये गाड़ियाँ श्रीमती गांधी की कार के साथ लग गयीं। जाँच-ब्यूरो की कार आगरे के रास्ते में एक रेलवे-क्रासिंग के पास रुक गयी। तब तक बाक़ी गाड़ियाँ भी आ पहुँची थीं। सब-की-सब वहाँ पर रुक गयीं। रेलवे-क्रासिंग बंद थी। यह दिल्ली-बंबई मेनलाइन थी। रात के नौ बजे थे। श्रीमती गांधी ताज़ी हवा के लिए बाहर निकलीं। उन्हें इसकी अनुमति दी गयी। उनके क़ानूनी सलाहकार भी वहाँ आ गये। उन्होंने जानना चाहा कि श्रीमती गांधी कहाँ ले जायी जा रही हैं ? उन्हें बताया गया कि उन्हें बड़खल झील के पर्यटक बँगले में ले जाया जा रहा है। इस पर उनके वकील ने आपत्ति की कि यह तो दिल्ली की सीमा के बाहर है।

अब श्रीमती गांधी को मौक़ा मिला। वह पुलिया पर जमकर बैठ गयीं और वहाँ से हटने से साफ़ इंकार कर दिया। हलकी-हलकी चाँदनी से परिस्थिति की नाटकीयता और बढ़ गयी थी। जब जाँच ब्यूरो के अधिकारियों ने उन्हें फिर से कार में लाने की कोशिश की तो उनके समर्थकों ने नारेबाज़ी शुरू कर दी। वह टस-से-मस नहीं हुईं। थोड़ी-बहुत धक्का-मुक्की हुई। श्रीमती गांधी को भी थोड़ा-बहुत इधर-उधर ढकेला गया। अफ़सरों ने तुरंत माफ़ी माँग ली लेकिन वह तनिक भी विचलित नहीं हुईं। अब उन लोगों के पास वापस शहर चले जाने के अलावा कोई चारा नहीं। अंत में उन्हें जाना ही पड़ा। इस बार वह शहर के दूसरे कोने किंग्सवे कैंप की तरफ़ गये। वहाँ अफ़सरों के मेस के एक कमरे में निर्मला देशपांडे के साथ श्रीमती गांधी ने रात गुज़ारी।

दूसरे दिन सुबह शास्त्री भवन की प्रेस-कांफ्रेंस में खासी गहमागहमी थी। पत्रकार और दूरदर्शन के लोग जगह के लिए झगड़ रहे थे। चरणसिंह का दिमाग़ सातवें आसमान पर था। उनकी हर गतिविधि, हर शब्द पर सफलता की छाप थी। अनेक संगत-असंगत सवाल पूछे गये। एक सवाल विशेष रूप से चिढ़ानेवाला था। पूछा गया था कि अगर श्रीमती गांधी के खिलाफ़ आरोप साबित नहीं हुए तो चरणसिंह क्या करेंगे ? क्या वह त्यागपत्र दे देंगे ? चरणसिंह ने कहा, "मैं क्यों त्यागपत्र दूंगा ! मैं जानता हूँ कि कुछ भी ग़लत नहीं हो सकता।" यह उनके लिए

सबसे अच्छी घड़ी थी। महीनों से उनके अंतरंग मित्र उस औरत के बारे में कुछ करने के लिए उन पर दवाव डाल रहे थे जिसने उन्हें तिहाड़ जेल में भेजा था। उनके एक नज़दीकी समर्थक ने पूछा था, "क्या है यह शाह कमीशन? क्या इसे आपने नहीं बनाया है फिर भी यह पूरा श्रेय लिये जा रहा है। उसे गिरफ़्तार कर लीजिये। सारा देश आपके चरणों में झुक जायेगा। आप देश के हीरो बन जायेंगे।"

वह 2 अक्तूबर को यह करना चाहते थे, यानी गांधीजी के जन्म-दिवस के दिन। लेकिन मोरारजी ने रोक दिया था। कहा था, 'उस दिन नहीं।' मोरारजी इस बात पर दृढ़ थे। अपने मजिस्ट्रेटी दिमाग़ से शायद उन्होंने समझ लिया था कि मुक़दमा पुख़्ता नहीं है, ख़तरा उठाने लायक़ नहीं है। मगर जाट-दिमाग़ भी उतना ही अड़ियल था, शायद अंत में वह ज्यादा ही अड़ियल साबित हुआ। चरणसिंह ने देसाई को विश्वास दिलाया कि उन्होंने श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ "बिलकुल पक्का" मुक़दमा तैयार कर लिया है। चरणसिंह को इतना भरोसा था कि उन्होंने क़ानून-मंत्री की भी उपेक्षा कर दी।

उस दिन तीसहज़ारी की अदालत भीड़भाड़ वाले सिनेमा हॉल की तरह लग रही थी। श्रीमती गांधी के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें सुनने में आ रही थीं। उन्हें न्यायालय में लाया जायेगा या नहीं? किंग्सवे कैंप में श्रीमती गांधी राजीव के लाये हुए फल समाप्त कर चुकी थीं। उन्हें अपनी जान खतरे में होने का इतना डर लगा हुआ था कि उन्होंने ऑफ़िसर्स मेस द्वारा दी गयी खाने-पीने की कोई भी चीज़ उस रात नहीं ली। यहाँ तक कि वह पानी का अपना जग भी साथ ले गयी थीं। पानी के अलावा उन्होंने कुछ नहीं लिया। वह केंद्रीय जाँच ब्यूरो की कार्रवाई की आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थीं। तीसहज़ारी में भीड़ बढ़ती गयी, लेकिन व्यर्थ। उन्हें संसद मार्ग के न्यायालय में उपस्थित किया गया। यह जगह पहले से ही युद्धभूमि की तरह लग रही थी। आदमियों का सैलाव उमड़ा हुआ था। हर तरफ़ दोनों पक्ष आमने-सामने डटे थे। जनता पार्टी के समर्थक श्रीमती गांधी को फाँसी देने की माँग कर रहे थे। मेनका कह रही थी कि "हमें धोखा दे दिया गया। हर आदमी सोच रहा था कि उन्हें तीसहज़ारी में ले जाया जायेगा। संजय वाली भीड़ तीसहज़ारी में ही खड़ी थी। अब दस बज गये थे और आखिर में उन्हें यहाँ पेश किया जा रहा है।

न्यायालय के कक्ष में लगभग तीस लोग थे। मुख्यतः वकील और पत्रकार और केंद्रीय जाँच ब्यूरो के कुछ लोग। चारों ओर प्रतीक्षा का वातावरण था। हर व्यक्ति श्रीमती गांधी के आने का इंतज़ार कर रहा था। तभी अचानक गहमा-गहमी बढ़ी। सब समझ गये कि कौन आया। भीड़ में से अपना रास्ता बनाते हुए, शहीदी भावभंगिमा बनाये श्रीमती गांधी प्रविष्ट हुईं। उनके साथ कोई बदतमीज़ी नहीं हुई। लेकिन भीड़ में से रास्ता निकालकर आते समय अच्छा सलूक भी नहीं हुआ। एक पत्रकार से उन्होंने कहा कि वह बिलकुल ठीक हैं। हरी साड़ी पहने वह बिलकुल चुस्त लग रही थीं।

अंदर क़ानूनी नाटक शुरू हुआ। बाहर अश्रुगैस के गोले छोड़े जाने से एक अनर्थकारी पुट भी उसमें जुड़ गया था। गोलों का कुछ धुआँ अंदर भी आया। श्रीमती गांधी ने गीला रूमाल निकालकर आँखें पोंछना शुरू कर दिया। मजिस्ट्रेट की कुर्सी से कुछ दूरी पर सोनिया और राजीव खड़े थे। बाहर से आवाज़ आयी, "श्रीमती गांधी को फ़ाँसी दो।" बाहर दोनों तरफ़ की फ़ौजें बिलकुल साफ़ बँटी

हुई थीं। श्रीमती गांधी बस मुसकरा-भर रही थीं। बाहर पत्थरबाज़ी हो रही है। पिछले 80 मिनट से श्रीमती गांधी कठघरे में खड़ी थीं। अतिरिक्त चीफ़ मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट आर० दयाल आदेश लिखवा रहे थे : "...यह बात ज़ाहिर है कि मुलज़िम को दफ़ा 167 के तहत पेश किये जाते समय यह विश्वास करने की काफ़ी वजहें मौजूद होनी चाहिए कि आरोप या सूचना की बुनियादें विश्वसनीय हैं। यह तथ्य कि केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने धारा 167 के तहत कोई प्रार्थना नहीं की है, अपने-आपमें यह सिद्ध करता है कि खुद केंद्रीय जाँच ब्यूरो के अनुसार यह विश्वास करने की कोई बुनियाद नहीं है कि आरोप ठोस आधार पर लगाया गया है। फिर इस बात से कि आरोप के स्रोत अभी तक पूरी तरह एकत्र नहीं किये गये हैं, संकेत मिलता है कि ऐसे आधारों के अस्तित्व को साबित करने के लिए कुछ नहीं है। इस प्रकार मुलज़िम इंदिरा गांधी को नज़रबंद रखने का कोई युक्ति-संगत कारण नहीं है और उन्हें रिहा किया जाता है।"

फ़ैसला सुनते ही श्रीमती गांधी की मुसकराहट निखर आयी। संजय गांधी खुशी के जोश में बाहर भागे और जनता पार्टी की विरोधी भीड़ में फँस गये, लेकिन तुरंत ही लौटे और उन्होंने देखा कि उनकी माँ अपने प्रशंसकों से शुभकामनाएँ और बधाइयाँ बटोर रही हैं। आल्हादक अविश्वास की स्थिर मुद्रा में वह पूरे दस मिनट तक स्तब्ध खड़ी रहीं। एक विदेशी संवाददाता से उसी शाम बात करते हुए जोश से भरे राजीव गांधी ने कहा, "स्वयं मम्मी को अगर पहले से घटनाओं का क्रम निर्धारित कर देने को कहा जाता तो वह भी इससे अच्छा घटनाक्रम नहीं बना सकती थीं।"

उनकी आँखों में नींद भरी थी जब संकट से उबरकर वह 12, विलिंगडन क्रिसेंट अपने निवास पर लौटीं। यह एक शहीद की वापसी सरीखी थी। यह सब-कुछ जनता नेताओं द्वारा मामलों को बुरी तरह गड़बड़ा देने के कारण हुआ था। कमलापति बाहर पैर फैलाये बैठे थे। बड़ी देर से इंतज़ार कर रहे थे। रेड्डी अंदर गये और उन्होंने लपककर श्रीमती गांधी को माला पहना दी। केक-मिठाइयाँ बँटने लगीं। शरबत बहने लगा। मेनका अतिथियों का पूरी पटुता से सत्कार कर रही थीं। आपात-स्थिति के गोयबेल्स शुक्ला दाँत निपोर रहे थे। सभी खुशी की इस लहर की लपेट में आ गये। यहाँ तक कि रेड्डी भी इसकी गिरफ़्त में आ गये। वह केक लेकर श्रीमती गांधी के पास गये। श्रीमती गांधी ने कहा, "आज नहीं, आज मेरा व्रत है।" और वह वहाँ पत्रकारों को एक योगी और किसान-कन्या की कहानी हज़ारहवीं बार सुनाती रहीं। एक डरावने मामले का एक बहुत ही आनन्ददायक और राजनयिक उपसंहार हुआ था।

मुख्य द्वार के बाहर बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। श्रीमती गांधी को उसे देखना था। राजीव ने सीढ़ी पकड़ ली। संजय छत के ऊपर खड़ा था। दोनों आदर्श पुत्रों की तरह व्यवहार कर रहे थे। श्रीमती गांधी कुछ सकुचाती हुई सीढ़ी से ऊपर गयीं और लगभग 15 मिनट तक वहाँ बैठी भीड़ की ओर देखकर हाथ हिलाती रहीं। उन्होंने उस भीड़ को इतनी देर तक निहारा कि वह उसे देख नहीं सकीं, वैसे ही जैसे भीड़ ने श्रीमती गांधी का नाटक और उनकी बहादुरी नहीं देखी। ऐसा केवल श्रीमती गांधी ही कर सकती थीं।

उस दिन लगभग पूरी सुबह दिल्ली की एक पत्रिका का एक नौजवान

संवाददाता सुनील सेठी श्रीमती गांधी के घर पर लोगों को आते-जाते देखता रहा था। उसने मेनका को बाहर आते देखा और राजीव को कुत्तों को टहलाते हुए देखा। संजय की सास श्रीमती आमातेश्वर आनंद ने किन्हीं रहस्यमय कारणों से सारा बंदोबस्त अपने हाथों में संभाल लिया था। यूनुस घर के बाहर आ-जा रहे थे। बी० बी० सी० के मार्क टल्ली अंदर जाने के इंतज़ार में थे। श्रीमती गांधी के कमरे में तारों का ढेर लगा था जिनमें कुछ बधाई के थे, कुछ सहानुभूति के। यह संवाददाता मेनका के पास गया और 'हेलो' कहा। मेनका वैसे ख़ुद भी एक तरह से पत्रकार है, लेकिन उसने उससे बात करने से इंकार कर दिया। लेकिन उसकी माँ बड़ी नरमी से पेश आयीं। उन्होने चहकते हुए कहा, 'नहीं, मैं कुछ नहीं कह सकती।' चारों ओर ख़ुशहाली का वातावरण छाया हुआ था।

जब श्रीमती गांधी छत से नीचे उतरीं तो संवाददाताओं ने कुछ शब्द कहने के लिए उन्हें रोका। लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। लेकिन जब उन्होंने मार्क टल्ली को देखा तो उनके चेहरे से ऐसा लगा कि उन्होंने उनको पहचान लिया है, जैसे वह कहना चाह रही थीं कि "हाँ-हाँ, मुलाक़ात का समय पक्का है।" और वास्तव में उस दिन सुबह उन्होंने बी० बी० सी० को एक और इंटरव्यू देने का वादा किया था। इंटरव्यू के लिए सामने वाला बैठने का कमरा चुना गया था, जो ख़ाली-ख़ाली-सा था। एक पुराना सोफ़ा पड़ा था वहाँ और आतिशदान पर एक प्रसिद्ध कलाकार का बनाया हुआ पंडित नेहरू का एक चित्र रखा था। श्रीमती गांधी जाकर सोफ़े पर बैठ गयीं। मार्क उनके सामने एक कुर्सी पर। टी० वी० वालों को लाइट वग़ैरह सेट करने में कोई दस मिनट लगे। मार्क ने कोशिश की कि छोटी-मोटी बात शुरू की जाये, पर व्यर्थ। उन्होंने मार्क की उपेक्षा कर दी। वह बहुत उत्तेजित लग रही थीं। बिलकुल चकनाचूर। शायद न्यायालय की थकावट, अश्रुगैस का प्रभाव, ऑफ़िसर्स मेस में रात गुज़ारने का अवसाद, या इन सब बातों का मिला-जुला प्रभाव हो सकता था। उनकी आँखें बेचैनी से इधर-उधर घूम रही थीं। सब-कुछ तैयार हो गया था। कैमरा घूमने लगा था। उन्होंने मार्क को कहते सुना, "अच्छा, अब हम तैयार हैं।" अविश्वसनीय है, लेकिन अचानक उनमें पूरा परिवर्तन आ गया। साड़ी का पल्लू उन्होंने अपने सिर पर ले लिया। वह फिर एक बार पुरानी इंदिरा की तरह दीप्त हो गयीं। चेहरे की रेखाएँ दूर हो गयी थीं। उन्होंने मार्क के सवाल को सीधे झेला। वह जानना चाहता था कि आगे का उनका क्या कार्यक्रम है? वह क्या करना चाहती हैं? उनके जवाबों में कुछ भी नया नहीं था। तब मार्क ने पूछा, क्या आप फिर राजनीति में आ गयी हैं? इस सवाल ने काम किया। वह उबल पड़ीं। "मैं नहीं जानती कि आप पत्रकार लोग कहाँ से ये मूर्खतापूर्ण विचार ले आते हैं। मैं मानती हूँ कि एक राजनीतिज्ञ राजनीतिज्ञ होता है। मैं एक राजनीतिज्ञ हूँ और हमेशा के लिए हूँ। वापसी का क्या सवाल है? मैं राजनीति से कभी बाहर गयी ही नहीं।" वह कठोर थीं, तेज़ थीं, आक्रामक थीं और उद्दंड थीं। बत्तियाँ बुझ गयीं। वह बड़ी सफ़ाई से मार्क को धन्यवाद देती हुई उसके सामने से चली गयीं जैसे वह वहाँ हो ही नहीं। यह कुल 15 मिनट का तमाशा था।

उसी दिन तीसरे पहर श्रीमती गांधी गुलाबी और सफ़ेद साड़ी पहने, ग़ज़ब की ताज़गी लिये बाहर आयीं। लेखिका उमा वासुदेव अपनी लाल स्टैंडर्ड हेराल्ड गाड़ी में वहाँ पहुँची हुई थीं, लेकिन उन्हें लगभग धक्का देकर भीड़ ने बाहर निकाल दिया। उन्हें अश्लील व्यवहार और गालियों का सामना करना पड़ा।

श्रीमती गांधी के बहुत अपने 'स्वामी' धीरेंद्र ब्रह्मचारी, जो उनके योग-गुरु रहे हैं, आये। बिलकुल छकाछक सफ़ेद मलमल के कपड़ों में। उनके चेहरे पर मुसकराहट फैली हुई थी। लेखक-कवि डाम मोरेस हाथ में बड़ा-सा गुलदस्ता लिये, गर्मी में पसीने से नहाये हुए इस दृश्य को देखते हुए खड़े कुछ सोच रहे थे। उन्होंने गुलदस्ता अंदर भेज दिया। उनके हाथ में गुलदस्ता कुछ बेमेल लग रहा था। एक पत्रकार ने उनसे पूछा, "आप यहाँ क्या कर रहे हैं? आप इस पूरी स्थिति के बारे में क्या सोचते हैं?" डाम कुछ हिचकिचाये और बोले, "इन लोगों ने बस यह साबित कर दिया है कि वे कितने बड़े मूर्ख हैं।"

नयी स्थिति में गुजरात के कार्यक्रम को रद्द करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। ब्रह्मचारी का आशीर्वाद प्राप्त करके वह उसी दिन शाम को हवाई जहाज़ से बंबई चल दीं। सांताक्रूज हवाई अड्डे पर ख़ासी भीड़ थी। उनकी गिरफ़्तारी से सारे देश में सनसनी की लहर दौड़ गयी थी। कांग्रेस कार्यकर्ता काफ़ी क्रुद्ध थे और उन्होंने जगह-जगह प्रदर्शन किये थे और हज़ारों की संख्या में गिरफ़्तारियाँ दी थीं। "आपका अगला क़दम क्या होगा?" एक पत्रकार ने श्रीमती गांधी से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे क़दम का सवाल नहीं उठता। मैं कोई शतरंज नहीं खेल रही हूँ।" अगर वह खेलतीं तो क्या होता! दूसरे दिन वह गुजरात में थीं। मोरारजी देसाई के ज़िले वलसाड में एक आम सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "मैं फिर से राजनीति में लौट आयी हूँ।"

ऐसा लगा कि श्रीमती गांधी फिर अपने पुराने खेल पर उतर आयी हैं, यानी एक ही साँस में ग़रीबों को फुसलाना और उनके साथ विश्वासघात करना। ऐसा ही 1969 में किया गया था और कुछ नया अब भी वह नहीं होने वाला था। ये एक महिला संवाददाता के विचार थे जिसने उनके साथ गुजरात की यात्रा की थी। उसने अनुभव किया कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण ग़रीबों के नाम पर किया गया और किस तरह उसका फ़ायदा व्यापारियों और उद्योगपतियों ने उठाया। दक्षिणी गुजरात के आदिवासियों के इस क्षेत्र में हज़ार किलोमीटर की यह यात्रा काफ़ी लंबी और कठिन थी। दिन सुबह साढ़े सात बजे शुरू होता था और आधी रात तक चलता था। उनकी यात्रा भगवान के उपेक्षित इलाक़ों से हुई थी, जहाँ उन्हें 'क्रांतिकारी,' 'त्राता' और 'देशसेविका' आदि उपाधियाँ दी गयीं। बाक़ी सब नेता बकवास थे।

यहाँ कुछ ऐसा हुआ कि श्रीमती गांधी का व्यवहार उससे ज़्यादा उत्साहमय था जितना कि वह बनाना चाहती थीं। उन्होंने कहा कि वह जनता का इस्तेमाल जनता पार्टी से लड़ने के लिए करेंगी। उनकी कमज़ोरी साफ़ झलक रही थी। यह उनकी अपनी गहरी असुरक्षा की भावना और अपने को ज़िंदा रखने की तड़प की अभिव्यक्ति थी। उन्होंने ग़रीबों का इस्तेमाल पहले अपनी तोपों के ईंधन की तरह किया था, और इस बार भी वह फिर वही करने जा रही थीं। वह फिर वादा कर रही थीं: "मेरी सरकार ने ग़रीबों, दबे-कुचले हुए लोगों, अल्पसंख्यकों, हरिजनों, महिलाओं के लिए अवसरों का रास्ता खोल दिया। अब जनता पार्टी इस सब पर पानी फेरकर उन्हें दूसरे रास्ते पर ले जा रही है।"

गुजरात की एक सभा में उन्होंने ऐलान किया, "अगर जनता सरकार में हिम्मत होती तो वह मुझे राजनीतिक क़ैदी बनाकर जेल भेज देती, लेकिन उनमें कोई साहस नहीं है।" अपनी इस चाल से श्रीमती गांधी यह साबित करने की

कोशिश कर रही थीं कि उन्होंने राजनीतिक लोगों को महीनों तक जेल में बंद रखकर कोई ग़लत काम नहीं किया था।

उनकी हास्यास्पद गिरफ़्तारी और रिहाई से श्रीमती गांधी को मनचाहा मौक़ा मिल गया था।

चरणसिंह की विफल कार्यनीति ने शाह कमीशन की बधिया बिठा दी थी। अचानक अब इसकी उपलब्धियों पर काले बादल छा गये थे। इस घोटाले ने सारे वातावरण को बिगाड़ दिया था। कुछ ही दिन की गवाहियों के दौरान आपात-काल की घटनाओं की भयानकता अपने पूरे वीभत्स रूप में सामने आ गयी थी। उसने आपात-काल के दानवों की काली करतूतों को नंगा कर दिया था, उनकी घोर नीचता का पर्दाफ़ाश कर दिया था। आपात-काल के पुलिस आतंक के प्रतीक पी० एस० भिंडर के पाँव उखड़ गये थे। दिल्ली के भूतपूर्व उपराज्यपाल कृष्णचंद ने बड़े दयनीय भाव से सारा दोष अपने सचिव नवीन चावला के मत्थे मढ़ दिया था। केंद्रीय जाँच-ब्यूरो के निदेशक श्री डी० सेन ने दलील दी कि उन्होंने जो कुछ किया, वह प्रधानमंत्री के "घर के लोगों" के कहने पर किया था।...यह सिलसिला चलता रहा। हर आदमी जो पेश किया जाता था वह पिछले के मुक़ाबले ज़्यादा शर्मनाक होता था।

शाह आयोग के सामने जो गवाहियाँ और जो जिरह हुई, उससे देश-भर के कांग्रेसजन हतप्रभ थे। उनका अपराध-भाव प्रकट होने लगा। आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन हुए। आर० के० धवन या उनके पी० ए० तक का टेलीफ़ोन आते ही मंत्री और बड़े-बड़े अफ़सर घुटने टेक देते थे। कोई नियम नहीं, कोई क़ायदे नहीं—सभी ख़त्म हो गये थे। शाह आयोग ने पूरी व्यवस्था के चरमराकर टूटने को उजागर कर दिया था।

न्यायमूर्ति शाह उनकी जानकारी के बिना श्रीमती गांधी की गिरफ़्तारी से बहुत दुखी हुए। क़ानून-मंत्री श्री शांतिभूषण ने बाद में बताया कि उनकी गिरफ़्तारी पर श्री शाह ने प्रतिक्रिया व्यक्त की। एक बार तो उन्होंने आगे की कार्रवाई रोक देने तक का निर्णय कर लिया था। उन्होंने कहा, "आयोग के काम-काज के ढँग के बारे में मैं फिर से विचार करना चाहूँगा।" शाह प्रधानमंत्री मोरारजी के पास गये और उन्होंने त्यागपत्र देने की पेशकश की। देसाई ने उनसे काम करते रहने का आग्रह किया। उन्होंने शाह से कहा, "इससे जनता सरकार ख़त्म हो जायेगी।" और इस तरह वह बने रहे।

लेकिन अब हर जगह यही सवाल पूछा जा रहा था : "क्या वह आयेंगी ?" जब 7 नवंबर को उनसे आयोग के सामने पेश होने को कहा गया तो उन्होंने कहा कि उन दिनों वह आंध्र के दौरे पर होंगी और इसलिए कोई दूसरी मुनासिब तारीख़ें बतायी जायें। श्रीमती गांधी के अख़बार नेशनल हेरॅल्ड ने बग़लें बजाते हुए लिखा कि कैसे श्रीमती गांधी के न आने से शाह आयोग और जनता सरकार—दोनों अजीब दुविधा में फँस गये थे। 12 नवंबर को दूसरी तारीख़ दी गयी, लेकिन उस दिन भी पिछली बार की तरह वह फिर नहीं आयीं। उलटे उन्होंने सत्रह पृष्ठों का एक वक्तव्य भेज दिया जिसमें उन्होंने कहा था कि "मैं नहीं जानती कि मेरे कार्रवाई में भाग लेने से कौन-सा उपयोगी उद्देश्य पूरा होगा। अगर फिर भी आयोग क़ानून के मुताबिक़ छानबीन करे और उसके दौरान मुझे गवाह के रूप में तलब किया जाये तो मैं उस निर्देश का पालन करूँगी।" यह स्पष्ट हो गया था कि

इसका भी फ़ैसला वही करेंगी कि कौन-सी चीज़ क़ानूनी है और कौन-सी नहीं !

इस आयोग के ख़िलाफ़ उनकी दो आपत्तियाँ थीं—एक तो यह कि आयोग ने काम का जो तरीक़ा अपनाया था वह क़ानून की दृष्टि से उचित नहीं था और दूसरी यह कि आपात-स्थिति की पुष्टि चूंकि संसद ने कर दी थी इसलिए न्यायमूर्ति शाह को इसके बारे में जाँच करने का कोई अधिकार नहीं था। श्रीमती गांधी को नागरिक अधिकारों और लोकतंत्र की दुहाई देते शहीद की मुद्रा में देखना बड़ा कठिन था। यह वही व्यक्ति थीं जिन्होंने अपने तमाम विरोधियों को जेल में ठूंस दिया था, बोलने की स्वतंत्रता का गला घोंट दिया था, प्रेस पर सेंसरशिप लागू कर दी थी, जो क़ानून उनके रास्ते में आता था उसमें पूर्वप्रभावी परिवर्तन के लिए संसद का रबर-स्टाम्प की तरह दुरुपयोग किया था। इंडियन एक्सप्रेस में अरुण शौरी ने टिप्पणी की कि श्रीमती गांधी अब अचानक सही कार्यविधि के प्रति ग़ज़ब की आस्था दिखलाने लगी थीं। अचानक वह संसद की गरिमा और संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों जैसी नगण्य चीज़ के लिए चिंतित हो उठी थीं।

अरुण शौरी ने श्रीमती गांधी की दोनों आपत्तियों के खोखलेपन को उजागर कर दिया। पहली बात तो यह थी कि जाँच आयोग अधिनियम के तहत शाह आयोग को पूरा अधिकार था कि वह जो भी तरीक़ा उचित समझता अपना सकता था। जहाँ तक संसद द्वारा आपात-स्थिति की पुष्टि का प्रश्न है वह तो हिटलर के उस 'एनेबलिंग ऐक्ट' की पुष्टि भी, जिसने उसे 'पूर्ण सत्ता' दे दी थी, वहाँ की संसद ने भारी बहुमत से की थी और दस्तावेज़ बताते हैं कि हिटलर ने क़ानूनी विधियों का जितनी पाबंदी से पालन किया था, उतनी तो श्रीमती गांधी से कभी आशा भी नहीं की जा सकती।

विधिवेत्ता रामजेठमलानी ने कहा कि श्रीमती गांधी के पत्र के कुछ हिस्सों में जिरह के बारे में उनका "आदर और भय" साफ़ झलकता है। आयोग के ख़िलाफ़ उनकी एक शिकायत यह थी कि लोग जिरह के डर के बिना ग़ैर-ज़िम्मेदारी के बयान देते चले जाते हैं। दूसरे शब्दों में, झूठ की जाँच के लिए वह जिरह की अनिवार्यता को स्वीकार करती हैं और फिर भी दूसरी ही साँस में वह स्वयं आयोग पर लंबी और परेशान करने वाली जिरह का आरोप लगाती हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनाव से संबंधित मुक़दमे के दौरान हुई जिरह के अनुभव के बाद उन्हें जिरह से चिढ़-सी हो गयी थी। जगमोहनलाल सिन्हा की अदालत में श्रीमती गांधी की गवाही को एक बार फिर बड़े प्रभावशाली ढंग से क्रमबद्ध करके, जिससे उनके "झूठ और आधी-आधी सच्चाइयाँ" पूरी तरह बेनक़ाब हो गयीं, शौरी ने निष्कर्ष निकाला, "कोई आश्चर्य नहीं कि शाह आयोग में श्रीमती गांधी के वकील ने गवाह के तौर पर श्रीमती गांधी को जिरह से और शपथ लेकर कुछ कहने से बचाने की भरपूर कोशिश की।"

श्रीमती गांधी शाह की निर्मम पूछताछ की शैली से परिचित थीं और उन्होंने दूसरों को इस पूछताछ में परेशान होते देखा था। और लगातार वह डरती रहीं कि यही परेशानी उन्हें भुगतनी पड़ेगी।

उन्होंने बड़ी लफ़्फ़ाज़ी करते हुए यह कहकर कि अगर हर सरकार को यह डर लगा रहे कि उसके बाद आने वाली सरकार उसके ख़िलाफ़ अदालती कार्रवाई की मुहिम चलायेगी तो कोई सरकार काम ही नहीं कर सकती, अपने मन में छुपे हुए भय को प्रकट कर दिया था।

श्रीमती गांधी को आयोग के ख़िलाफ़ हथियार दिया स्वयं चरणसिंह की निरंतर डींगों ने, जो वह हर जगह मारते फिरते थे। उन्होंने एक आम सभा में कहा, "श्रीमती गांधी को शाह कमीशन के सामने पेश करने के लिए अगर ज़रूरत पड़ी तो गिरफ़्तारी का वारंट भेजकर बुलाया जायेगा" (इंडियन एक्सप्रेस, 5 दिसंबर 1977)। उन्होंने यह भी कहा कि "अगर शाह आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ ज़ाहिर-बज़ाहिर कोई मामला बनता है तो सरकार उन पर मुक़दमा चलायेगी।"

श्रीमती गांधी तो इसी तरह के नुक़्तों की घात में थीं, जिन्हें उठाकर वह समय प्राप्त कर सकें। पहले वक्तव्य पर आपत्ति प्रकट करते हुए उन्होंने आयोग को लिखा : "चरणसिंह का वक्तव्य यह प्रकट करता है कि वह सम्माननीय आयोग को प्राय: जनता पार्टी का, और विशेष रूप से गृह-मंत्रालय का, दुमछल्ला मानते हैं।" दूसरे वक्तव्य के बारे में श्रीमती गांधी ने आयोग को लिखा : "गृहमंत्री ने अब यह स्पष्ट कर दिया है कि अपराध की इकतरफ़ा घोषणा के आधार पर वह मुक़दमा चलायेंगे।"

इन पत्रों से प्रकट होता है कि उनका—ख़ासतौर पर उनके वकील का—दिमाग़ किस तरह काम कर रहा था। पहले वह आयोग में शपथ लेकर कुछ कहने से इंकार करेंगी और फिर कहेंगी कि आयोग का निर्णय इकतरफ़ा है, और यह कि उन्हें तो अपनी बात तक कहने का मौक़ा नहीं दिया गया था। यही माँ और बेटे के एक पक्के समर्थक ने मारुति रिपोर्ट के बारे में टी० वी० पर बहस के दौरान किया (दिल्ली दूरदर्शन का 14 सितंबर, 1979 का कार्यक्रम)।

श्रीमती गांधी ने अपने क़ानूनी सलाहकारों से हफ़्तों तक मशविरा किया कि शाह आयोग के बारे में क्या कार्यनीति अपनाना उचित होगा ? लेकिन इसके बारे में उन्हें समझदारी की राजनीतिक सलाह देने वाला कोई नहीं था। उनके पास दूर-दूर तक राजनीतिक प्रतिभा का धनी कोई भी व्यक्ति नहीं था। वह किससे पूछें ? साठे, धवन और यशपाल कपूर से ?

हर तरफ़ से निराश होकर उनकी नज़र पी० एन० हक्सर पर गयी। हक्सर एक समय उनकी शक्ति और गरिमा के रचनाकार थे। वही एक आदमी थे जो श्रीमती गांधी के मुँह पर जो कुछ ठीक समझते थे, साफ़-साफ़ कह देते थे। कभी उसके बारे में श्रीमती गांधी की प्रतिक्रिया की चिंता नहीं करते थे। अपने बेटे के लिए श्रीमती गांधी की कमज़ोरी में हिस्सेदार बनने से उन्होंने इंकार कर दिया था। उन्होंने दरबारी बनने के बजाय अलग हट जाना पसंद किया। संजय के गिरोह ने जो कुछ हक्सर के परिवार के साथ किया था उसके बाद कोई दूसरा आदमी फिर किसी तरह की सलाह देने को तैयार न होता। लेकिन पी० एन० हक्सर संकीर्णता से परे थे। उनके मन में श्रीमती गांधी के लिए थोड़ी-बहुत सहानुभूति थी। आख़िर तो वह उनके प्रिय नेता जवाहरलाल नेहरू की बेटी थीं।

हक्सर ने उन्हें सुझाया कि वह शाह आयोग का साहस से सामना करें और कहें, आपात-स्थिति लागू करना प्रधानमंत्री की हैसियत से उनका अपना निर्णय था। आयोग के सामने अपना बयान न देना उचित नहीं होगा। हक्सर ने उन्हें राय दी कि आयोग में पई, सुब्रह्मण्यम आदि भूतपूर्व मंत्रियों ने जो बयान दिये थे, उनके लिए उन पर गुस्सा करने के बजाय उन पर तरस खाना चाहिए। श्रीमती गांधी ने यह ज़रूर अनुभव किया होगा कि पी० एन० हक्सर से पूछना बेकार था। हक्सर का सोचने का ढँग उनसे बिलकुल ही अलग था। उनकी सलाह मानने

के लिए साहस और नैतिक दृढ़ता की ज़रूरत थी, जो श्रीमती गांधी में नहीं थी। आपात-स्थिति के बारे में बढ़-चढ़कर भाषण देना एक बात थी, लेकिन इस पर जिरह के लिए तैयार होना उनके बूते के बाहर था।

उनके कुछ वकील यह अनुभव करते थे कि अगर श्रीमती गांधी शपथ लेकर वक्तव्य देने को तैयार हो जायें तो इससे उन्हें उन मंत्रियों और अधिकारियों से जिरह करने का अधिकार मिलेगा जिन्होंने उनके ख़िलाफ़ निंदाजनक वक्तव्य दिये थे और यह भी हो सकता था कि जिरह में उनमें से कई लोगों की बातों का पूरी तरह खंडन किया जा सके। निश्चय ही इससे लाभ होता। लेकिन दूसरी तरफ़ न्यायमूर्ति शाह की पैनी जिरह का सामना करने की कल्पना से ही दिल काँप उठता था। यह तर्क दिया गया कि तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि ने सरकारिया आयोग की अवहेलना की थी और उसका कोई ख़ास बुरा परिणाम नहीं हुआ। यह उदाहरण श्रीमती गांधी के लिए राहत का कारण बना। उन्होंने निर्णय कर लिया।

जब आयोग ने वाक़ायदा सम्मन जारी किया तो श्रीमती गांधी के पास पटियाला भवन जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं था।

श्रीमती गांधी 7 जनवरी, 1978 को सुबह 9 बजे अपने वकील फ्रेंक एंथोनी, बेटे राजीव और दोनों पुत्र-वधुओं के साथ वहाँ पहुँचीं। अपने पहले शब्दों से ही एंथोनी ने स्पष्ट कर दिया कि वह आयोग के ख़िलाफ़ लंबी क़ानूनी लड़ाई का रास्ता चुन चुके हैं। जैसा कि बी० पी० मौर्य ने बाद में बताया (लेखक के साथ भेंटवार्ता में), उन्होंने देर करने की रणनीति अपना ली थी। उन्हें पक्का विश्वास था कि जनता सरकार अंततः टूट जायेगी, अलबत्ता इसमें कुछ समय लग सकता था।

एंथोनी ने आयोग को बताया कि उनका मुवक्किल वक्तव्य देने को बाध्य नहीं है। (न्यायमूर्ति शाह ने 11 विशेष मुद्दों पर श्रीमती गांधी से उनका बयान माँगा था, जो सुनवाई के दौरान उठाये गये थे।) एंथोनी ने आरोप लगाया कि आयोग राजनीतिक प्रेरणा से काम कर रहा था और न्यायमूर्ति शाह अपने अधिकारों की सीमा से बाहर निकल गये थे।

श्रीमती गांधी न्यायमूर्ति शाह के सामने बैठी थीं, लेकिन उन्होंने उनसे एक बार भी आँख नहीं मिलायी। उनका चेहरा बिलकुल एक आईने की तरह उनके भावों को प्रकट कर रहा था। इसमें उनकी खीझ, उनका अविश्वास और विनोद-भाव—सब-कुछ परिलक्षित हो रहा था। बीच-बीच में वह अपने बैग को कसकर पकड़ लेतीं, या उसमें कुछ उलटती-पुलटती रहतीं। कभी-कभार वह किसी सरकारी प्रकाशन के पन्ने उलटने लगतीं। उनकी आँखें ख़ाली-ख़ाली थीं और वह बिना कुछ देखे चारों ओर नज़र दौड़ाती रहतीं।

गवाहों में पई और सुब्रह्मण्यम मौजूद थे। पी० सी० सेठी बैठे दाँतों से नाख़ून कुतर रहे थे।

यह नाटक 11 जनवरी बुधवार को अपनी चरम-बिंदु पर पहुँच गया। न्यायमूर्ति शाह ने श्रीमती गांधी से पूछा कि क्या वह शपथ लेकर वक्तव्य देने को तैयार हैं? श्रीमती गांधी बिलकुल गुमसुम और भावशून्य बैठी रहीं। उनके पीछे उनका पूरा परिवार बैठा था। उस दिन संजय भी आया था।

न्यायमूर्ति शाह ने अपना सवाल बड़ी कड़ी और साफ़ आवाज़ में दोहराया: "श्रीमती गांधी, क्या आप शपथ लेकर वक्तव्य देने को तैयार हैं?"

उनका चेहरा इस बार भी भावशून्य बना रहा। एंथोनी उनके पास गये और उन्होंने उनके कान में कुछ कहा। धीरे-धीरे वह उठकर कठघरे की तरफ़ गयीं और बड़ी काँपती आवाज़ में बोलीं: "महाशय, मैं शपथ लेकर वक्तव्य देने से इंकार करती हूँ। क़ानूनी तौर पर मैं इसके लिए बाध्य नहीं हूँ। गोपनीयता की जो शपथ मैंने ले रखी है उसका इससे हनन होगा।"

न्यायमूर्ति शाह ने कहा, "आप वक्तव्य देंगी, या वक्तव्य न देने के परिणाम भुगतने के लिए तैयार हैं?"

उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उनकी अवज्ञा पूरा आकार ले चुकी थी।

न्यायमूर्ति शाह पूरी तरह शांत थे और तनिक भी क्षुब्ध हुए बिना उन्होंने आदेश लिखवाना शुरू कर दिया। श्रीमती गांधी पर आयोग के सामने वक्तव्य देने से इंकार करने के जुर्म में मुक़दमा चलाया जाना था। श्रीमती गांधी आयोग को अपने स्तर पर घसीट लाने में सफल हो गयी थीं। अब आयोग की हैसियत एक छोटी-सी अदालत में महज़ एक वादी की रह गयी थी।

श्री एम० सी० छागला ने इस पर कहा था कि आयोग के सामने बयान देने से उनका इंकार करना मूलतः डर के कारण था। वह सोचती थीं कि अगर आपात-काल की ज़्यादतियाँ साबित हो गयीं तो उन्हें "सार्वजनिक निंदा और भर्त्सना" का सामना करना पड़ेगा। उन्होंने आयोग को एक राजनीतिक मंच में बदल दिया। छागला ने उनका वर्णन एक "जीती-जागती पहेली" के रूप में करते हुए कहा कि उनका दिमाग़ किस तरह काम करता है, यह समझ पाना कठिन है। आयोग को सत्य का पता लगाने में मदद देने का उनका कभी कोई इरादा नहीं था।

श्रीमती गांधी सच से ज़्यादा किसी चीज़ से नहीं डरतीं।

4

दूसरा विभाजन

कांग्रेस के दूसरे विभाजन के साथ-साथ दो महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ हुईं— एक तो, अमरीका के राष्ट्रपति कार्टर दिल्ली आये और दूसरे, देवराज अर्स को निकाला गया। यह केवल संयोग नहीं था। कर्नाटक में राष्ट्रपति शासन का लागू किया जाना प्रत्यक्ष रूप से इस विभाजन से संबंधित था और राष्ट्रपति कार्टर के आगमन के समय इस प्रकार का क़दम उठाया जाना इस बात का एक और उदाहरण है कि श्रीमती गांधी हर काम उचित समय देखकर करती हैं और राजनीतिक मंच पर सबसे अधिक प्रकाश में करने की क्षमता उनमें बहुत है। जब विश्व के समाचारपत्रों, रेडियो और दूरदर्शन की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ, जिनमें विख्यात बारबरा वाल्टर्स भी थीं, अमरीका के राष्ट्रपति के साथ भारत पहुँच रही थीं, श्रीमती गांधी के लिए वही सबसे अच्छा समय था जब वह दुनिया को यह दिखा सकती थीं कि वह विस्मृति के गर्त में नहीं चली गयी हैं, बल्कि राजनीतिक मंच के बीचोंबीच खड़ी हैं।

कांग्रेस के इस विभाजन के साथ एक तीसरी घटना और हुई, जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। परंतु आठ वर्ष की अवधि में कांग्रेस के दूसरी बार विभाजित होने के साथ उसका भी सीधा संबंध था। वह घटना यह थी कि यशपाल कपूर ने नेशनल हैरॅल्ड का प्रबंध संभाल लिया था। 31 दिसंबर, 1977 को जब श्रीमती गांधी द्वारा बुलाये गये कांग्रेस सम्मेलन के पंडाल अभी बनाये ही जा रहे थे, श्री कपूर दनदनाते हुए पंडित नेहरू के इस मृतप्राय समाचार-पत्र के दफ़तर में पहुँचे और उन्होंने उसके जीवित रहने की घोषणा की। समाचारपत्र के कर्मचारियों को उनकी यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह स्वयं अख़बार को चलायेंगे। श्रीमती गांधी के हटने के बाद अख़बार चलाने-वाली कंपनी की आर्थिक दशा इतनी ख़राब थी कि नवंबर में प्रबंध-निदेशक मोहम्मद यूनुस ने श्रीमती गांधी से उसको बचने की अनुमति माँगी थी। अख़बार के आय क़े स्रोत पहले ही संदिग्ध थे और अब वे बिलकुल सूख चले थे। बंसीलाल,

नारायणदत्त तिवारी, ज़ैलसिंह, जगन्नाथ मिश्र और अन्य मुख्यमंत्रियों ने सरकारी और ग़ैर-सरकारी ढंग से हर तरह का प्रश्रय देकर इस अख़बार को किसी तरह जीवित रखा था, लेकिन अब जनता ने उन लोगों को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया था। सोने के अंडे देने वाली मुर्ग़ियों को एक ही बार में हलाल कर दिया गया था। श्रीमती गांधी को यह बताया गया था कि अब अख़बार को चलाते रहना असंभव है। दिसंबर के प्रारंभ में निदेशक-मंडल ने बाक़ायदा यह निर्णय कर लिया कि कंपनी की भूमि और अन्य सम्पत्ति को बेच दिया जाये। 23 दिसंबर की शाम को जब श्रीमती गांधी कांग्रेस को हथियाने की समर-नीति के अंग के रूप में एक चाय-पार्टी दे रही थीं तो उनके घर के बाहर नारे लग रहे थे, "नेहरू के नाम को मिट्टी में मिलाने वाले बरबाद हों, बरबाद हों!" नारे लगाने वाले इसी समाचारपत्र के कर्मचारी थे जो अचानक बंद हो गया था। ये लोग मशालों का जुलूस लेकर प्रदर्शन करने के लिए श्रीमती गांधी के घर पहुँचे थे।

श्रीमती गांधी के लिए यह बात उतनी ही परेशान करने वाली थी जितनी कि यह कि चाय-पान के लिए बहुत कम कांग्रेसी आये थे। उनका विचार था कि कम-से-कम एक सौ संसद-सदस्य और भूतपूर्व संसद-सदस्य आयेंगे। लेकिन उससे आधे भी नहीं आये थे। जो आये थे उनमें सबसे महत्वपूर्ण उनके अपने पिछलगू थे—यशपाल कपूर, वसन्त साठे, कल्पनाथ राय, श्रीमती सरोज खापर्डे और अन्य लोग-उन्होंने यह पार्टी यह अंदाजा लगाने के लिए की थी कि वह जिस सम्मेलन की योजना बना रही हैं उसमें भाग लेने के लिए कितने लोग आयेंगे? उन्हें निराशा हो रही थी और अब उनके अपने समाचारपत्र में संकट पैदा हो गया था जिसकी आवश्यकता उन्हें अपना प्रचार करने और अपना एक चित्र जनता के सामने उपस्थित करने के लिए थी। दल का संकट और समाचारपत्र का संकट—दोनों साथ-साथ ही अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये थे। ऐसा लगता था कि उनका मनोबल फिर टूट रहा है।

श्रीमती गांधी ने उमाशंकर दीक्षित को बुलाकर यह पता लगाने के लिए कहा कि समाचारपत्र को जीवित रखा जा सकता है या नहीं? उनके मंत्रिमंडल में आने से पहले दीक्षित कई वर्ष तक इस कंपनी का प्रबंध चलाते रहे थे। उन्होंने विचार करने के बाद श्रीमती गांधी से कहा कि अगर वह 25 लाख रुपया दे दें तो अख़बार को जीवित रखा जा सकता है। श्रीमती गांधी का प्रश्न था: "मुझे इतना रुपया कहाँ से मिलेगा?" 26 दिसंबर को निदेशक-मंडल की बैठक फिर हुई और उसमें यह निर्णय किया गया कि कंपनी को बेचने के प्रस्ताव का अनुमोदन कराने के लिए हिस्सेदारों की असाधारण बैठक 3 जनवरी को बुलायी जाये। परंतु उसके बजाय 4 जनवरी, 1978 को यशपाल कपूर ने कंपनी के प्रबंध-निदेशक का पद संभाल लिया। उससे दो ही दिन पहले श्रीमती गांधी ने "असली" कांग्रेस की नींव रखी थी।

समाचारपत्र का जीवित रहना किसी जादू का परिणाम नहीं था। वह—कम-से-कम अस्थायी रूप से—इस कारण बच गया कि कर्नाटक से नक़द रुपया आया। यह कांग्रेस दल के विभाजन के बारे में श्रीमती गांधी और देवराज अर्स के बीच हुए सौदे का हिस्सा था। श्रीमती गांधी दल को अपनी मुट्ठी में रखने की चेष्टा में तो थीं जिससे कि उन्हें और संजय गांधी को अपनी निजी मुसीबतों से निकलने में सहायता मिल सके, पर उन्हें दल को विभाजित करने की कोई जल्दी नहीं थी। उनका बस चलता तो वह कुछ समय और प्रतीक्षा करके सारे दल पर

ही अधिकार कर लेतीं क्योंकि उनका यह विचार था कि कभी-न-कभी उनका वर्चस्व स्थापित हो जायेगा। उनकी गिरफ़्तारी और उसके बाद रिहाई के कारण उनकी जो ख्याति बढ़ी थी उसके कारण उनका विरोध करने वाले कई कांग्रेसियों की हिम्मत टूटने लगी थी।

श्रीमती गांधी तो कुछ दिन प्रतीक्षा कर लेतीं, परंतु देवराज अर्स नहीं कर सकते थे। मुख्यमंत्री के पद से हटाया जाना वह अंतिम वार था जिसके बाद अब वह चुप नहीं बैठ सकते थे। कांग्रेस के केंद्रीय नेताओं ने उनके राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के० एच० पाटिल को कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बनाकर उनके सिर पर बिठा दिया था। पाटिल ने केंद्र में उन नेताओं की सहायता से, जिनका उन पर वरदहस्त था, जोड़-तोड़ करके विधायक दल में अर्स का समर्थन समाप्त कर दिया था और उनके पतन के लिए वही ज़िम्मेदार थे। देवराज अर्स ने कई वर्ष के कठोर परिश्रम से जिस भवन का निर्माण किया था वह ध्वस्त होता दिखायी दे रहा था। अर्स भलीभाँति जानते थे कि आने वाले विधानसभा के चुनावों में उनकी क्या हालत होगी। केंद्र में ब्रह्मानंद रेड्डी बैठे थे और राज्य में कांग्रेस के संगठन पर के० एच० पाटिल का क़ब्ज़ा था। ये दोनों मिलकर इस बात का प्रबंध कर सकते थे कि अर्स के समर्थकों को टिकट न दिये जायें। परिणाम यह होता कि कर्नाटक की वोकल्लिगा और लिंगायत नामक उन्हीं दो ऊँची जातियों का फिर वर्चस्व स्थापित हो जाता, जिन्होंने कई दशकों तक राजनीतिक सत्ता अपने क़ब्ज़े में रखी थी। ऐसा हो जाता तो इन जातियों के शिकंजे के ख़िलाफ़ अर्स का सारा संघर्ष बेकार हो जाता। उनकी हैसियत फिर वही दो कौड़ी की हो जाती जैसी कि 1969 से पहले थी, जब श्रीमती गांधी ने उन्हें नयी कांग्रेस का नेतृत्व करने के लिए चुना था। इससे भी बुरी बात यह थी कि अर्स को जेल का दरवाज़ा भी दिखायी दे रहा था। जनता सरकार द्वारा नियुक्त किये गये ग्रोवर जाँच आयोग ने उन्हें कई मामलों में दोषी पाया था और यह अफ़वाह गर्म थी कि उन्हें गिरफ़्तार किया जा सकता है। उनकी इतनी दुर्दशा हो जायेगी, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।

अर्स की जान किस मुसीबत में है, इसे श्रीमती गांधी से ज़्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता था। अर्स दिसंबर में 21 दिन तक दिल्ली में पड़ाव डाले श्रीमती गांधी को इस बात के लिए राज़ी करने का प्रयत्न करते रहे कि उनके सामने एकमात्र रास्ता यह रह गया है कि कांग्रेस से निकल आयें और स्वयं दल की अध्यक्ष बन जायें। अपनी लड़ाई लड़ने के लिए उन्हें अपने एक दल की आवश्यकता थी। बाक़ी नेता बेकार हो चुके थे—थके-माँदे पिटे हुए लोग—जिनका कोई भविष्य नहीं था। अर्स बार-बार यही राग अलाप रहे थे : "ये लोग हमारे लिए बोझ हैं, हम इन्हें क्यों उठाये फिरें ?" एक समय जब श्रीमती गांधी ने झिझक दिखायी तो अर्स ने आक्रामक रूप धारण कर लिया और दक्षिण के लिए एक नयी कांग्रेस, 'दक्षिण भारतीय कांग्रेस' के संगठन की संभावना की बात कही। अर्स ने तमिलनाडु के अभिनेता-मुख्यमंत्री, केरल के मुख्यमंत्री ऐंटनी और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री वेंगल राव के साथ इसके बारे में बातचीत शुरू कर दी थी। यद्यपि यह चाल अभी दबाव डालने मात्र के लिए थी, फिर भी श्रीमती गांधी इससे बहुत चिंतित थीं। अर्स राजनीतिक दृष्टि से एकमात्र प्रभावशाली व्यक्ति थे जो श्रीमती गांधी के साथ थे और वही उनके राजनीतिक अनुयायियों को किसी सम्मानजनक स्थिति में ला सकते थे। जबकि बाक़ी सब लोग तो ढिंढोरचियों से अधिक कुछ

नहीं थे, अर्स एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने राजनीति में अपनी जड़ें जमा ली थीं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वात यह थी कि यदि अर्स श्रीमती गांधी का साथ छोड़ देते तो उनका पैसे का एक सबसे बड़ा स्रोत सूख जाता।

यशपाल कपूर ने श्रीमती गांधी को यह सुझाव दिया कि यदि वह कांग्रेस का विभाजन करा ही रही हैं तो इस अवसर का 'समुचित लाभ' उठायें। दल के विभाजन की सबसे बड़ी आवश्यकता तो अर्स को थी। और वह उसकी कोई भी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार थे। कपूर ने उनसे कहा, "आपको अपना अख़बार चलाने के लिए पैसे की आवश्यकता है ही। तो फिर एक ही तीर से दो शिकार क्यों न किये जायें ?" स्वयं कपूर को इस काम पर लगाया गया। वातों-बातों में, जैसा कि उसका स्वभाव है, कपूर ने अर्स को इशारा कर दिया। अर्स से उन्होंने कहा कि यदि आप नया दल बना रहे हैं तो उसको सशक्त बनाने के लिए आपको एक दैनिक अख़बार की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा एक अख़बार पहले से ही मौजूद है जिसकी महान परंपरा है। परंतु दुर्भाग्यवश उसकी दशा ठीक नहीं है। करना केवल इतना है कि उसमें कुछ लाख रुपये की पूंजी लगानी पड़ेगी ! अर्स की निगाहों में यह कोई बड़ी समस्या नहीं थी। पैसा इकट्ठा करने के मामले में एक ही और व्यक्ति था जो उनसे बाज़ी मार सकता था। लेकिन वह मर चुका था— उसका नाम था, ललितनारायण मिश्र। नेशनल हेरॅल्ड के लिए कुछ लाख रुपया जुटाना कोई समस्या नहीं होगी, ऐसा अर्स का विचार था। लेकिन जब यशपाल कपूर ने बताया कि कितना रुपया चाहिए तो अर्स को पता चला कि यह तो खुले-आम दबाव डालकर पैसा हथियाने की कोशिश है। कपूर ने 75 लाख रुपये की राशि की चर्चा की थी। यह बहुत बड़ी रक़म लगती थी, परंतु अर्स का वास्ता इतनी बड़ी-बड़ी राशियों से पड़ चुका था और वह केवल राशि की बात सुनकर पीछे हटने वाले व्यक्ति नहीं थे। कुछ दिनों की बातचीत के बाद सौदा पक्का हो गया : ज्यों ही अर्स 52 लाख रुपये की राशि ले आयेंगे उसी दिन श्रीमती गांधी कांग्रेस को विभाजित कर देंगी। इस रक़म की आवश्यकता, कपूर के शब्दों में, नेशनल हेरॅल्ड को फिर से चालू करने के लिए "इससे कम राशि से काम नहीं चल सकता था।" (ये बातें कांग्रेसजनों और नेशनल हेरॅल्ड के कर्मचारियों से की गयी भेंट वार्ताओं के परिणामस्वरूप पता चलीं।)

प्रारंभ में श्रीमती गांधी ने घोषणा की कि उनके दल का सम्मेलन 31 दिसंबर और पहली जनवरी को होगा। पर अंत तक वह अपनी सारी योजनाएँ बताने के लिए तैयार नहीं थीं। उनके समर्थक बार-बार यह कह रहे थे कि "यह सम्मेलन एकता लाने के लिए है।" कपूर तो बड़ा मँजा हुआ खिलाड़ी था। उसने बराबर इस बात पर बल दिया कि जब तक पैसा हाथ में न आ जाये तब तक नये दल की घोषणा करने के बारे में एक शब्द भी न कहा जाये। कार्यक्रम के अनुसार पैसा 30 दिसंबर तक आना था। परंतु किसी कारणवश उसमें विलम्ब हो गया और सम्मेलन भी एक दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।

दो जनवरी को दोपहर को एक बजने में दस मिनट पर सम्मेलन के सभापति कमलापति त्रिपाठी ने उस समय बोल रहे एक वक्ता को बीच में ही रोक दिया और एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया था कि श्रीमती गांधी को "असली" कांग्रेस का एकमत से अध्यक्ष चुन लिया जाये। बहुत-से व्यक्तियों का विचार था कि दोपहर को बारह बजकर पचास मिनट का समय ज्योतिषियों ने दल को विभजित करने के लिए सबसे उपयुक्त समय बताया था। पर असली कारण नक्षत्रों की चाल

का नहीं, वल्कि लौकिक था। श्रीमती गांधी 12, विलिंगडन क्रिसेंट में बैठी थीं। कहने को वह वारवरा वाल्टर्स को इंटरव्यू दे रही थीं, परंतु अचानक इस प्रकार की घोषणा का मतलब यह था कि दल के विभाजन के लिए रखी गयी शर्तें पूरी हो गयी थी। पैसा उनके पास पहुँच चुका था।

कांग्रेस का विभाजन उस आंदोलन का चरमोत्कर्ष था जो श्रीमती गांधी के गुजरात के सफल दौरे के कुछ ही समय वाद प्रारंभ हुआ था। उनकी गिरफ़्तारी और रिहाई वहुत-से व्यक्तियों की दृष्टि में गद्दी की ओर उनके अभियान का चरमोत्कर्ष थी। गिरफ़्तारी से श्रीमती गांधी "शहीद" वन गयी थीं और उनका मनोबल वहुत वढ़ गया था, फिर भी वह आतंकित थीं और वहुत घवरायी हुई थीं। चौधरी चरणसिंह ने यह कहना प्रारंभ कर दिया था कि उन्हें फिर गिरफ़्तार कर लिया जायेगा और इस वार अधिक गंभीर अपराधों के लिए पकड़ा जायेगा। श्रीमती गांधी ने स्वयं अपने कुछ निकट सहयोगियों को वताया था कि उन्हें 12 अक्तूवर को फिर गिरफ़्तार किया जायेगा। अपनी पहली गिरफ़्तारी के वाद लगभग दो सप्ताह तक—उन दिनों को छोड़कर जव वह गुजरात का दौरा कर रही थीं—वह वरावर आतंकित रहीं। रात को उन्हें नींद नहीं आती थी और तनिक भी खटका होता था तो वह उठकर वाहर झाँकने लगतीं।

सोमवार, 10 अक्तूवर की रात को तो उनके घर में अच्छा-ख़ासा नाटक हो गया। लगभग आधी रात का समय था जव श्रीमती गांधी ने शोर मचा दिया और सभी लोग दौड़े हुए उनके पास पहुँच गये। उन्हें विश्वास था कि पुलिस फिर उन्हें गिरफ़्तार करने आयी है। कुछ लोग दौड़े हुए वाहर गये तो देखा कि गेट के पास पुलिस की एक गाड़ी सचमुच वापस जा रही है। वाद में पता चला कि वह गाड़ी तो उनकी कोठी के वाहर ड्यूटी वदलने के लिए नये संतरियों को लेकर आयी थी। इसके वावजूद श्रीमती गांधी सो नहीं पायीं और बाक़ी सब लोग भी रात-भर जागकर चौकसी करते रहे। उस दिन के वाद से युवा कांग्रेस के कुछ हट्टे-कट्टे स्वयंसेवक रात-दिन पहरा देने के लिए तैनात कर दिये गये।

शाह आयोग से नोटिस आने लगे थे। संजय गांधी के हाथ-पाँव फूल गये थे, क्योंकि उसके विरुद्ध स्थान-स्थान पर मुक़दमे दायर किये जा रहे थे। उसके अभिन्न मित्र और उसकी ओर से लोगों को डराने-धमकाने वाले वंसीलाल को हथकड़ी लगाकर भिवानी के वाज़ारों में घुमाया गया था। यह समाचार भी आ रहे थे कि शायद आर० के० धवन सरकारी गवाह वन जायें। संजय गांधी सारे घर में चिल्लाता फिर रहा था : "मैं देख लूंगा। मैं इन सबको देख लूंगा।" कुछ समय से उसने परिवार के दूसरे लोगों के साथ खाने के लिए वैठना भी छोड़ दिया था और जव वैठता भी था तो एक भी शब्द उसके मुँह से नहीं निकल पाता था। उसकी पत्नी मेनका ने अपनी सहेलियों को वताया था, "हम शाम को सिवाय छत को घूरते रहने के और कुछ नहीं करते।" इसमें संदेह नहीं कि श्रीमती गांधी की गिरफ़्तारी के वाद आशा की छोटी-सी किरण दिखायी दी थी। परंतु डर और चिंता के वादल अभी तक छाये हुए थे।

श्रीमती गांधी को पता था कि उनके पास वहुत समय नहीं है। दल को अपने हाथ में करना अत्यावश्यक था। उनका विचार था कि यदि वह कांग्रेस की अध्यक्षा वन जायें तो शायद सरकार उन्हें गिरफ़्तार करने की हिम्मत न करे। इतना तो खैर होगा ही कि उनकी व्यक्तिगत समस्या को राजनीतिक रंग मिल जायेगा और

उनके दल के लोग उनके अंगरक्षकों के रूप में कार्य कर सकेंगे। उनकी राय में उन्हें आँखें दिखानेवाले कांग्रेस के कुछ नेता थे, जो अब तनिक बदल रहे हैं। जनता सरकार की भयंकर भूल के बाद वे लोग पहले की अपेक्षा उनका अधिक सम्मान करने लगे थे। ब्रह्मानंद रेड्डी को उनकी गिरफ़्तारी का पता चला था तो वह दौड़े हुए उनके घर गये थे और अगले दिन न्यायालय से रिहा होने के बाद जब वह अपने घर पहुँचीं तो रेड्डी फूलमालाएँ लिये उनके स्वागत के लिए तैयार खड़े थे। कांग्रेस ने संगठन के रूप में उनकी गिरफ़्तारी की निंदा करने में भी विलंब नहीं किया था। इन सब बातों से श्रीमती गांधी और उनके समर्थकों की धारणा यह बनी थी कि कांग्रेस के नेता उनके सामने हथियार डालने के लिए तैयार हो गये हैं।

परंतु आठ-दस दिनों में ही उन्हें यह पता चल गया कि कांग्रेस के नेता, जिनकी हिम्मत लौट आयी थी, आसानी से आत्म-समर्पण नहीं करेंगे। उसके लिए पूरे ज़ोर से अभियान चलाना पड़ेगा। श्रीमती गांधी के कुछ मुख्य सूरमाओं ने, जिनमें वसंत साठे और अब्दुल रहमान अंतुले शामिल थे, नयी दिल्ली में कर्नाटक भवन में एक सभा की और उसमें यह प्रस्ताव पास किया गया कि श्रीमती गांधी को दल का नया अध्यक्ष चुना जाये। उन्होंने इस बात के लिए ब्रह्मानंद रेड्डी के प्रति आभार भी प्रकट किया कि वह "श्रीमती गांधी के पक्ष में अध्यक्ष पद छोड़ने को तैयार हैं।" बाद में स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए श्री रेड्डी ने कहा : "मैं तो श्रीमती गांधी की भावनाओं का सम्मान कर रहा था और मैंने यह कहा था कि यदि वह मुझसे अध्यक्ष पद छोड़ने को कहें तो मैं उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए तैयार हूँ। परंतु वह स्वयं तो कभी कुछ माँगती ही नहीं हैं, उनकी इच्छा यही रहती है कि दूसरे लोग उनके लिए सभी कुछ करें" (इंडिया टुडे, 16-31 जनवरी, 1978।)

इस प्रस्ताव के कारण कांग्रेस में उनके विरोधियों की विरोध-भावना और भी अधिक दृढ़ हो गयी और वे रेड्डी के नेतृत्व में संगठित हो गये। कर्नाटक भवन में इंदिरा के समर्थकों की फिर बैठक हुई, जिसमें एक नयी रणनीति तैयार की गयी। तब तक कर्नाटक भवन इंदिरा के समर्थकों का "गढ़" बन चुका था। नया हमला शुरू करने के लिए 15 अक्तूबर को नयी दिल्ली में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के एक-दिवसीय अधिवेशन का अवसर चुना गया था। उनके विरोधियों पर प्रहार तो उनके समर्थकों ने प्रारंभ किया था, लेकिन इस अभियान की बागडोर अपने हाथ में संभाल लेने के लिए वह स्वयं आधी रात को बड़े नाटकीय ढंग से वहाँ आ पहुँचीं। इंदिरा गांधी ने मंच पर बैठे वरिष्ठ नेताओं पर यह आरोप लगाया कि वे अपनी आत्मा शैतान के हाथों बेच चुके हैं। उनका कहना था कि वे सभी उनके विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल हो गये हैं और अपना पुराना महानता का उन्माद प्रदर्शित करते हुए उन्होंने घोषणा की : "मैं ही देश हूँ और मैं ही कांग्रेस पार्टी हूँ और मेरी मृत्यु के बाद भी मेरी स्मृति जनता को मेरे आदर्शों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहेगी।" उनकी आँखों में अब आँसू नहीं थे और वह प्रहार करने पर उतारू थीं, ऐसा भरपूर प्रहार कि विरोधी तिलमिला उठे। विनम्रता विदा ले चुकी थी।

चूँकि रेड्डी छोड़ने की इच्छा का प्रमाण नहीं दे रहे थे, इसलिए श्रीमती गांधी के समर्थकों ने अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाने के लिए लोगों से हस्ताक्षर लेने प्रारंभ किये ताकि एक नये कांग्रेस-अध्यक्ष का चुनाव हो सके। कुछ ही समय बाद वे लोग यह दावा करने लगे थे कि उनके पास 400 व्यक्तियों के

हस्ताक्षर हैं, लेकिन वे उनके नाम बताने के लिए तैयार नहीं थे। यह पता चला कि कांग्रेस संसदीय दल में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के 15 में से 9 सदस्यों ने इस माँग पर हस्ताक्षर नहीं किये थे, पर मीटिंग बुलाये जाने की माँग करनेवाले उनके हस्ताक्षर प्राप्त कर चुकने का दावा कर रहे थे।

अन्य लोगों को चाहे पता न हो, लेकिन शतरंज के इन खिलाड़ियों को पता था कि कौन-सा मोहरा कहाँ है। उस समय छः राज्यों में कांग्रेस की सरकारें थीं और केरल के ऐंटनी, आंध्रप्रदेश के वेंगलराव, महाराष्ट्र के वसंतराव पाटिल, असम के एस० सी० सिन्हा, मेघालय के विलियमसन संगमा और कर्नाटक के देवराज अर्स में से केवल अर्स ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो अधिवेशन बुलाये जाने के समर्थक थे। अन्य मुख्यमंत्री या तो इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे, या इसके बारे में हिचकिचा रहे थे। वेंगलराव भी, जो सदा से ब्रह्मानंद रेड्डी के विरोधी रहे हैं और जिन्होंने रेड्डी के अध्यक्ष चुने जाने पर इस्तीफ़ा देने की धमकी दी थी, उनके साथ आ मिले थे। मज़े की बात यह है कि इन दोनों के बीच सुलह-समझौता स्वयं श्रीमती गांधी ने कराया था।

अब श्रीमती गांधी और उनके समर्थकों की कोशिश यह थी कि कोई ऐसी तरकीब निकले कि उनकी इज़्ज़त बच जाये। उन्होंने एक "नौ-सूत्री माँग-पत्र" तैयार किया जिसमें यह शर्त भी थी कि रेड्डी श्रीमती गांधी की सहमति से ही सारे मुख्य निर्णय करें, कि वह इंदिराजी के परामर्श से संसदीय बोर्ड और कार्यकारिणी का पुनर्गठन करें। यह भी माँग की गयी थी कि लोकसभा के चुनावों के बाद सदस्यों के विरुद्ध अनुशासन की जो कार्रवाइयाँ की गयी थीं वे निलंबित कर दी जायें। यदि इस "माँग-पत्र" को स्वीकार कर लिया जाता तो रेड्डी केवल अँगूठा लगाने वाले बनकर रह जाते। उन्होंने इन माँगों को अस्वीकार कर दिया और सबसे कह दिया कि जो लोग अधिवेशन बुलाना चाहते हैं वह जो चाहें कर लें। उन्हें पता था कि श्रीमती गांधी की स्थिति कमज़ोर है, इसलिए वह चुपचाप अपने घर पर बैठे रहे और उनकी अगली चाल की प्रतीक्षा करते रहे।

उनकी अगली चाल से तो रेड्डी अचंभे में पड़ गये। एक दिन आधी रात के बाद वह अचानक रेड्डी के घर जा पहुँचीं। बहुत समय से वह प्रत्येक व्यक्ति पर दृष्टि रखे हुए थीं और उन्हें यहाँ तक पता था कि वह कैसे खाता-पीता और कैसे सोता-जागता है। उन्हें मालूम था कि आधी रात को या उसके बाद रेड्डी अकेले होंगे और उनके समूह का कोई भी व्यक्ति वहाँ नहीं होगा। उनके लिए यह बड़ा असाधारण क़दम था, पर स्थिति भी तो असाधारण ही थी। यह 17 नवंबर की बात है और शाह आयोग का एक और नोटिस पहुँच चुका था जिसमें उन्हें 21 नवंबर को उपस्थित होने के लिए कहा गया था। उनके लिए यह आवश्यक था कि और कांग्रेसियों को आयोग के सामने जाने से रोकें—पहले ही काफ़ी हानि हो चुकी थी।

उनके इस प्रकार आधी रात को रेड्डी से भेंट करने का एक परिणाम तो निकला और वह यह कि परस्पर कटुता कम हो गयी और नये सिरे से बातचीत होने लगी। अगले दिन दो प्रस्तावों के मसौदे तैयार किये गये। एक के ज़रिए श्रीमती गांधी को कांग्रेस का अधिवेशन बुलाने की माँग वापस लेनी थी और दूसरा वक्तव्य रेड्डी की ओर से दिया जाना था जिसमें दल में एकता की अपील की जानी थी। इस समझौते में अनकहे रूप से यह बात स्वीकार कर ली गयी थी कि कांग्रेस के नेता अर्स के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने पर बल नहीं देंगे, जिन्होंने

बँगलौर में दल के विरुद्ध वक्तव्य देने के आरोप में अपने एक मंत्री को मन्त्रिमंडल से न निकालने के कांग्रेस नेताओं के आदेश की अवहेलना की थी। इस प्रकार छः सप्ताह का यह नाटक समाप्त हो गया, पर कुछ ही दिनों में इसे फिर प्रारंभ होना था।

देखा जाये तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि रणनीति को ध्यान में रखते हुए श्रीमती गांधी ने पीछे हटना स्वीकार कर लिया था। उनको केवल इतना लाभ हुआ था कि ब्रह्मानंद रेड्डी ने, जिन्हें उन्होंने कभी "पाँवदान" से अधिक हैसियत नहीं दी थी, एकता की एक निरर्थक अपील की थी। स्पष्ट रूप से इसमें उनकी हार थी और वह उस दल में अपने को पराजित नहीं देखना चाहती थीं जिस पर कई वर्षों तक उसका वर्चस्व रहा था। वह क्रोध से भरी बैठी थीं, लेकिन कर कुछ नहीं सकती थीं। उनके मन में और अधिक डर उत्पन्न हो गया था। विशेष रूप से अक्तूबर-नवंबर में दक्षिण के दौरे के बाद यह डर और भी बढ़ गया था। जब तक वह तुंगभद्रा के इस ओर रहीं, सब ठीक था। लेकिन ज्योंही उन्होंने नदी पार की, ईंट और पत्थर बरसने लगे। सबसे बुरी दशा तो चिकमगलूर में हुई जहाँ से एक वर्ष बाद वह विजयी होकर लोकसभा में आयीं। वहाँ की भीड़ इतनी उत्तेजित और हिंसक थी कि सभाओं में भाषण देते समय उन्हें पुलिस की ढाल के पीछे छिपना पड़ता था।

वह दौरे से लौटीं तो उस समय, उनके निकटतम समर्थक बुद्धप्रिय मौर्य के शब्दों में, "उन्हें अपनी जान का खतरा था।" उन्होंने मौर्य से कहा : "लोग मुझे मार डालेंगे।" उन्हें वह धमकी-भरी चिट्ठियाँ भी दिखायीं जो उनके पास आती रहती थीं। श्रीमती गांधी इतनी डरी हुई थीं कि श्री मौर्य और उनकी पत्नी उन्हीं के घर में सोने लगे ताकि उनमें तनिक सुरक्षा की भावना पैदा हो। मौर्य का कहना है : 'लगभग एक महीने तक ऐसे ही चलता रहा। हम लोग एक तरह से वहीं रहने लगे थे।" मौर्य ने "शक्तिशाली दुर्गा" को असली रूप में देख लिया था।

उनके राजनीतिक सहयोगी देवराज अर्स की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। इस बात के बावजूद कि केंद्र में तथाकथित "युद्ध-विराम" हो गया था, कर्नाटक में उनके शत्रु उन्हें क्षमा नहीं कर रहे थे। वे लोग उन्हें मिटा देने पर तुले बैठे थे और अर्स को लग रहा था कि उसका भविष्य अंधकारमय है। चारों ओर से अर्स पर आक्रमण हो रहे थे। श्रीमती गांधी की राजनीति का एक मुख्य स्तंभ होने के नाते जनता सरकार उन्हें मिटाने पर तुली हुई थी। राज्यपाल गोविंदनारायण भी अर्स के पीछे पड़े हुए थे। जिस मुख्यमंत्री ने उन्हें पाँव की जूती समझा था, उसे धराशायी कर देने का कोई अवसर वह हाथ से नहीं जाने देते थे।

अर्स बिलकुल निराश होते जा रहे थे। वह श्रीमती गांधी को इस बात का विश्वास दिलाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे कि यदि वह कोई क़दम नहीं उठायेंगी तो दक्षिण में भी उनका समर्थन करने वाला कोई नहीं रहेगा। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में कुछ ही महीनों में चुनाव होने वाले थे और इस स्थिति में दल का नियंत्रण उनके शत्रुओं के हाथों में रहना घातक सिद्ध हो सकता था। अर्स का कहना था कि यदि आप चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े नहीं करतीं हैं तो आप कहीं की न रहेंगी। अर्स इंदिराजी को दो में से एक विकल्प चुन लेने पर विवश कर रहे थे—या तो दल पर अधिकार कर लेना, या दल को विभाजित कर देना।

श्रीमती गांधी की कोशिश यही थी कि कांग्रेस पर उनका वर्चस्व फिर से

स्थापित हो जाये। सरकार का तख़्ता पलटने की नाज़ियों-जैसी योजना के अनुरूप यह सोचा गया कि उनके समर्थक संजय के गुंडों को साथ लेकर 5 दिसंबर को होनेवाली कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में धड़धड़ाते हुए जा घुसें और नेताओं को इस बात के लिए विवश करें कि वे श्रीमती गांधी के सामने आत्मसमर्पण कर दें और उनसे बैठक में आने का अनुरोध करें। एक बार यह हो जाने पर अगला क़दम यही होता कि उस बैठक में ही श्रीमती गांधी को दल का सर्वोच्च नेता घोषित कर दिया जाता। परंतु ऐन वक़्त पर श्रीमती गांधी की हिम्मत टूट गयी और "तख़्ता पलटने" की यह योजना विफल रही।

वह स्वयं बैठक में पहुँचीं कि कांग्रेस के अन्य नेताओं को शाह आयोग के सामने उपस्थित होने से रोका जा सके। अर्स, मौर्य और ए० पी० शर्मा ने ज़ोरदार माँग की कि कांग्रेस कार्यकारिणी शाह आयोग के सामने कांग्रेसजनों के उपस्थित होने पर प्रतिबंध लगा दे। श्रीमती गांधी को प्रसन्न करने के लिए यह निर्णय किया गया कि कांग्रेसजनों को "सलाह" दी जायेगी कि वे शाह आयोग के सामने न जायें। अगले दिन कार्यकारिणी ने कर्नाटक की गुत्थी पर विचार शुरू किया, पर सारा मामला तू-तू, मैं-मैं में ख़त्म हो गया। श्रीमती गांधी ने यह शिकायत की कि कांग्रेसी नेता उनके अनुयायियों को "परेशान कर रहे हैं" और इसके उत्तर में यशवंतराव चह्वाण ने बड़ी कटुता से कहा कि आप स्वयं उत्तरप्रदेश में कांग्रेस दल को "अपनी जागीर" समझकर चला रही हैं।

उस दिन रात को 12, विलिंगडन क्रिसेंट में श्रीमती गांधी की "युद्ध परिषद" की बैठक हुई। अर्स ने चह्वाण और रेड्डी के विरुद्ध अभियान प्रारंभ कर दिया। अगले दिन उन्होंने कांग्रेसी नेताओं के दूत—वाई० बी० चह्वाण और त्रिपाठी से मिलने से इंकार करके उन्हें तिरस्कृत किया। त्रिपाठी अभी तक नारद की भूमिका निभा रहे थे।

अंततोगत्वा श्रीमती गांधी अर्स के दबाव के आगे झुक गयीं और उन्होंने कांग्रेस कार्यकारिणी से इस्तीफ़ा दे दिया। उनके त्यागपत्र में कहा गया था कि वह दल के आंतरिक मामलों में "ख़तरनाक शिथिलता" पर विरोध प्रकट करने के लिए कार्यकारिणी छोड़ रही हैं। उसे अपने जीवन का एक "निर्णायक क्षण" बताते हुए उन्होंने यह आरोप लगाया कि कांग्रेस "राष्ट्र के मामलों में अपनी वैध भूमिका निभाने के योग्य नहीं रह गयी है।"

यह चिट्ठी उन्होंने 9 दिसंबर को लिख ली थी, लेकिन भेजी नहीं। 10 दिसंबर को वह कांग्रेस कार्यकारिणी की एक बैठक में तीन घंटे तक रहीं भी, लेकिन उन्होंने अपने मन की बात का संकेत तक नहीं दिया। यह चिट्ठी अर्स के एक सहयोगी एफ़० एम० ख़ान ने—जो कुछ ही दिन बाद उनका साथ छोड़कर संजय के गिरोह में शामिल हो गये थे—18 दिसंबर को ले जाकर रेड्डी को दी। चिट्ठी भेजने के बाद श्रीमती गांधी वैष्णोदेवी की तीर्थयात्रा पर चल पड़ीं, जिसका उद्देश्य संभवत: अपने जीवन के इस "निर्णायक क्षण" में देवी का आशीर्वाद प्राप्त करना था। पर यदि उनका यह विचार था कि उनके त्यागपत्र से कांग्रेस के नेता अपना मानसिक संतुलन खो बैठेंगे और हाथ जोड़ते हुए उनके पास आयेंगे तो यह उनकी भूल थी। उन नेताओं में जितना वह समझती थीं उससे कुछ अधिक साहस पैदा हो गया था। कांग्रेस कार्यकारिणी के एक वरिष्ठ सदस्य का कहना था कि हर बार दल ने श्रीमती गांधी को हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करने की चेष्टा की है। "यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि हमने ग्यारह वर्ष तक अपनी आत्मा को

उनके पास बंधक रखा, हालाँकि हममें से बहुत-से लोग इस संगठन में उनकी अपेक्षा अधिक समय से हैं।" (स्टेट्समैन, 20 दिसंबर, 1977।)

बाद में श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने हैदराबाद में एक भाषण में कहा : "वह चाहती थीं कि हम लड़ें, गली-कूचों में मार-पीट करें और जेल जायें। हम जेल जाने से डरते नहीं हैं। हमने कई वर्ष तक जेल काटी है जबकि वह तो केवल नौ महीने जेल में रही हैं...परंतु क्या हम जनता पार्टी के नेताओं से हाथापाई करें? या संजय गांधी, बंसीलाल और यशपाल कपूर के समर्थन में आंदोलन करें?"

श्रीमती गांधी श्री रेड्डी से यही आशा करती थीं। क्या रेड्डी वही आदमी नहीं थे जिन्होंने अभी एक वर्ष पहले संजय की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी? श्रीमती गांधी और उनके समर्थक बहुधा लोगों को यह बताते थे कि दिसंबर, 1976 में संजय के जन्म-दिन पर ब्रह्मानंद रेड्डी ने कहा था : "वह एक ऐसे कुल की चौथी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जिसके सदस्यों ने देश की राजनीति में सबसे आगे रहकर भाग लिया है और देश का नेतृत्व करके उसे स्वतंत्रता दिलायी है।...**संजय गांधी में निस्संदेह अपना एक आकर्षण है...कुछ ही महीनों की संक्षिप्त अवधि में वह देश के युवा नेताओं में सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँच गये हैं। आपातकाल की घोषणा के बाद जिस नये वातावरण का निर्माण हुआ है उसमें संजय युवा पीढ़ी को एक नयी दिशा दे रहे हैं; उनमें यह भावना पैदा कर रहे हैं कि वह एक अच्छे काम में हिस्सा ले रहे हैं और कुछ करके दिखा रहे हैं।**" (इन शब्दों पर बल देने के लिए मैंने इन्हें मोटे अक्षरों में लिखा है।)

इस बात को देखते हुए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि श्रीमती गांधी को रेड्डी से कुछ अधिक आशा थी। परंतु समय बदल चुका था। अब रेड्डी यह कहते फिर रहे थे कि संगठन का पतन इस कारण हुआ कि "एक 27 वर्ष के छोकरे को देश का भावी प्रधानमंत्री कहा जाने लगा था। विनाशकाले विपरीत बुद्धि" (स्टेट्समैन, 18 जनवरी, 1978)। इंदिरा के दरबारी मसख़रे देवकांत बरुआ को भी जब उनकी इस कुख्यात उक्ति की याद दिलायी जाती थी कि "इंदिरा ही भारत हैं", तो वह तिलमिला उठते थे।

श्रीमती गांधी का सौभाग्य था कि अब भी कुछ कांग्रेसी नेता ऐसे थे जो उनकी जय-जयकार करते फिर रहे थे : "इंदिराजी जहाँ हैं, वहाँ कांग्रेस है और वहीं देश है।" डॉक्टर चेन्ना रेड्डी ने "असली" कांग्रेस के अध्यक्ष का अभिवादन इन्हीं शब्दों से किया था। तारकेश्वरी सिन्हा अभी तक उनके साथ थीं और रेड्डी को गाली देने के लिए उर्दू के शेर पढ़ा करती थीं। युवा नेता ललित माकन, जो अभी तक संजय के साथ थे, यह प्रश्न पूछते झिझकते नहीं थे कि जिस देश में पत्थरों और मिट्टी तक की पूजा की जाती हो वहाँ व्यक्तियों की पूजा क्यों न की जाये? वह अभी तक उनकी ओर से यह कहते थे : "हम इंदिरा गांधी की पूजा करेंगे।"

श्रीमती गांधी के एक समर्थक भगवत झा आज़ाद का दावा था कि 103 संसद-सदस्य, 210 भूतपूर्व संसद-सदस्य, राज्यों के 197 विधायक और अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के कुल 664 सदस्यों में से 347 उस सम्मेलन में आये थे जो पहली जनवरी को प्रारंभ हुआ था।

परंतु बी० पी० मौर्य, जिन्होंने देवराज अर्स के साथ मिलकर इस सम्मेलन की व्यवस्था की थी, अब सच्ची बात कहने के लिए स्वतंत्र हैं। उनका कहना है : "उस समय जितने आँकड़े बताये गये, सब नक़ली थे। अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों की संख्या 112 से अधिक नहीं थी और संसद के दोनों सदनों के

16 या 17 से अधिक सदस्य सम्मेलन में नहीं थे। बाक़ी सभी नक़ली प्रतिनिधि हमने ही बनाये थे। मैंने रिपब्लिकन पार्टी के दिनों के अपने सारे अनुयायियों को इकट्ठा किया था और देवराज अर्स कर्नाटक से बहुत-से लोगों को साथ लेकर आये थे...।"

मौर्यजी खरी बात कहने में नहीं झिझकते और उन्होंने कांग्रेस के विभाजन के कुछ ही समय बाद श्रीमती गांधी से कहा : "मैंने संविधान की परवाह किये बिना आपको कांग्रेस का अध्यक्ष बना दिया है और अब आप उसी संविधान के अनुसार मुझे कांग्रेस का महासचिव बना दीजिये।"

श्रीमती गांधी ने मौर्य से कहा : "हाँ-हाँ, अवश्य।" लेकिन मौर्य देख रहे थे कि वह फिर पहले की तरह रोब जमाने लगी थीं। उनकी यह मुद्रा 'ढाई राज्यों' में इंदिरा कांग्रेस की विजय का परिणाम थी। जब श्रीमती गांधी ने यह घोषणा की कि "मैं ही एकमात्र विपक्ष हूँ," (आस्ट्रेलिया के प्रसार आयोग से एक भेंट-वार्ता में जो 27 फ़रवरी, 1978 को प्रसारित की गयी) तो ऐसा लगा कि वह उसी तेवर से बात करने लगी हैं जिसमें आपात-काल के दिनों में किया करती थीं। उनके साहित्यिक दलाल उनके "नये अवतार" के बारे में लिखने लगे थे।

मौर्यजी ने आंध्रप्रदेश में दल के चुनाव-आंदोलन में बहुत जमकर काम किया था और उन्हें अपने कई पुराने समर्थकों को विधानसभा का सदस्य बनवाने में सफलता भी मिली थी। मौर्य को स्वयं यह आशा थी कि वह आंध्र प्रदेश में राज्य-सभा का चुनाव जीत जायेंगे और इसी आशा से उन्होंने वहाँ दस एकड़ भूमि ख़रीद ली थी, क्योंकि उसी दशा में वह उस राज्य से चुनाव लड़ सकते थे। राज्य-सभा के चुनाव विधानसभाओं के चुनावों के परिणाम घोषित होने के कुछ ही दिन बाद होने थे। जब श्रीमती गांधी ने राज्यसभा के लिए अपने दल के टिकट बाँटने शुरू किये तो मौर्य उनके पास गये और उनसे कहा कि वह राज्यसभा का सदस्य बनना चाहते है।

मौर्य का कहना है : "इंदिराजी समझीं कि शायद मैं उत्तर प्रदेश से खड़ा होना चाहता हूँ और तुरंत कहने लगीं, 'नहीं-नहीं आप राज्यसभा में मत आइये। मैं राज्यसभा में आना चाहती हूँ।' मैंने उनसे कहा, ठीक है आप आ जाइये। उन्होंने तुरंत कमलापति त्रिपाठी को बुलाया और उनसे कहा कि राज्यसभा के लिए वह अपना नामांकन-पत्र दाख़िल न करें, क्योंकि वह स्वयं उत्तर प्रदेश से चुनाव लड़ना चाहती हैं। पर हुआ यह कि उनका नाम मतदाताओं की सूची में था ही नहीं। मैं समझता हूँ कि यशपाल कपूर ने कोई शरारत की होगी और इलाहाबाद तथा रायबरेली दोनों ही चुनाव-क्षेत्रों के मतदाताओं की सूची से उनका नाम निकलवा दिया होगा।" इस पर श्रीमती गांधी आगबबूला हो गयीं, पर वह इसके बारे में कर ही क्या सकती थीं!

कुछ दिन बाद मौर्य फिर श्रीमती गांधी से मिलने गये और पूछने लगे: "आपने मेरे बारे में क्या सोचा?"

"हाँ, आपका क्या है?" उन्होंने त्योरियाँ चढ़ाकर पूछा।

मौर्य बोले, "मेरे राज्यसभा में जाने की बात थी।"

"मौर्यजी, अभी नहीं।" श्रीमती गांधी ने बड़ी अधीरता से कहा।

लेकिन मौर्यजी का धैर्य भी समाप्त हो चुका था। उन्होंने दृढ़ता से कहा: "मादाम, मैं केवल यह बताने के लिए आया हूँ कि मैं राज्यसभा में आ रहा हूँ और मुझे आपकी सहायता की आवश्यकता नहीं है। मैं आंध्रप्रदेश से चुना जाऊँगा।"

मौर्यजी हैदराबाद चल पड़े। लेकिन उनके पहुँचने से पहले ही श्रीमती गांधी ने टेलीफ़ोन पर डॉक्टर चेन्ना रेड्डी से बात कर ली थी। किसी की अवज्ञा तो वह बरदाश्त ही नहीं कर सकती थीं, इसीलिए वह चाहती थीं कि रेड्डी ऐसी व्यवस्था करें कि मौर्य राज्यसभा के सदस्य न चुने जा सकें। पर चेन्ना रेड्डी तो स्वयं मौर्य के साथ थे। मुख्यमत्री बनने में मौर्यजी ने उन्हें जो सहायता दी थी उसके लिए वह उनके प्रति कृतज्ञ थे।

विधानसभा के चुनाव में कांग्रेस की विजय के बाद मौर्य ने श्रीमती गांधी को सुझाव दिया था कि तीन राज्यों में से कम-से-कम एक में मुख्यमंत्री अनुसूचित जाति का हों, क्योंकि हरिजनों के भरपूर समर्थन के परिणामस्वरूप ही कांग्रेस विजयी हो पायी है।

श्रीमती गांधी बोलीं : "यह संभव नहीं है।" इस पर मौर्य ने स्वयं अपनी चाल चली। उनकी कहानी उन्हीं के शब्दों में सुनिये :

'देवराज अर्स को भी श्रीमती गांधी पर कोई भरोसा नहीं था। संसदीय बोर्ड के निर्णय की प्रतीक्षा किये बिना उन्होंने अपने विधायकों को इकट्ठा किया और स्वयं को विधायक दल का नेता निर्वाचित करा लिया। पर डॉ० चेन्ना रेड्डी के राज्य में बहुमत उनके साथ नहीं था। मुझे पता था कि वह श्रीमती गांधी के विरोधी हैं और इसलिए जब इंदिराजी ने अनुसूचित जाति के व्यक्ति को मुख्यमंत्री बनना स्वीकार नहीं किया तो मैंने चेन्ना रेड्डी के नाम का सुझाव दिया। इस पर वह भड़क उठीं और बोलीं : 'नहीं-नहीं, वह बड़ा ख़तरनाक आदमी है। उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता।' उन्होंने उनके चरित्र और ईमानदारी के बारे में भी अपशब्दों का प्रयोग किया। लेकिन मैं भी अपनी बात पर अड़ा हुआ था और मैंने कहा : 'नहीं-नहीं, हमें ब्रह्मानन्द रेड्डी के विरुद्ध लड़ना है और नीलम संजीव रेड्डी भी आपके साथ नहीं हैं। कोई-न-कोई रेड्डी तो होना ही चाहिए और केवल चेन्ना रेड्डी ही हैं।' वह ना-ना करती ही रहीं।

"आधी रात के समय चेन्ना रेड्डी ने मुझे टेलीफ़ोन किया और बोले,'मौर्यजी, मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह औरत मेरे लिए क्या करने जा रही है।' मैंने उनसे कहा, 'सारा मामला मेरे ऊपर छोड़ दीजिये, आप मुख्ययंत्री बनेंगे।' पर रेड्डी कहने लगे, 'नहीं-नहीं, यह तो आपका विचार है, मैं इंदिरा गांधी का विचार जानना चाहता हूँ।' मैंने उन्हें बताया कि वह आपके पक्ष में नहीं हैं। जिसके उत्तर में डॉ० रेड्डी बोले, 'जाकर उनसे कह दीजिये कि मैं डॉ० चेन्ना रेड्डी हूँ और अपने शत्रु से लड़ना जानता हूँ।' मैं उसी समय, यद्यपि आधी रात बीत चुकी थी, इंदिराजी के घर गया। उनकी सुरक्षा के लिए तैनात लोगों ने मुझे बताया कि वह सो रही हैं। लेकिन मैंने उनसे कहा कि जाकर उन्हें जगा दो और कहो, मैं एक ज़रूरी काम से आया हूँ। वह 'क्या बात है ? क्या बात है ?' कहती हुई बाहर आयीं। मैंने डॉ० चेन्ना रेड्डी के शब्द दोहरा दिये और कहा कि यदि आप उन्हें मुख्यमंत्री बनाना स्वीकार नहीं करेंगी तो उन पर नियंत्रण रखना कठिन हो जायेगा। इस पर वह चिंता में डूब गयीं और बोलीं : 'आप जाकर नरसिंहराव को क्यों नहीं बुला लाते ?' मैं उसी समय नरसिंहराव के घर गया और उन्हें जगाकर अपने साथ इंदिरा गांधी के पास ले आया। हमने इस विषय पर बातचीत प्रारंभ की। पर राव टालमटोल करने लगे, क्योंकि वह स्वयं मुख्य-मंत्री बनना चाहते थे। उसके बाद इंदिराजी ने आंध्र के एक और नेता राजाराम को टेलीफ़ोन किया। लेकिन लगता है कि वह भी मुख्यमंत्री की गद्दी की इस दौड़

में शामिल थे। रात के कोई डेढ़ या दो बजे होंगे, लेकिन यह मामला अभी निपट नहीं पाया था। उसके बाद इंदिराजी बोलीं : 'कुछ नहीं, कुछ नहीं, मौर्यजी चेन्ना रेड्डी को मुख्यमंत्री बनाने के लिए मेरे ऊपर दबाव डाल रहे हैं। अच्छा है, यही सही...।' इस प्रकार चेन्ना रेड्डी मुख्यमंत्री बने। जब मैंने उनसे कहा कि मैं राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होना चाहता हूँ तो उन्होंने सारा मंत्रिमंडल मेरी सहायता के लिए तैनात कर दिया और इस प्रकार मैं राज्यसभा में आ गया।"

मौर्य का नाम श्रीमती गांधी की काली सूची में आ चुका था। लेकिन कुछ समय बाद उन दोनों में इससे भी जोरदार टक्कर हुई। श्रीमती गांधी के "पुनरावतरण" के साथ ही उनका बेटा भी फिर सिर उठाने की कोशिश कर रहा था। संजय गांधी और उसके समर्थक इकट्ठे हो रहे थे और उन्हीं के दबाव में आकर श्रीमती गांधी ने कार्यकारिणी की एक बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि युवा कांग्रेस को इंदिरा-कांग्रेस के बराबर का दरजा दिया जाये। उनका कहना था कि वह उसे एक स्वायत्त संगठन बनाना चाहती हैं जिसके पास अपना पैसा हो और जो कांग्रेस से स्वतंत्र रहकर काम कर सके।

इस पर मौर्य ने तुरंत आपत्ति की और कहा कि यह तो "स्वयं अपने गले पर छुरी फेरनेवाली बात" होगी। उन्होंने यह भी कहा कि 1977 में कांग्रेस को जिस प्रकार मुँह की खानी पड़ी है उसकी कम-से-कम आधी ज़िम्मेदारी युवा कांग्रेस पर है।

"मैं नहीं मानती," श्रीमती गांधी गुस्से से बोलीं।

"आप मानें चाहे न मानें," मौर्य ने कहा, "पर सच यही है। मैं फिर कहता हूँ कि हमारी हार की आधी ज़िम्मेदारी युवा कांग्रेस पर है और यदि आप इसे स्वायत्त संगठन बना देंगी तो यह कांग्रेस के लिए घातक सिद्ध होगा।"

इंदिरा गांधी ने उत्तर दिया : "यदि ऐसी बात है तो मैं युवकों को यह सलाह देना बेहतर समझूंगी कि वे संगठित ही न हों।"

"ठीक है, ऐसा ही कीजिये।" मौर्य ने कहा। उस समय कार्यकारिणी में और कोई नहीं बोला। इन दोनों में ही परस्पर बातचीत चलती रही।

"मैं युवकों के साथ काम करना पसंद करूँगी," श्रीमती गांधी बोलीं।

मौर्य का उत्तर था : "ठीक है, आप युवकों के साथ काम कीजिये और हम कांग्रेस में काम करेंगे।"

श्रीमती गांधी झल्ला उठीं। बोलीं : 'आज मैं आप लोगों के कारण लोकप्रिय नहीं हूँ, जो यहाँ इस कमरे में बैठे हैं। मेरी लोकप्रियता मेरी अपनी है...।'

मौर्य भी आसानी से दबने वाले नहीं थे। बोले : "हो सकता है, श्रीमती जी, आप स्वयं ही लोकप्रिय हों। पर यह धारणा बिलकुल ग़लत है। मैं उदाहरण देकर बता सकता हूँ कि हम लोगों ने आपको लोकप्रिय बनाने में अपने-अपने ढंग से किस प्रकार भरपूर योगदान किया है...।"

गुजरात के सनत मेहता को छोड़कर और किसी ने भी श्रीमती गांधी की इस बात पर विरोध प्रकट नहीं किया। मेहता ने कहा : "हम सभी को इस प्रकार अपमानित न कीजिये।" उन्हें इस बात पर बहुत धक्का लगा होगा कि वह सब-कुछ भूल गयीं जो उन्होंने और उनके मित्रों ने कुछ ही महीने पहले गुजरात के दौरे के दिनों में उनके लिए किया था।

उसी दिन तीसरे पहर आंध्रप्रदेश विधानसभा के कई सदस्य मौर्य से आकर बोले कि वे श्रीमती गांधी से मिलना चाहते थे, पर उन्होंने मिलने से इंकार कर

दिया। उनमें से कुछ वेंगलराव की सरकार में मंत्री रह चुके थे और श्रीमती गांधी के कहने पर ही उन्होंने इस्तीफ़ा दिया था। उसी दिन शाम को मौर्य इंदिराजी से मिलने गये और उनसे पूछा कि क्या आंध्र के कुछ विधायक आपसे मिलने आये थे?

"हाँ, आये तो थे," उन्होंने जवाब दिया।

"और उनका कहना है कि आपने उनसे मिलने से इंकार कर दिया।"

"ठीक है, यही बात थी।" श्रीमती गांधी ने उत्तर दिया।

मौर्यजी ने पूछा : "पर क्यों? जब आपको आवश्यकता थी उस समय उन्होंने आपकी सहायता नहीं की थी क्या?"

मौर्य उनके साथ स्पष्टवादिता से काम लेने लगे थे, क्योंकि उनकी हार के बाद उनके बीच ऐसे ही संबंध बन गये थे। पर उनके इस नये रवैये पर मौर्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह ग़ुस्से से बोलीं, "यदि आप मुझ पर दबाव डालेंगे तो मैं दल छोड़ दूँगी।"

मौर्य ने कहा : "मैं आप पर दबाव नहीं डाल रहा हूँ। मैं तो प्रार्थना कर रहा हूँ।"

"नहीं नहीं, कार्यकारिणी की बैठक में भी आप यही करने की कोशिश कर रहे थे। मैं किसी के इशारों पर नहीं नाचूँगी।"

मौर्यजी कह रहे थे : "मैं तो केवल यह कह रहा हूँ...।"

इंदिरा गांधी ने 'नहीं, नहीं,' कहते हुए उनकी बात बीच में ही काट दी और उठकर चल दीं।

सचमुच यह एक प्रकार का 'पुनरावतरण' था। उनका साम्राज्य सिकुड़कर ढाई राज्यों और आधी पार्टी तक सीमित रह गया था, लेकिन वह फिर "महारानी" बन बैठी थीं।

5

संजय का राजनीतिक पुनर्जन्म

संजय गांधी उस घर से भलीभाँति परिचित थे। उन सुनहरे दिनों में जब केवल सिर हिला देने मात्र से उनकी प्रत्येक इच्छा पूरी हो सकती थी, वह वहाँ बहुधा आया करते थे। मकान यों तो उनके एक व्यापारी मित्र का था, लेकिन एक तरह से उनका अपना ही था। वह उसके कोने-कोने से भली भाँति परिचित थे। पर उस दिन बड़े कमरे की सूरत बिलकुल बदली हुई थी। न सोफ़े थे, न दीवान और न सजावट का कोई सामान। उनके स्थान पर किसी धार्मिक अनुष्ठान का साज़-सामान था—धूप, दीप, चंदन की लकड़ी और कमरे के बीचोंबीच जहाँ मेज़ पड़ी रहती थी, हवनकुंड बना हुआ था, जिसके चारों ओर बैठे पंडित मंत्रोच्चार कर रहे थे। यज्ञ हो रहा था।

यह सारा तामझाम एक महत्वपूर्ण मुलाक़ात की आड़ के लिए था, जहाँ संजय गांधी को आना था। श्रीमती गांधी के पतन को एक ही सप्ताह बीता था। अचानक परिस्थितियाँ बदल जाने के कारण माँ-बेटे दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ थे। संजय अपने जीवन में इतना निराश कभी नहीं हुआ था। उसके कई सबसे गहरे मित्र उसका साथ छोड़ गये थे। कुलदीप नारंग अमरीका भाग गये थे। वह बहुत-सी हरकतों में उसके साथी रह चुके थे और आपात-काल में अमरीका के गुप्तचर विभाग के साथ संबंधों का एक माध्यम थे। दून स्कूल का उसका सहपाठी कमलनाथ, जो अपने गुंडों को लेकर उसकी सहायता के लिए अमेठी पहुँचा था, देश से बाहर चला गया था। संजय को डर था कि पता नहीं जनता सरकार उसके साथ क्या सलूक़ करेगी ? जेल की अँधेरी कोठरी में दिन बिताने की कल्पना-मात्र से वह काँप उठता था और यह संभावना स्पष्ट दिखायी दे रही थी। ऐसा समय था कि वह क्षीण-से-क्षीण आशा का भी सहारा लेने को तैयार था, जैसे डूबता हुआ आदमी तिनके को पकड़ लेता है।

उसके एक व्यापारी-मित्र ने सुझाव दिया था कि वह कांति देसाई से मिल ले तो क्या हर्ज है। भारतीय राजनीति का वह नया "संजय" था। जनता पार्टी में

उससे अधिक उपयोगी मित्र और कोई नहीं हो सकता था। इन लोगों का विचार था कि कांति की लोलुपता को देखते हुए संभवत: वही संजय की दुर्दशा को भली-भाँति समझ सकता था। इस बात का महत्व न केवल संजय के लिए था, बल्कि उसके मित्र के लिए भी था। सभी जानते थे कि उसने आपात-काल में किस तरह दोनों हाथों से माल बटोरा था। इसी कारण इस यज्ञ पर कांति देसाई को "मुख्य अतिथि" के रूप में आमंत्रित किया गया था। यह योजना कोई अधिक चतुराईपूर्ण नहीं थी। जिस टट्टी की आड़ में शिकार खेलने की चेष्टा की जा रही थी, वह स्पष्ट रूप से दिखायी दे रही थी। लेकिन ऐसी स्थिति बनाना आवश्यक था जिसमें यह न लगे कि संजय और कांति की भेंट किसी योजना के अनुसार करायी जा रही हो।

संजय लजा रहा था और घबरा भी रहा था, पर उसकी ओर से बात करने के लिए उसका व्यापारी-मित्र जो मौजूद था। कांति स्वयं उसी थैली का चट्टा-बट्टा था और उस तक पहुँच पाना विशेष रूप से किसी व्यापारी के लिए कठिन नहीं था। उन दोनों के लिए एक-दूसरे से खुलने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि दोनों एक ही मिट्टी के बने थे और दोनों के पीछे एक ही प्रकारकी प्रेरणाएँ काम कर रही थीं। और फिर वह कांति से अधिक-कुछ तो माँग नहीं रहे थे। उनका उद्देश्य सिर्फ़ यह था कि कांति अपने पिता को संजय के प्रति नर्म रवैया अपनाने पर तैयार कर ले, जिसे अब चारों ओर शत्रु-ही-शत्रु दिखायी दे रहे थे। सभी जानते थे कि अपने पिता पर कांति का कितना प्रभाव है। संभवत: उतना ही प्रभाव संजय का अपनी माँ पर था। वह कठोर और अनम्य व्यक्ति अपने पुत्र की मीठी-मीठी बातों में ही आ सकता था। मोरारजी यदि बर्फ़ से ढँका हुआ ग्लेशियर थे तो कांति सूर्य की किरण, जिसकी गर्मी से उसे पिघलाया जा सकता था। कांति इस बात के विरुद्ध नहीं था, पर...। यह बात तो समझ में भी आ सकती थी। प्रत्येक व्यक्ति की एक अपनी क़ीमत होती है। कहा जाता है कि जून 1977 में विधानसभा चुनावों में कांति देसाई ने 80 लाख रुपये की जो राशि दी थी, वह "संजय को बचाने के लिए किये गये इस सौदे" का परिणाम थी।

अपने पिता को कठोरता न बरतने पर राज़ी करना एक बात थी और संजय को उसके कष्टों से छुटकारा दिलाना दूसरी। उसके विरुद्ध स्थान-स्थान पर मुक़दमे दायर किये जा रहे थे। सबसे अधिक कष्टप्रद तो 'किस्सा कुर्सी का' वाला मामला था जिससे संजय बहुत डरता था। उसे पता था कि इस मामले पर घोर क़ानूनी संघर्ष चलेगा। जून 1977 में वह अपनी पत्नी मेनका सहित विमान द्वारा बंबई पहुँचा तो बहुत-से लोगों को यह संदेह हुआ कि ये लोग देश छोड़कर भाग रहे हैं पर इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया के तत्कालीन संपादक खुशवंतसिंह का कहना था कि ये केवल अफ़वाहें थीं। बंबई में उनके प्रवास के दिनों में खुशवंतसिंह ने उनके साथ अपनी मित्रता निभायी। खुशवंतसिंह का कहना था कि संजय का बंबई आने का मुख्य उद्देश्य प्रसिद्ध वकील नानी पालकीवाला से मिलकर यह पता लगाना था कि वह उसका मुक़दमा लड़ने के लिए तैयार है या नहीं ? संजय को मालूम था कि पालकीवाला को मनाना आसान नहीं होगा, क्योंकि उस व्यक्ति ने उस समय श्रीमती गांधी का मुक़दमा लड़ने से इंकार कर दिया था जब वह अपनी सत्ता के चरमोत्कर्ष पर थीं। उनका विचार था कि खुशवंतसिंह, जो नानी पालकी-वाला के पुराने मित्र थे, संभवत: उन्हें संजय का मामला लेने के लिए तैयार कर सकें। खुशवंतसिंह संजय और मेनका को लेकर पालकीवाला के पास गये, जो

बड़े सौजन्य से पेश आये। उसी वक़्त खुशवंतसिंह ने बात चलायी। खुशवंतसिंह ने स्वयं बैरिस्टरी पास की थी और उन्होंने संजय की तरफ़ से सफ़ाई पेश करने की कोशिश की, क्योंकि उन्हें आशा थी कि संभवतः पालकीवाला उसका मुक़दमा लेने के लिए तैयार हो जायें, पर पालकीवाला नहीं माने। उन्होंने खुशवंतसिंह से बड़ी दृढ़ता से, पर नम्रता के साथ कहा, "मुझसे ऐसा करने के लिए मत कहिये।" वह अहंकारी युवक उनके इस इंकार पर आपे से बाहर हो गया होगा। लेकिन कुछ किया ही नहीं जा सकता था। हर व्यक्ति खुशवंतसिंह-जैसा तो नहीं हो सकता।

मेनका गांधी पत्रकार के नाते जयप्रकाश बाबू से मिलने गयी थीं। कहने को तो उनका उद्देश्य अपनी पत्रिका सूर्य के लिए जयप्रकाश बाबू से भेंट करना था, पर जिस प्रकार के प्रश्न उन्होंने उनसे पूछे और जिस तरह पूछे उससे स्पष्ट था कि मेनका गांधी का वास्तविक उद्देश्य क्या था। ऐसी बात नहीं कि यह प्रश्न पूछना किसी प्रकार अनुचित कहा जा सकता है कि श्रीमती गांधी की क्या ग़लती थी और उन्होंने कौन-सा ऐसा काम किया था जो उन्हें नहीं करना चाहिए था। यह तो संयोग की बात है कि वह श्रीमती गांधी की पुत्रवधू हैं और पत्रकार हैं, पर इस बात में कोई संदेह नहीं था कि यह "पत्रकार" गांधी-परिवार के लिए जयप्रकाश बाबू की सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थी। जयप्रकाश बाबू बीमार थे और इस बात से दुःखी थे कि मेनका गांधी के प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर दें जिनमें न तो कोई पूर्वाग्रह झलके और न उनकी "संपूर्ण क्रांति" का विरोध। मेनका गांधी ने प्रश्न पूछा कि आपको इसके बारे में क्या कहना है कि श्रीमती गांधी के परिवार को बराबर परेशान किया जा रहा है, उसकी चिट्ठियाँ सेंसर की जा रही हैं, टेलीफ़ोन सुने जा रहे हैं और बराबर उनके लोगों का पीछा किया जा रहा है? ...प्रश्न का मंशा स्पष्ट था—वह यह पूछना चाहती थीं कि वे कैसे लोग हैं जिन्हें जयप्रकाश बाबू ने गद्दी पर ला बिठाया है और वह उन कामों के लिए सरकार को कैसे क्षमा कर सकते हैं जिनके कारण आपात-काल की सरकार बदनाम हुई थी? जयप्रकाश बाबू ने कहा था : "यह तो आपात-काल का ही दुष्परिणाम है" (सूर्य, अगस्त, 1977)। जे०पी० का कहना था कि ऐसे काम आपत्तिजनक हैं, पर जनता सरकार तो केवल उस प्रवृत्ति का शिकार हो रही थी जिसका सूत्रपात पहले ही हो चुका था। जब मेनका ने श्रीमती गांधी के भविष्य के बारे में पूछा तो जे० पी० ने उत्तर दिया कि जो कुछ हुआ था उसके लिए उन्हें खेद तो कम-से-कम प्रकट करना ही चाहिए था। इसमें संदेह नहीं कि ज़िम्मेदारी स्वीकार करना बड़ी बहादुरी का काम है, पर सार्वजनिक रूप से खेद प्रकट करना और यह स्वीकार कर लेना कि जो कुछ किया गया उससे देश को भारी हानि पहुँची है, बिलकुल दूसरी बात है। ज़रूरत इसी प्रकार के स्वार्थरहित और अहं को मिटाने वाले रवैये की थी, लेकिन श्रीमती गांधी ने जो दुस्साहस दिखाया था, उससे जे० पी० को ऐसा लगा कि श्रीमती गांधी का लोकतंत्र से विश्वास उठ गया है। मेनका ने बड़े भोलेपन से जान-बूझकर यह प्रश्न किया कि श्रीमती गांधी को पुनः राजनीति में आने के लिए क्या करना चाहिए? जे०पी० ने वही घिसा-पिटा उपदेश दिया : "वह जैसे भी हो सके, जनता की सेवा करें...जैसे भी हो, राजनीतिक नेता के रूप में कार्य करें...।" इतने दिन वह 'जैसे भी हो सके' जनता की सेवा नहीं कर रही थीं तो और क्या कर रही थीं?

जे० पी० में अब भी दम था। निश्चय ही जो व्यक्ति सारे देश को इतने नाट-

कीय ढँग से इंदिरा गांधी के विरुद्ध भड़का सकता था, वह उन्हें अपने कुकर्मों के लिए दंडित होने से बचा भी सकता था। उनके ऊँचे आदर्शों की अग्निपरीक्षा थी। सारा मामला एक हास्य-नाटिका के समान राजनीतिक मंच पर खेला जा रहा था। हर कोई बार-बार एक ही बात कहता था, क्योंकि कर कोई कुछ नहीं सकता था। एक ही प्रकार के स्वार्थों और भावावेशों से प्रेरित मानव शत्रुओं के समान एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे।

अपनी असुरक्षा की भावना के कारण श्रीमती गांधी ने तांत्रिकों का सहारा लिया। मानवीय तर्क तो असफल हो गया था। यदि आपके नक्षत्र ही बुरे हों तो कुछ हो नहीं सकता, पर तांत्रिकों का कहना है कि नक्षत्रों के दुष्प्रभाव को भी दूर किया जा सकता है। नक्षत्र चाहे न बदले जा सकें, उनकी वक्रदृष्टि को हटाया जा सकता है। इस काम में बहुत अधिक पैसा लगने की संभावना थी, लेकिन पापों का घड़ा ही कौन-सा छोटा था। काम आसान नहीं था। यज्ञ में पैसा तो लगेगा, पर उसके लाभ निश्चित रूप से होंगे। एक तो पुराने पापों का प्रभाव धुल जायेगा और दूसरे संजय फिर सर्वोपरि होगा। तांत्रिकों का कहना था कि 1984 तक वह उप-प्रधानमंत्री होगा—ये बातें सुनकर जॉर्ज आरवेल की पुस्तक "1984" की याद आती थी। तांत्रिक कहते थे कि यदि श्रीमती गांधी उनका बताया हुआ अनुष्ठान कर लें तो काम सिद्ध हो जायेगा। तांत्रिक संजय की ओर से देवी-देवताओं को खरीदने के लिए तैयार थे। मेनका ने अपना काम कर दिया था और अब वह फल की प्रतीक्षा में थी।

संजय की माँ अपने पुत्र के बारे में परस्पर-विरोधी वक्तव्य देती जा रही थीं। पुत्र में उनका सारा भय और सारा दंभ तो मौजूद था, पर माँ वाला करिश्मा नहीं था। संभवतः, श्रीमती गांधी को इस बात का पता था और इसीलिए वह कहती थीं कि उनके पुत्र में नेताओं जैसे गुण हैं, लेकिन साथ ही यह भी कह देती थीं कि राजनीति उसका क्षेत्र नहीं है। एक अमरीकी लेखिका मेरी सी० कैरास के साथ इंटरव्यू के दौरान (इंदिरा गांधी : इन द क्रुसिबल ऑफ़ लीडरशिप) माँ ने अपने लाडले बेटे के बारे में अपना हृदय खोलकर रख दिया :

श्रीमती गांधी : संजय-विरोधी भावना का कार की परियोजना के साथ कोई संबंध नहीं था। मैं समझती हूँ कि इसका कारण यह था कि उसमें नेताओं जैसे गुण थे।

कैरास : आप समझती हैं कि उसने सचमुच नेताओं जैसे गुणों का परिचय दिया ?

श्रीमती गांधी : निश्चय ही—युवा कांग्रेस का संगठन करने में उसने नेताओं जैसे गुणों का परिचय दिया। इसमें कोई संदेह नहीं है। उसमें चरित्र और अनुशासन है और समस्याओं को समझने की क्षमता भी। वह साहित्यिक स्वभाव का नहीं है। उसने युवकों में उत्साह भर दिया। उन्हें रचनात्मक ढंग से सोचने और लगन से काम करने के लिए प्रेरित किया। थोड़े ही समय में उसने युवा कांग्रेस बनाकर खड़ी कर दी जो बड़ी सुसंगठित थी।

कैरास : पर इस काम में उन्होंने अपने बहुत-से विरोधी भी तो बना लिये ?

श्रीमती गांधी : ऐसी बात नहीं, यह केवल प्रचार था। उसने जो-कुछ किया, निष्कपट भाव से किया। वह कांति देसाई के समान बिना कुछ किये पैसा बना सकता था, पर जो लोग संजय से मिले हैं—उन वकीलों को ही लीजिये जो उसके मुक़दमे लड़ रहे हैं—उनका उसके बारे में बहुत अच्छा विचार है। और फिर एक बात तो निश्चित है कि यदि उसमें चरित्र का अभाव होता तो वह इतनी गरिमा से इन परिस्थितियों का सामना नहीं कर सकता था।...गड़बड़ यह हुई कि उसके बारे में प्रचार बहुत हुआ। उसको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देश के सामने पेश करना बुरी बात थी। मुझे और उसको इससे बड़ी उलझन होती थी। कुछ समय तक तो मुझे पता ही नहीं चला। मैं कभी रेडियो सुनती नहीं और न दूरदर्शन देखती हूँ। उसने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया और पूछने लगा कि क्या ऐसा करना आवश्यक है? फिर मैंने सूचना तथा प्रसारण विभाग के लोगों से बात की। उनका कहना था कि यह प्रचार तुरंत बंद नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा किया गया तो लोग कहेंगे कि विरोधी-पक्ष ने ऐसा कराया है।

कैरास : आपके विचार से भविष्य में क्या उसकी राजनीतिक भूमिका रहेगी?

श्रीमती गांधी : उसे राजनीति में रुचि नहीं है...सच तो यह है कि उसकी जो कटु आलोचना की गयी, उसी के कारण उसे राजनीति में आने पर विवश होना पड़ा। वह संसद के लिए चुनाव लड़ना चाहता था, क्योंकि वह यह महसूस करता था कि केवल वही झूठे आरोपों का उत्तर दे सकता है।

कैरास : पर क्या आपका विचार है कि उसमें नेताओं जैसे गुण हैं? इसलिए आप उसके लिए किसी भूमिका की कल्पना कर रही होंगी।

श्रीमती गांधी : यह आवश्यक नहीं कि वह राजनीति में ही रहे, नेताओं जैसे गुणों से मेरा तात्पर्य यह है कि उसमें संगठन करने की योग्यता है।

लेकिन श्रीमती गांधी ने अपने स्वभाव के अनुसार कहीं और कह दिया : "मेरे पुत्र संजय ने न तो राजनीति छोड़ी है और न छोड़ेगा।" इसमें संदेह नहीं कि संजय बड़ा अच्छा संगठनकर्ता है, पर बिगड़े हुए उन छोकरों के समान जो पैसे और प्रभाव की आड़ में चोरी-छिपे सौदे पटाने में सफल हो जाते हैं। सबसे पहले जवाहरलाल नेहरू ने ऐसे युवकों को "बिगड़े हुए छोकरों" की संज्ञा दी थी। ऊपरी वर्ग के इन युवकों का शौक़ कार और स्कूटर चुराना मात्र था। ये लोग संभ्रांत समाज के शरीर पर फोड़ों के समान थे, क्लबों में रात-रात-भर नाचते थे और उन्हें मन बहलाने के लिए सभी साधन प्राप्त हो जाते थे। संजय इसी प्रकार की समृद्धि के वातावरण में पला था। उसके आसपास उस जैसे ही निर्बुद्धि लोगों का झुंड था जो अपने मालिक की हर पसंद और सनक से भली भाँति परिचित थे। लाभ की आशा से ये लोग देश-भर में छोटे-छोटे समूहों में संगठित हो गये। एक

सोपानतंत्र-सा बन गया जिसमें संजय शिखर पर बैठा था। ऊपर से नीचे तक आदेश आते थे और नीचे वाले अपने मालिक को प्रसन्न करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे, क्योंकि साधनों का जितना ही अधिक अभाव हो, उतनी ही उत्कट इच्छा उन्हें प्राप्त करने की होती है। एक बार बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा था कि मानव अन्य मानवों के साथ रहना पसंद करता है तो केवल अपने स्वार्थ के कारण। संजय गांधी से ये सब चीजें छीन लीजिये—उदाहरण के लिए, यदि उसकी ऊँचे वर्ग की पृष्ठभूमि न हो—तो देखिये कि कैसे यह सारा ढाँचा ढह जाता है। यदि ऐसा दिन आ जाये तो श्रीमती गांधी समझ जायेंगी कि युवकों की सभाएँ कैसे जुटायी जाती थीं कि बाहर से देखने में लगता था कि उनमें अपना बहुत दम है।

संजय और उसकी माँ एक ही रेकार्ड के दो पहलू हैं—गाने अलग-अलग हैं, लेकिन उनके विषय और आवाजें एक ही हैं। संजय के प्रति उनका रुग्ण स्नेह भय और अपराध की भावना पर आधारित है। इंदिरा के पिता उनकी माँ के लिए समय नहीं निकल पाते थे और फ़ीरोज़ के साथ इंदिरा का संबंध भी सामान्य नहीं था। यदि नेहरू ने अपनी बेटी को एक दिन प्रधानमंत्री का पद संभालने के लिए तैयार किया था तो यह बात स्वाभाविक ही थी कि वह भी स्वयं अपने कुल को सत्तारूढ़ बनाये रखे। असुरक्षा की भावना माँ और बेटे के बीच सबसे सुदृढ़ कड़ी थी और इसी कारण उसको बचाने के लिए श्रीमती गांधी जो कुछ कहती थीं, वह प्रलाप की सीमा तक पहुँच जाता था। माँ-बेटे में से कोई भी अपने को चाटुकारों की परिधि के बाहर नहीं देख पाता था। दोनों को एक-जैसे कारणों से तलुवे चाटने वालों की घोर आवश्यकता थी। वह इस बात की कल्पना करके ही काँप उठती थीं कि कहीं संजय भी उनके प्रति अनास्था का परिचय न दे। बुद्धप्रिय मौर्य ने मुझे बताया, "मैं समझता हूँ कि संजय भी अपनी माँ के प्रति निष्ठा नहीं रखता। वह किसी पर भी विश्वास नहीं करतीं।" इंदिरा गांधी के आसपास मँडराने वालों को भली भाँति मालूम था कि माँ के मानसिक दृष्टि से जीवित रहने के लिए उन लोगों का संजय की प्रशंसा करना कितना अनिवार्य था। सिद्धार्थशंकर रे हों, या ब्रह्मानंद रेड्डी, या देवकांत बरुआ—इन सभी ने अपनी चाटुकारिता से इंदिरा गांधी के भ्रमों को बनाये रखा था। इस कारण श्रीमती गांधी को विश्वास हो गया था कि संजय का उतना दोष नहीं जितना उसे बदनाम करने वालों का है। इसलिए ये सभी लोग इंदिरा गांधी को प्रसन्नचित्त रखते थे, कुछ तो इसलिए कि वे कुछ अपराधों में उसके भागीदार थे, जैसे बंसीलाल और विद्याचरण शुक्ल, और कुछ वसंत साठे जैसे थे जो इंदिरा के आकर्षण से इतने प्रभावित थे कि उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि उनकी अपनी सफलता की कसौटी यही है। मौर्य का कहना है: "साठे बड़ा चालाक आदमी है। वह भी मेरे जैसा ही है। उसका विचार है कि इंदिराजी बहुत लोकप्रिय हैं और वह उनसे लाभ उठा सकता है। पर वह भूल कर रहा है। लाभ इंदिराजी उठायेंगी, साठे नहीं। साठे भी वैसे ही भ्रम में है जैसे कि मैं था।" इंदिराजी के समर्थक समझते थे कि वह उनका नेतृत्व करती रहें और वे उनके भ्रम बनाये रखने में सहायक हों, क्योंकि इंदिराजी की शक्ति उनमें है और इंदिराजी की शक्ति बनी रहे तभी उनके समर्थकों के लिए कोई आशा हो सकती थी। यह तो नौटंकी-जैसी बातें थीं। सब एक-दूसरे को धोखा देने की चेष्टा में थे। सारे पात्र एक समान थे। और विरोधी भी समर्थकों जैसे ही थे। श्रीमती गांधी के विचार में देश को उनसे जो आशा थी वही आशा उन्हें इन लोगों की आँखों में दिखायी देती थी। और अब उनकी निंदा या भर्त्सना भी नहीं

की जा सकती थी, बल्कि यह देखकर तरस आता था कि जिस व्यक्ति ने भी आगे बढ़ने में उनकी सहायता की, उसी पर उन्होंने संदेह किया। जिन लोगों ने उनके भ्रमों को बनाये रखा, उन्होंने ही उस विश्वास को समाप्त कर दिया जो श्रीमती गांधी को उन पर था। इन्हीं विरोधाभासों से पता चलता था कि वह किस सीढ़ी पर चढ़कर गौरव प्राप्त करने की चेष्टा में हैं। परंतु अब उस सीढ़ी पर पैर टिकाने लिए के डंडे नहीं थे। वह ऊपर जाते-जाते उनमें से प्रत्येक को ठोकर मारकर गिरा चुकी थीं।

इंदिरा गांधी ने अपने राज्य के एक चुनाव-क्षेत्र आज़मगढ़ में सफल चुनाव-अभियान किया था। यह उनकी पहली सफलता थी, पर जब वह 5 मई, 1978 को दिल्ली के हवाई अड्डे पर विमान से उतरीं तो उन्हें संजय की गिरफ़्तारी का समाचार मिला। वह जेल पहुँच चुका था। सर्वोच्च न्यायालय को विश्वास हो गया था कि उसने ज़मानत पर बाहर रहकर सरकारी गवाहों को सच बोलने से रोकने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग किया है और इसलिए अब उसे जेल से बाहर रहने का कोई अधिकार नहीं है। संजय ने अतिरिक्त सेशन जज के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था और उसे एक महीने के लिए जेल भेज दिया गया था। श्रीमती गांधी उससे मिलने गयीं तो पचास मिनट तक उसके पास रहीं। उन्होंने उससे कहा : "चिंता न करो, मेरे बेटे ! यह तुम्हारा राजनीतिक पुनर्जन्म है।" उसका मनोबल बढ़ाने के लिए श्रीमती गांधी अपने राजनीतिक समर्थकों और कैलीफ़ोर्निया के एक अमरीकी वकील को अपने साथ ले गयी थीं। एक मसख़रे ने इस पर यह कहा कि "वह शायद निक्सन का वकील" रहा होगा।

यद्यपि श्रीमती गांधी ऊपर से बड़ी साहसी बन रही थीं, पर अपने बेटे की गिरफ़्तारी से उन्हें बड़ा धक्का लगा। आज़मगढ़ में कांग्रेसी उम्मीदवार की विजय से उनमें नये विश्वास का संचार हुआ था, पर उसके साथ-ही-साथ यह अफ़वाह भी फैलने लगी थी कि श्रीमती गांधी को फिर गिरफ़्तार कर लिया जायेगा। श्रीमती गांधी ने नये उत्साह से "राष्ट्रीय उद्देश्य" की पूर्ति के माध्यम के रूप में अपने दल का संगठन करने की चेष्टा की। वह राष्ट्रीय उद्देश्य यह था कि माँ और बेटे के लिए, जिनकी गद्दी छिन गयी थी, देशव्यापी आंदोलन प्रारम्भ किया जाये। उन्होंने ओसलो की एक पत्रकार बारबरा बोर्न से कहा कि मुझे "भारत पर राज्य करने के लिए चुना गया है" और चुनाव में मेरी हार एक "दुस्वप्न" मात्र है जो शीघ्र ही टूट जायेगा (सूर्य, जुलाई 1979)। आने वाले वास्तविक संघर्ष की कल्पना करके श्रीमतों गांधी ने पहले से तैयारी कर ली और अपने दल को आदेश दिया कि यदि उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जाये तो बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन किया जाये। आशा की एक नयी किरण उन्हें जनता पार्टी के आंतरिक झगड़े से प्राप्त हुई। गृहमंत्री चरणसिंह अस्पताल में बीमार पड़े थे और वहाँ मोरारजी देसाई के साथ अपने बढ़ते हुए मतभेदों पर गहन विचार कर रहे थे। स्वास्थ्य-लाभ का इससे अच्छा ढंग और क्या हो सकता था ? पहले भी ऐसा हुआ था। जब भी किसी राजनीतिक संकट के कारण वह अपदस्थ हुए थे, बीमार पड़ गये थे और रोग-शैया पर लेटे-लेटे यह सोचा करते थे कि आगे क्या करना चाहिए ? अब अस्पताल मे उन्होंने जनता पार्टी के अपने साथियों पर एक नया तीर छोड़ा। उनका कहना था कि वे लोग उन राज्यों में विरोध को प्रोत्साहन दे रहे हैं जहाँ उनके अपने अनुयायी सत्तारूढ़ हैं और इस प्रकार दल को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं।

इस बूढ़े चौधरी के गुस्से को देखकर श्रीमती गांधी के मन में आशा का अंकुर फूट निकला था और उन्होंने तुरंत अपना एक दूत चौधरी साहब से मिलने के लिए अस्पताल भेजा। श्रीमती गांधी के अपने अख़बार नेशनल हेरॅल्ड में अगले दिन उनके दूत भीष्मनारायणसिंह और चौधरी चरणसिंह की बातचीत का ब्यौरा प्रकाशित हुआ जो बड़े आश्चर्य की बात थी। गृहमंत्री भिन्नाए हुए थे, लेकिन जब भीष्मनारायण गांधी की सद्भावनाओं और फूलों के गुलदस्ते से लैस होकर पहुँचे तो चौधरी साहब खिल उठे। भीष्मनारायण सिंह ने चौधरी साहब से कहा कि इंदिरा गांधी स्वयं केवल इसलिए नहीं आयीं कि लोग इसके नाना प्रकार के अर्थ लगाते। चौधरी साहब भाव-विभोर होकर बोले : "वह मेरी बेटी है, जब उसका जी चाहे चली आये।" पर यह सोचकर कि कहीं वह इन शब्दों को बिलकुल सच न मान बैठें, उन्होंने यह भी कह दिया : "इन राजनीतिक बातों से कोई अंतर नहीं पड़ता।"

जिन लोगों को याद है कि जनता सरकार बनने के कुछ ही समय बाद श्रीमती गांधी चौधरी चरणसिंह से मिलने गयी थीं और उन्होंने किस प्रकार तिरस्कार किया था, वे जानते थे कि वातावरण कितना बदल गया है। उस समय जब श्रीमती गांधी गृहमंत्री से मिलकर लौटी थीं तो क्रोध में भरी हुई थीं। उन्होंने आकर मौर्य से कहा था : "मौर्य जी ! यह चौधरी कैसा आदमी है ?" मौर्य ने पूछा कि क्या हुआ ? तो श्रीमती गांधी बोलीं कि मेरा दोष केवल इतना था कि मैंने चरणसिंह से यह प्रार्थना की थी कि मुझे और संजय को सताया न जाये। "मैंने उनसे कहा था कि मेरे और संजय के विरुद्ध जाँच-आयोग न बिठायें। मैंने यह भी कहा कि हमें मतदाताओं ने पहले ही काफ़ी दंड दे दिया है, पर उन्होंने मेरी बात सुनी तक नहीं। वह इतने अहंकार में थे।"

जनता सरकार के आंतरिक झगड़ों को बढ़ते देखकर सरकार की विश्वसनीयता तेज़ी से घट रही थी। इस कारण श्रीमती गांधी को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने 9 अगस्त को बड़े पैमाने पर 'भारत बचाओ दिवस' मनाने का निर्णय किया। पर बात बन नहीं पायी, क्योंकि कुछ तो जनता में उत्साह की कमी थी और कुछ उस दिन भारी वर्षा होने लगी। दिल्ली के एक संपादक ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा : "राजधानी में और अन्य स्थानों पर जो लोग आये, उनकी संख्या सीमित ही थी और ऐसा लगता था कि बहुत-से लोग इंदिरा गांधी की इस बात से सहमत नहीं थे कि देश को बचाने की इतनी अधिक आवश्यकता है, विशेष रूप से ऐसे समय में जब भारी वर्षा हो रही हो।" जिस अभियान को विशाल विरोध-प्रदर्शन बनाने की चेष्टा की जा रही थी, वह सर्वथा निष्फल रहा। अरुण शौरी ने लिखा : "भारत को बचाने का दृढ़ संकल्प इतना अधिक था कि इन लोगों ने अपनी प्यारी मातृभूमि को बचाने का संकल्प कुछ घंटे की वर्षा के कारण किसी और दिन के लिए स्थगित कर दिया।"

वास्तव में यह सारा अभियान स्पष्ट रूप से 'इंदिरा बचाओ' अभियान था। इसकी एकमात्र उपलब्धि यह थी कि संजय-सेना के सदस्यों ने शपथ-पत्रों पर हस्ताक्षर करके उनके ढेर लगा दिये। शपथ-पत्रों में कहा गया था : "मैं...अमुक स्थान का निवासी, यह विश्वास करता हूँ कि शाह आयोग की नियुक्ति राजनीतिक कारणों से हुई है और जनता सरकार हमारी नेता और अध्यक्षा श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध जो भी कार्रवाई करेगी, उसकी घोर निंदा अहिंसक रूप से की जायेगी, जैसा कि महात्मा गांधी ने हमें सिखाया है। मैं सच्चे मन से यह शपथ

लेता हूँ कि मैं अपनी प्रिय नेता श्रीमती इंदिरा गांधी के समर्थन का प्रमाण देने के लिए गिरफ़्तार होने के लिए तैयार हूँ।" पर कुछ लोगों ने उस दिन भिन्न प्रकार से आचरण किया। भारी वर्षा में दर्जनों लोग श्रीमती गांधी के निवास-स्थान पर पहुँचे और उन्होंने नारे लगाये : "भारत को इंदिरा से बचाओ।" उन्होंने जो पर्चे बाँटे उनमें इंदिरा गांधी को "राजनीतिक अपराधी" और "जाली समाजवादी" की संज्ञाएँ दी गयी थीं। पर्चे बाँटने वालों ने संजय के गुंडों के हाथों मार भी खायी।

संजय तो अन्ततोगत्वा वही कुछ कर रहा था जो उसने तांत्रिक को बताया था कि वह करेगा। धीरेंद्र ब्रह्मचारी और आर० के० धवन तांत्रिक को अंदर नहीं आने दे रहे थे, पर उसे मेनका ने बुलाया था और यह संजय जानना चाहता था कि देवी-देवता क्या कहते हैं ? वह यह जानना चाहता था कि उसकी योजनाएँ सफल होंगी या नहीं ? पर तांत्रिक भी बड़ा चालाक था। उसने पलटकर अपना प्रश्न पूछा : "भविष्य के लिए आपकी योजना है क्या ?" संजय ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया और वह यह था कि वह देश में क़ानून तथा व्यवस्था की समस्या खड़ी कर देगा। उसे विश्वास हो चुका था कि वैभव प्राप्त करने का सबसे छोटा रास्ता यही है। उसे विश्वास था कि परम वैभव उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

मिस्र की एक कूटनीतिक संवाददाता दादायुत अब्दुल नबी ने एक बड़ा प्रशंसा-भरा समाचार छापा। इस महिला ने लिखा कि राजीव गांधी बड़ा "सज्जन" व्यक्ति है। वह इंडियन एयरलाइंस के उस विमान में थी जिसे राजीव गांधी चला रहे थे। उसने राजीव गांधी से बात करने में सफलता प्राप्त कर ली और उसके माध्यम से उसकी माँ से भेंट करने में सफल हो गयी। वह राजीव की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रही थी जैसे कि असंख्य अन्य व्यक्ति भी करते हैं। इन लोगों ने दोनों भाइयों के परस्पर अन्तर को भली-भाँति देखा है—संजय चुप, किसी पर विश्वास न करने वाला और अलोकप्रिय है और राजीव शर्मीला, संवेदनशील और उचित आचरण करने वाला है। इस महिला ने लिखा : "सभी लोग एक बात पर सहमत हैं और वह यह कि यदि श्रीमती गांधी अपने पुत्र को तिलांजलि दे दें तो कोई भी प्रतिद्वंद्वी या शत्रु उनके सामने टिक नहीं पायेगा।" पर जो लोग श्रीमती गांधी को जानते हैं, उन्हें पता है कि इस तरह की बात सोचना कितना भोलापन है कि माँ की असफलता पुत्र की हठधर्मी के कारण है। जब आप कोई ऐसी बात कहते हैं जो इन दोनों को अलग-अलग व्यक्ति प्रमाणित करती है तो इस तर्क का खोखलापन दिखायी दे जाता है।

श्रीमती गांधी के सभी भूतपूर्व सूबेदार—ज़ैलसिंह, जगन्नाथ मिश्र और नारायणदत्त तिवारी—क़िस्सा कुर्सी का वाले मुक़दमे के निर्णय के दिन संजय और विद्याचरण शुक्ल को नैतिक समर्थन प्रदान करने के लिए तीसहज़ारी के न्यायालय में पहुँचे। सेशन जज ने अपने 362 पृष्ठ के फ़ैसले में लिखा था : "तथ्यों को देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि श्री विद्याचरण शुक्ल और श्री संजय गांधी ने मिलकर एक षड्यंत्र रचा था। यह निष्कर्ष भी स्पष्ट है कि आरोपों में जिन अपराधों की चर्चा है, उनके लिए शह भी दी गयी।" अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप "किसी भी तर्कसंगत संदेह के बिना" प्रमाणित हो गये हैं। संजय के गुंडों ने 'हाय-हाय' के नारे लगाये और केंद्रीय गुप्तचर विभाग के श्री एन० के० सिंह को, जिन्होंने इस मामले की जाँच की थी, और अभियोग-पक्ष के विशेष वकील राम जेठमलानी को घेर लिया। थोड़ी-बहुत हाथापाई भी हुई।

अगले दिन संजय और शुक्ल दोनों को दो-दो वर्ष के कठोर कारावास और क्रमानुसार दस हज़ार रुपये और पच्चीस हज़ार रुपये के जुर्माने का दंड दिया गया, पर न्यायाधीश ने 26 मार्च, 1979 तक दंड निलम्बित कर दिया और उन्हें तब तक के लिए ज़मानत पर छोड़ दिया। जब संजय के गुंडों ने फिर शोर मचाना शुरू किया तो न्यायाधीश ने कहा : "मेरा विश्वास है कि किसी को भी भावुक नहीं होना चाहिए, पर इनमें से एक अपराधी मेरे बेटे जैसा है और दूसरा मेरे भाई के समान। मैंने न्यायाधीश के नाते अपने कर्तव्य का पालन किया है।" इस पर संजय ने कठघरे से ही न्यायाधीश को संबोधित करते हुए कहा : "आशा है कि आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें आपको सच्चे मन से आस्था है।" ऐसा लगता था कि यह संजय के समर्थकों को अपनी वीरता दिखाने का संकेत था और उन्होंने पुलिस के अधिकारियों और अभियोग-पक्ष के अधिकारियों को गाली देना शुरू किया। किसी ने गुप्तचर विभाग का एक रजिस्टर और दंड-प्रक्रिया संहिता की एक प्रति न्यायाधीश के मेज़ की ओर फेंकी। उनका नारा था : "जब तक सूरज-चाँद रहेगा, संजय तेरा नाम रहेगा।"

बड़ी रोचक बातें हो रही थीं। अगले दिन जवाहरलाल नेहरू की एक पुरानी प्रशंसक श्रीमती रूथ कावेल ने आस्ट्रेलिया में अपने पीछे यह वसीयत छोड़ी कि मेरी सारी संपत्ति संजय को दे दी जाये। यह महिला बड़ी धर्मपरायण थी और ऐसा लगता है कि उनका विश्वास था कि एक संत और पापी एक ही कुल में नहीं हो सकते। उन्होंने सिडनी के एक उपनगर में समुद्र के किनारे स्थित अपनी एक लाख डॉलर की संपत्ति नेहरू के नाती के नाम कर दी थी।

अब तक इंदिरा-कांग्रेस में यह माँग बड़े ज़ोरों से उठायी जाने लगी थी कि संजय फिर कांग्रेस में आ जाये और उसमें नये जीवन का संचार करे। कांग्रेस कार्यालय ने समाचारपत्रों को एक विज्ञप्ति भेजी जिसमें एक सदस्य की इस उक्ति का उद्धरण दिया गया था कि : "केवल संजय गांधी के नेतृत्व में ही यह संभव है कि कांग्रेस शक्तिशाली संगठन के रूप में उभरे जिससे कि राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के जुझारू तत्वों का सामना किया जा सकता है, जिनके कारण लोक-तंत्र के सारे मापदंड ख़तरे में पड़ गये हैं।"

इसके कुछ ही समय बाद यह समाचार आने लगे कि संजय और राजनारायण एक-दूसरे से मिल रहे हैं। राजनारायण का कहना था कि उनकी भेंटों का कोई राजनीतिक महत्व नहीं है, पर संजय ने अपनी पत्नी की पत्रिका सूर्य के प्रति-निधि से एक भेंट में, जो जुलाई, 1979 के अंक में प्रकाशित हुई, यह कहा कि वह यह नहीं बताना चाहते कि राजनारायण के साथ उनकी क्या बातचीत हुई, क्योंकि इससे उनके नये मित्र को बड़ी उलझन का सामना करना पड़ सकता है।

जब इस अद्भुत मित्रता के "एकसूत्रीय कार्यक्रम" का विकास हो रहा था तो संजय गांधी दिल्ली की सड़कों पर 'अपने चरित्र और गरिमा' का प्रदर्शन कर रहे थे। पहली मई को उन्होंने अपने गुंडों के समूह का नेतृत्व करते हुए जनपथ पर धावा बोल दिया, जहाँ उनकी इस भीड़ और पुलिस के बीच डटकर लड़ाई हुई। पुलिस के उपायुक्त पी० आर० एस० बरार ने यह बताया कि कैसे एक ईंट उनके कान पर आकर लगी। संजय दौड़ते हुए आगे आया और अपने साथियों से बोला : "मारो इसको !" और उन्होंने बरार को पीटना शुरू कर दिया। भीड़ के लिए इतना ही इशारा काफ़ी था। जब पुलिस ने संजय को गिरफ़्तार करने की कोशिश की तो वह (राजनारायण की तरह) बड़ी शान से पालथी मारकर सड़क पर बैठ

गया। लोगों को यह देखकर बड़ा धक्का पहुँचा कि संजय के जलूस में ईंट-पत्थरों और सोडे की बोतलों से भरी हुई एक टेम्पो गाड़ी भी थी। लोकसभा में कई सदस्यों ने संजय गांधी को "गुंडों और आवारागर्दों के नेता" की उपाधि दी, पर श्री सी० एम० स्टीफ़ेंस उनकी भूल-सुधार के लिए उपस्थित थे। उनका कहना था कि जलूस पूर्णतया शांतिपूर्ण और अहिंसक था जैसे कि गांधीजी के जलूस हुआ करते थे। कुछ ही दिनों में सारे शहर की दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपका दिये गये जिनमें यह महान हीरो पुलिस की लाठियों का सामना करता हुआ दिखाया गया था। उसका "राजनीतिक पुनर्जन्म" हो चुका था।

श्रीमती गांधी पवनार आश्रम में विनोबा भावे से मिलने के लिए रवाना होते समय

अक्तूबर 1977 में गिरफ़्तारी से पहले पुलिस वालों से बहस करते हुए

चरणों में झुके हुए भक्तजन

चुनाव-अभियान में समर्थकों का जोश

चिकमगलूर का चुनाव-परिणाम देखते हुए

कर्नाटक भवन में "वापसी" की सूचना देने वाला भोज

6 मई की रैली में भाषण देते हुए

श्रीमती गांधी की यात्रा आरंभ हो रही है
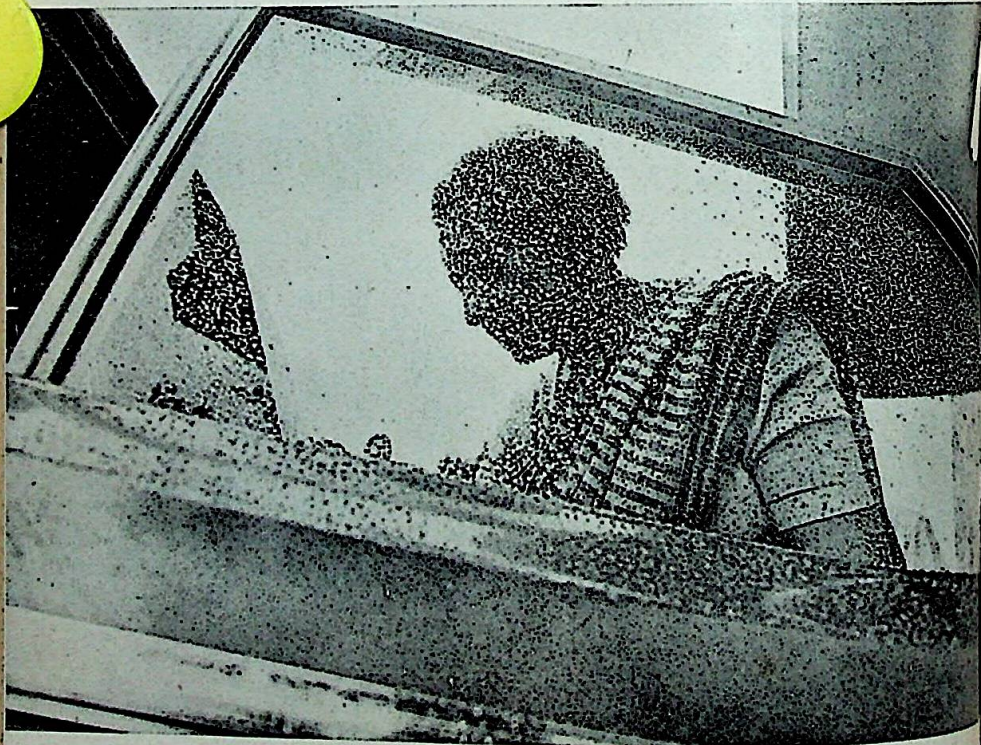
बंसी लाल और नारायण दत्त तिवारी के साथ संजय गांधी

धीरेंद्र ब्रह्मचारी

राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र देने के बाद मोरारजी देसाई राष्ट्रपति भवन से बाहर आ रहे हैं

चरणसिंह और राजनारायण के साथ श्रीमती गांधी

बदलती मुद्राएँ

6
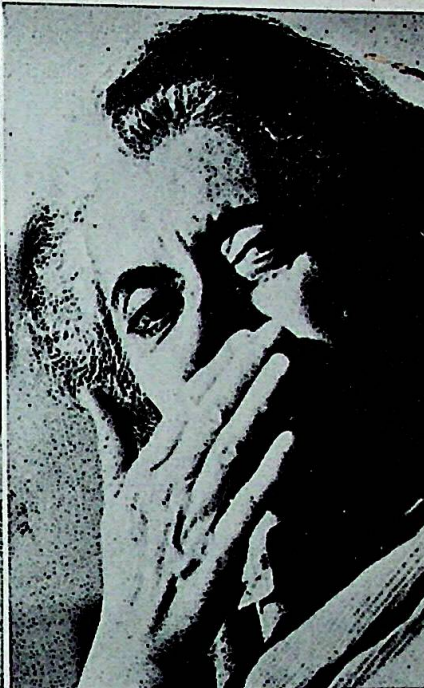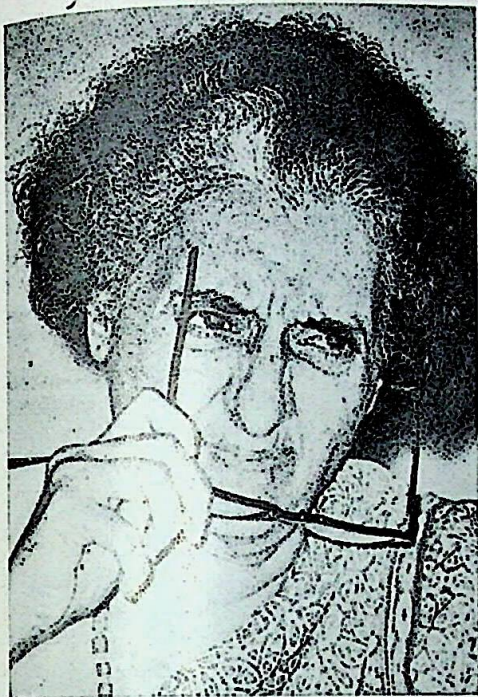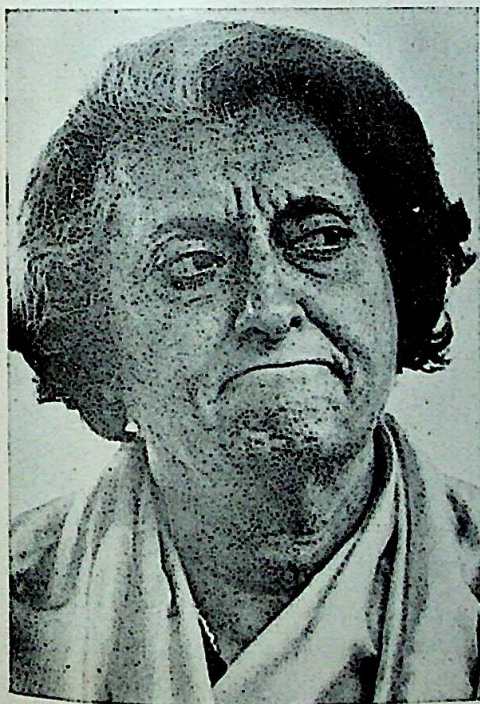
चिकमगलूर से संसद तक

उनका बेटा अभी जेल में ही था। उत्तर प्रदेश से लोकसभा के उप-चुनाव में पहली जीत का सेहरा बाँधकर श्रीमती गांधी छुट्टी मनाने कर्नाटक गयीं। इस राज्य में अभी भी उनका शासन था। उन्होंने इसके लिए बँगलौर से कोई 55 मील उत्तर में एक पहाड़ी स्थल नंदी-हिल्स को चुना। वहाँ उन्होंने देवराज अर्स, चेन्ना रेड्डी, नासिकराव तिरपुडे को बुलाया। यह एक छोटी-मोटी शिखर-वार्ता हो गयी। कहा गया कि वह इन तीन राज्यों में पार्टी के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए मिल रहे हैं। यहीं पर फ़ैसला किया गया कि श्रीमती गांधी को संसद के दोनों सदनों में से किसी एक में निर्वाचित होना चाहिए।

कुछ ही दिन पहले 24 मई को उन्होंने मतदाता पंजीयन दफ़्तर में बँगलोर जिले के डोडाबल्लपुर ताल्लुके में मतदाता के रूप में अपना नाम दर्ज कराने के लिए आवेदन-पत्र दिया था। इस हलफ़नामे में उन्होंने दावा किया था कि वह नंदी पहाड़ियों की तलहटी में स्थित विष्णु आश्रम की "सामान्य निवासी" हैं। यह आश्रम मुख्यमंत्री देवराज अर्स के भूतपूर्व सचिव स्वामी सच्चिदानंद का है। इस दुबले-पतले आदमी में भले और कुछ हो, मगर स्वामी वाली कोई बात नहीं थी। वह पहले बँगलौर के एक समाचारपत्र में काम करते थे, फिर केंद्रीय मंत्री हनुमंतैया के साथ थे। उसके बाद उन्होंने अपने-आपको देवराज अर्स के साथ संबद्ध कर लिया। फिर भी सच्चिदानंद ने एक आश्रम बनाया और इससे वह स्वामी कहे जाने के अधिकारी बन गये। देवराज अर्स ने उनको राज्यसभा का सदस्य बनवा दिया था, और वह श्रीमती गांधी के लिए सहर्ष अपनी जगह ख़ाली करने को तैयार थे। श्रीमती गांधी तो किसी भी तरह संसद में आने को आतुर थीं ही। पहले उन्होंने उत्तर प्रदेश से राज्यसभा में चुने जाने की बात सोची थी। लेकिन यह प्रयास उनके अपने अंतरंग साथियों ने विफल कर दिया। उन्होंने राज्य की मतदाता सूचियों में से किसी तरह उनका नाम ही हटवा दिया था।

लोकसभा में निर्वाचित होने के लिए उनका कर्नाटक का निवासी होना

ज़रूरी नहीं था। लेकिन राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए उन्हें उसी राज्य का मतदाता होना ज़रूरी था जिससे वह निर्वाचित होना चाहतीं। और इसीलिए उन्होंने यह दावा किया कि वह विष्णु आश्रम में रहती हैं। लेकिन एक राजस्व निरीक्षक को मौक़े पर तसदीक़ करने के लिए भेजा गया। वह अधिकारी आश्रम में गया और वहाँ से लौटकर उसने रिपोर्ट दी कि वह श्रीमती गांधी का स्थायी निवास नहीं है। और इस तरह संसद में जाने का यह प्रयास भी विफल हो गया। लेकिन श्रीमती गांधी के समर्थकों ने इस मामले के बारे में बिलकुल ही दूसरा विवरण दिया। वे कहते थे कि उन्होंने श्रीमती गांधी को यह समझाया कि उनकी जैसी राजनीतिक हस्ती को इस तरह राज्यसंभा में जाना शोभा नहीं देता। वह लोकसभा के लिए बहुत आसानी से चुनी जा सकती थीं। उन्होंने उनके लिए एक निरापद सीट—चिकमगलूर—खोज निकाली। चिकमगलूर का शाब्दिक अर्थ है 'छोटी बेटी का गाँव'। यह एक छोटा-सा गाँव है, दिल्ली से 1500 मील दूर एक शांत जगह, जहाँ कॉफ़ी बहुत पैदा होती है। श्रीमती गांधी को इस चुनाव-क्षेत्र के नाम से किसी पुरानी बात की याद आयी। क्या यह वही जगह नहीं थी जहाँ नवंबर, 1977 में उन्हें दंगों के दौरान पुलिस द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली बेंत की बनी ढालों के पीछे शरण लेनी पड़ी थी। यह वही चुनाव-क्षेत्र था। लेकिन गुंडूराव, एफ़० एम० ख़ान, जाफ़र शरीफ़ और उनके अन्य समर्थकों ने श्रीमती गांधी को समझाने की भरपूर कोशिश की कि यह बिलकुल निरापद सीट है। उन्होंने बताया कि 1977 के चुनावों में चंद्र गौड़ा अगर पचास हज़ार वोटों से जीत सकते थे तो वह अब दो लाख वोटों से जीतेंगी। चिकमगलूर चुनाव-क्षेत्र की 42 प्रतिशत जनता कंगाली के स्तर से भी नीचे अपना जीवन बिताती थी। ऐसे ही लोग श्रीमती गांधी को मसीहा मानकर 'इंद्रम्मा इंद्रम्मा' कहकर सर-आँखों पर बिठा सकते थे। श्रीमती गांधी मान गयीं।

देवराज अर्स को मालूम था कि श्रीमती गांधी चुनाव लड़ने के लिए चिकमगलूर को चुनने पर विचार कर रही हैं। लेकिन जैसे ही पहली घोषणा हुई, वह कुछ हैरत में पड़ गये। बेंगलौर में इसकी घोषणा उनके मंत्रिमंडल के एक मंत्री गुंडूराव ने की। यह ऐसी बात थी जिससे अर्स के स्वाभिमान को ठेस पहुँचनी ही थी। अगर कोई श्रीमती गांधी को लोकसभा में पहुँचाने का श्रेय ले सकता था तो वह वही हो सकते थे। लेकिन कर्नाटक में संजय-चौकड़ी के महत्वाकांक्षी और दबंग नेता गुंडूराव के अपने ही सपने थे। वह कर्नाटक में समानांतर शक्ति ही नहीं बनना चाहते थे, बल्कि देवराज अर्स को हटाकर ख़ुद मुख्यमंत्री पद भी हथियाना चाहते थे। उन्होंने श्रीमती गांधी और देवराज अर्स के बीच मनमुटाव पैदा करने के लिए हर तरह की कहानियाँ उनके ख़िलाफ़ जगह-जगह पर पहुँचायीं।

आपात-काल के दौरान भी गुंडूराव ने मुख्यमंत्री से आगे बढ़ जाने की कोशिश की थी। उन्होंने 'भारत के उगते हुए लाल' संजय गांधी को बेंगलौर आने का निमंत्रण दिया था। अर्स इससे क्षुब्ध हुए थे। लेकिन एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते उन्होंने हवा के रुख़ के ख़िलाफ़ जाने की ग़लती नहीं की। इतना ही नहीं, काफ़ी विचार करने के बाद संजय गांधी का स्वागत करने के लिए उन्होंने न केवल ख़ुद जाने को ही उचित समझा, बल्कि उन्होंने यह भी कोशिश की कि उनका स्वागत ज़्यादा-से-ज़्यादा भव्य और उनका कार्यक्रम ज़्यादा-से-ज़्यादा सफल हो। संजय गांधी से कुछ ही मुलाक़ातों के बाद अर्स ने एक पत्रकार-सम्मेलन में इसका बखान किया कि इस नौजवान से वह कितने प्रभावित हैं। उन्होंने तारीफ़ के पुल

बाँधते हुए यहाँ तक कह डाला कि संजय गांधी अपनी माँ से भी ज्यादा चतुर हैं और उन्हें व्यक्तियों और स्थितियों की कहीं ज्यादा गहरी समझ है। वह एक बहुत ही "परिपक्व राजनीतिक नेता" के रूप में उभर सकते हैं। एक चतुर राजनीतिज्ञ के नाते उन्होंने सोचा कि अगर उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को इससे मदद मिले तो थोड़ा मक्खन लगाने में भी कोई हर्ज नहीं है। अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत में वह उमाशंकर दीक्षित और यशपाल कपूर के लिए हवाई जहाज से ताज़ी सब्ज़ियाँ भेजकर ख्याति प्राप्त कर चुके थे—वह अब भी दरबारियों की दरबारदारी कर रहे थे।

लेकिन नौजवान राजकुमार की लल्लो-चप्पो करने में गुंडूराव बाजी मार ले गये। वह उनकी खुलेआम चापलूसी करने में भी नहीं सकुचाते थे। अर्स को अपने पद के कारण थोड़ा संकोच रहता था। संजय गांधी गुंडूराव की श्रद्धा से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अर्स पर उन्हें राज्य-मंत्री से पदोन्नति देकर कैबिनेट मंत्री बना देने के लिए दबाव डाला। बाद में अर्स ने इसका खंडन किया कि संजय गांधी उन पर दबाव डाला करते थे, हालाँकि उन्हें इसका ख़ासा अनुभव था। इसके बाद गुंडूराव संजय गांधी के विश्वासपात्र बन गये। उन्होंने न केवल अर्स की उपेक्षा शुरू कर दी, बल्कि खुलेआम यह जतलाना शुरू कर दिया कि वह अर्स की कितनी कम परवाह करते हैं।

स्वयं अर्स ने एक बार अपने एक मित्र को बताया कि गुंडूराव जान-बूझकर उनका अपमान किया करते हैं। एक बार दोनों दिल्ली के कर्नाटक भवन में ठहरे हुए थे। अर्स ने गुंडूराव के पास संदेश भेजा कि वह उनसे परामर्श करना चाहते हैं। जब गुंडूराव नहीं आये तो उन्होंने फिर संदेशवाहक भेजा। लेकिन वह फिर भी नहीं आये। इस पर अर्स खुद गुंडूराव के कमरे में गये और बहुत हलके-फुलके ढंग से उन्होंने कहा कि आपने मेरे संदेश की उपेक्षा कर दी। इस पर गुंडूराव ने तड़ककर जवाब दिया, "भूलिये नहीं कि मैं आपका नहीं, संजय गांधी का मंत्री हूँ।" अर्स को यह अपमान निगलना पड़ा।

मार्च, 1978 की अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति (इ) की बैठक में अर्स ने कुछ साफ़-साफ़ जो संकेत दिये और संजय के बारे में बार-बार जो कुछ कहा उसके पीछे अवश्य ही उनका वह संचित क्रोध रहा होगा जो संजय के लोगों ने उनके मन में अपने व्यवहार और दबाव से पैदा किया था। कुछ सदस्यों ने संजय गांधी के फिर उभरने की आशंकाएँ व्यक्त की थीं। इसका खंडन करते हुए उन्होंने कहा था कि श्रीमती गांधी के साथ जो बातचीत हुई है उससे यह स्पष्ट है कि संजय अब राजनीति में नहीं है और उसका दल के मामलों से कोई संबंध नहीं है। निश्चय ही श्रीमती गांधी को अर्स का इस मुद्दे को बार-बार दोहराना पसंद नहीं आया होगा। इस बैठक के बाद एक प्रेस-कांफ्रेंस में उन्होंने संजय के लोगों द्वारा मंत्रियों के चयन के बारे में डाले गये दबाव पर अपनी नाराजगी साफ़ तौर से जाहिर की थी। उन्होंने बहुत कड़ाई से टिप्पणी की कि उनके मंत्रिमंडल का गठन बँगलौर में होगा, दिल्ली में नहीं। संवाददाताओं ने श्री अर्स की उस टिप्पणी के कटाक्ष को समझने में भी भूल नहीं की जिसमें उन्होंने कहा था कि "मैं देवराज अर्स हूँ और वह श्रीमती गांधी।" उन्होंने इस बात को एक अलग ही मोड़ देने की कोशिश की कि हमारे राज्यों और केंद्र के संबंधों के बारे में जो अनुभव हैं वे काफ़ी अलग-अलग हैं : "हम लोगों के जो अनुभव हैं वह शायद उनको न हों।" उन्होंने इससे भी आगे बढ़कर कहा कि कर्नाटक विधान-सभा के चुनावों में कांग्रेस

(इं) की ज़बरदस्त जीत का श्रेय "किसी एक व्यक्ति" को नहीं दिया जा सकता है। किसी ने भी इस टिप्पणी के असली अर्थ को ग़लत नहीं समझा। जब उनसे पूछा गया कि आपात-काल के दौरान संजय गांधी को जिस तरह उभारा गया, क्या वह श्रीमती गांधी के लिए अनैतिक नहीं था? इस पर उन्होंने कहा, "हाँ, और इसीलिए पिछले लोकसभा के चुनावों में हम लोगों की इतनी ज़बरदस्त हार हुई।" हालाँकि अर्स ने कुछ दिनों बाद श्रीमती गांधी को अपना नेता बताकर अपनी टिप्पणियों में संशोधन करने की कोशिश की, लेकिन कटुता के बीज तो पड़ चुके थे।

28 अक्तूबर को चिकमगलूर चुनाव-क्षेत्र में जनता पार्टी के एक मज़बूत गढ़ काडुर में देवराज अर्स और श्रीमती गांधी दोनों थे। जनता पार्टी के संसद-सदस्य ईरा सेज़ियन ने कुछ ही समय पहले दिल्ली में उस झूठे हलफ़नामे का, जिसे दाखिल करने का श्रीमती गांधी पर आरोप था, पर्दाफ़ाश कर दिया था। लेकिन उस दिन तो यह आरोप और भी गहरा हो गया जब यह रहस्योद्घाटन हुआ कि उन्होंने नयी दिल्ली चुनाव-क्षेत्र की मतदाता-सूची से अपना नाम हटाने की दरख़्वास्त दिये बिना कर्नाटक में मतदाता बनने की कोशिश की थी। जे० बी० कृपालानी ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि उन्होंने हलफ़नामे की सत्यापित प्रति देखी थी। उन्हें इस बात पर आश्चर्य था कि इतने देशभक्त परिवार में कमला जैसी संत महिला की बेटी एक राज्यसभा सीट के लिए "इतने ओछे हथकंडे कैसे अपना सकती है" (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 29 अक्तूबर, 1978)। दिल्ली से आने वाली ख़बरों ने वहाँ उनके लिए वातावरण दूषित कर दिया था। उन्होंने देवराज अर्स के साथ ज़बरदस्त चुनाव-अभियान के लिए निकलने की योजना बनायी थी। लेकिन देवराज अर्स और श्रीमती गांधी की बहुत ही थोड़ी देर के लिए कटुता-भरी मुलाक़ात हुई। जब मुख्यमंत्री कमरे से बाहर निकले तो उनका चेहरा क्रोध से लाल था। वह सीधे बँगलौर के लिए चल पड़े, लेकिन रवाना होने से पहले उन्होंने संदेश भेजा कि वेस्ट एंड होटल में अगली दोपहर को एक प्रेस-कांफ्रेंस का आयोजन किया जाये। ऐसा अनुमान लगाया गया कि हलफ़नामे के बारे में श्रीमती गांधी ने मुख्यमंत्री पर दोषारोपण किया था और हो सकता है कि प्रेस-कांफ्रेंस में मुख्यमंत्री कुछ बड़ी सच्चाइयों को प्रकट करें। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया और पूरे समय इधर-उधर की बातें करते रहे। पत्रकारों को आश्चर्य हो रहा था कि इन सब बातों के लिए प्रेस-कांफ्रेंस बुलाने की ज़रूरत ही क्या थी। लेकिन मुख्यमंत्री के कुछ अंतरंग मित्र जानते थे कि सच क्या था। दोनों के संबंध सौहार्द्रपूर्ण नहीं रह गये थे। कुछ समय के लिए तो मुख्यमंत्री के दिमाग़ में श्रीमती गांधी को हरवाने की बात भी आयी थी। लेकिन उनके साथियों ने उन्हें समझाया कि श्रीमती गांधी की पराजय उन्हीं की पराजय मानी जायेगी। देवराज अर्स ने चुनाव-अभियान में अपने को पूरी तरह से जुटा दिया। चुनाव तक श्रीमती गांधी का हित भी इसी में था कि अर्स उनके साथ रहें। चाहे यह चुनाव-क्षेत्र कितना ही निरापद क्यों न हो, पर अर्स की सहायता का एक ख़ास महत्व था। और अंत में वह महत्व साबित भी हुआ। लेकिन जैसे-जैसे चुनाव-अभियान बढ़ता गया वैसे-वैसे यह साफ़ होता गया कि श्रीमती गांधी ने देवराज अर्स में काफ़ी कुछ विश्वास खो दिया था। आपात-काल में बैंक-कारोबार के उनके विश्वासपात्र मंत्री प्रणव मुखर्जी उनका युद्ध-कोष संभाल रहे थे और यशपाल कपूर भी पहले की तरह ही साथ लगे हुए थे।

अपना नामांकन-पत्र ज्योतिषियों के निकाले मुहूर्त में दाख़िल करने के बाद श्रीमती गांधी देवी-देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने सीधी धर्मस्थल गयीं। हमेशा की तरह उनका चुनाव-अभियान इस बार भी शानदार और उत्साहपूर्ण था। दो नौजवान मोटर-साइकिल पर यह समाचार लेकर पहले आते थे कि श्रीमती गांधी सभा में भाषण देने आ रही हैं। उसके बाद अपनी हलके रंग की इम्पाला कार में श्रीमती गांधी आती थीं और उनके आगे-पीछे कुछ मोटर-साइकिलों और मोटर-गाड़ियों का क़ाफ़िला होता था। रात को वह अपने चेहरे के पास एक लैंप जलवाती थीं ताकि लोग उनके चेहरे की प्रसिद्ध दीप्ति देख सकें। अपने चुनाव-अभियान के किसी भी छल-कपट को वह भूली नहीं थीं। अभियान भव्य था। इसमें श्रीमती गांधी की तमाम छुपी हुई नाटकीयता पूरी तरह सार्वजनिक रूप में प्रकट हुई थी। उनके लोगों ने यह प्रचार किया कि यह कोई मामूली अभियान नहीं है। यह श्रीमती गांधी की राजनीतिक वापसी की शुरुआत है। आम लोगों को यह बताया गया कि श्रीमती गांधी इस चुनाव में जीतकर फिर से प्रधानमंत्री बन जायेंगी। कुछ लोग तो यहाँ तक विश्वास करते थे कि इंद्रम्मा अभी भी राजगद्दी पर बैठी हुई हैं। इस चतुराई-भरे प्रचार पर ग़रीब लोग आसानी से विश्वास कर लेते थे। उनकी तड़क-भड़क से मूक जनता अभिभूत हो गयी, क्योंकि वह समझती थी कि जो भव्य दृश्य वह अपनी आँखों से देख रही थी वह झूठा नहीं हो सकता। 18 दिन के इस तूफ़ानी अभियान में पदयात्राओं के अलावा श्रीमती गांधी ने 160 चुनाव-सभाओं में भाषण दिया। रास्ते में पड़नेवाला कोई भी मंदिर, कोई भी मठ या कोई भी गिरजाघर, मस्जिद या दरगाह उनकी नज़रों से बची नहीं। लोगों ने इसे ध्यान से देखा। उनके चुनाव-अभियान में साथ चल रहे एक पत्रकार ने लिखा है कि जब पास की किसी मस्जिद में अज़ान दी जाती थी तो वह अपनी सभा स्थगित कर देतीं। नमाज़ खत्म होने के बाद ही वह सभा प्रारंभ करतीं। अपने तूफ़ानी दौरे के बीच उन्होंने बाबा बूदन पहाड़ी की चोटी पर जाकर प्रार्थना करने का समय भी निकाल लिया।

जनता पार्टी के एकमात्र जानदार अभियानकर्ता जार्ज फ़र्नांडीज़ ने कहा कि श्रीमती गांधी का यह सब ढोंग है। जार्ज सड़कों पर हाथ में बाल्टी लेकर चुनाव के लिए पैसा जमा करते थे। उनके भाषणों में आपात-काल की तमाम घिनौनी करतूतों की जीती-जागती कहानी होती थी। वह एक उत्कृष्ट अभियानकर्ता थे। यह बताकर कि उनके भाई और माँ को आपात-काल के दौरान इंदिरा गांधी की पुलिस ने कितनी भीषण यातनाएँ दीं, वह लोगों की भावनाओं को उभार देते थे और कहते थे कि श्रीमती गांधी राक्षसी हैं। चुनाव-अभियान के दौरान लोगों में काफ़ी उत्तेजना थी। उज्जीरे में गायत्री नाम की एक कॉलेज-छात्रा पुलिस की गोली से मारी गयी थी। बी० बी० सी० के मार्क टल्ली और टाइम के लारेंस मैलकिन का कहना है, जिन्होंने अपनी आँखों से लाठी-चार्ज और गोलीबारी देखी थी, कि यह सब अनावश्यक रूप से किया गया। देवराज अर्स ने इसकी जाँच की घोषणा कर दी और धीरे-धीरे क्रोध और घृणा की लहरें थम गयीं। दोनों ओर से चुनाव-अभियान के नगाड़े फिर बजने लगे।

श्रीमती गांधी की उम्मीदवारी की घोषणा ने जनता पार्टी को हतप्रभ कर दिया। जनता पार्टी के महासचिव रामकृष्ण हेगड़े ने संकट की इस घड़ी में तमाम अच्छे आदमियों से हर तरह की मदद की गुहार लगायी—नौबत यहाँ तक पहुँच

गयी थी। जिस तरह इस पार्टी ने अपने उम्मीदवार को चुना वह बहुत ही विचित्र था। एक बार तो जनता पार्टी ने दक्षिण के एक फ़िल्म-अभिनेता राजकुमार को श्रीमती गांधी के खिलाफ़ खड़ा करने का विचार किया। लेकिन राजकुमार माना नहीं। अच्छे-से-अच्छा उम्मीदवार वह वीरेंद्र पाटिल को ढूंढ़ सके। साफ़-सुथरी छवि के वीरेंद्र पाटिल अच्छे तो थे, मगर उनमें कोई भी करिश्मा नहीं था। दूसरी पार्टियों में भी काफ़ी तूफ़ान आया, खासकर हत-बल और कमज़ोर कांग्रेस पार्टी तो इस सवाल पर तीन खेमों में बँट गयी। एक तरफ़ वे लोग थे जो श्रीमती गांधी को हराना चाहते थे, दूसरे वे जो उन्हें जिताना चाहते थे और तीसरे वे जो इसमें तटस्थ रहना चाहते थे। इस सवाल पर पार्टी के टूटने का ख़तरा भी पैदा हो गया था। कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने जल्दी से श्रीमती गांधी का समर्थन करने की घोषणा कर दी। इसका साफ़ अर्थ यह था कि कांग्रेस में इंदिरा-समर्थक खेमा हावी हो गया था। लेकिन इस पार्टी की कर्नाटक शाखा ने केंद्रीय आदेश की अवहेलना करते हुए अपने कार्यकर्ताओं से श्रीमती गांधी को हराने की अपील की। इस पार्टी के एकमात्र मुख्यमंत्री श्री ए० के० एंटनी ने केंद्र के निर्णय के विरोध में त्यागपत्र भेज दिया। डॉक्टर कर्णसिंह और चंद्रजीत यादव ने कार्यसमिति से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस के अंदर के कम्युनिस्ट-समर्थक तत्व भी भयभीत हो गये। के०आर० गणेश का गुट खुलेआम श्रीमती गांधी के लिए प्रचार कर रहा था। बिज़नेस स्टैंडर्ड में 3 नवंबर, 1978 को राजनीतिक समीक्षक रंजीत राय ने व्यंग्य करते हुए लिखा : "श्रीमती गांधी फिर तमाम लोकतंत्रीय और प्रगतिशील तत्वों का केंद्र बन गयी हैं।"

ख़ुद कम्युनिस्ट पार्टी भी कम पसोपेश में नहीं थी। दल के अध्यक्ष श्री डांगे ने अपने दल के फ़ैसले के विरुद्ध निर्णय किया। श्रीमती गांधी के चुनाव लड़ने के निर्णय का उन्होंने स्वागत किया। उन्होंने यह साबित किया कि अपने पुराने साथी को वह धोखा नहीं दे सकते। बंबई में उनके दल के लोग इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने पहली बार उनका जन्म-दिवस नहीं मनाया। राजनीतिक वर्णपट के दूसरे छोर पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रधान बालासाहब देवरस ने कहा कि उनके लोग इस तसवीर में कहीं नहीं हैं। वह लंबे अरसे से श्रीमती गांधी को क्षमा कर देने और पिछली बातों को भूल जाने की नीति की वकालत कर रहे थे। यह सब उनके जेल से लिखे गये दया-याचना के मुताबिक़ ही था। कौन जानता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ फिर एक बार श्रीमती गांधी की दया का मोहताज हो जाये ! प्रबुद्ध स्वार्थ में क्या बुरा है ? वह उनसे निबटने का काम जनसंघ के लोगों पर छोड़ देंगे। लालकृष्ण आडवाणी ने कहा, "एक बार फिर यह लड़ाई लोकतंत्र और तानाशाही के बीच है।" जाट सेनापति चरणसिंह उस समय श्रीमती गांधी से ज़्यादा अपनी जनता सरकार के खिलाफ़ थे, क्योंकि मोरारजी देसाई द्वारा लगाया गया घाव अभी ताज़ा ही था। उन्होंने कहा था कि उन्हें "कुत्ते की तरह खदेड़कर सरकार से निकाल दिया गया था।" श्रीमती गांधी की उम्मीदवारी के खिलाफ़ चिकमगलूर की जनता के नाम उनसे अपील जारी करवाने के लिए लोगों को बहुत ज़ोर डालना पड़ा। जनता पार्टी के मतभेदों को "आंतरिक लोकतंत्र के प्रति उसकी निष्ठा का प्रमाण" घोषित करते हुए भूतपूर्व गृहमंत्री ने कहा कि श्रीमती गांधी "जनता पार्टी की उदार नीतियों का अनुचित लाभ उठा रही हैं। आलीशान महल में रहती हैं, देश-भर में झूठ बोलती फिरती हैं, न्यायालयों और आयोगों की उपेक्षा और अपमान करती हैं और यहाँ तक कि कुख्यात

आपात-स्थिति लागू करने की अपनी हरकत को भी उचित ठहराती हैं।"

अंत में मोरारजी देसाई की राजनीतिक सूझ-बूझ ही ज्यादा सही साबित हुई। उन्होंने कहा था कि चिकमगलूर के उपचुनाव को किसी दूसरे उपचुनाव से ज्यादा महत्व जनता पार्टी नहीं देती। बहुत सामान्य ढंग से लेते हुए उन्होंने कहा था कि अगर श्रीमती गांधी लोकसभा में आ जाती हैं तो आकाश नहीं टूट पड़ेगा। अगर जनता पार्टी के नेता लफ़्फ़ाज़ी और बौखलाहट-भरी उत्तेजना का शिकार न होते और उन्होंने सिर्फ़ यह दिखाया होता कि श्रीमती गांधी डरी हुई हैं और एक निरापद चुनाव-क्षेत्र के चोर दरवाज़े से लोकसभा में आने की कोशिश कर रही हैं तो कम-से-कम श्रीमती गांधी को यह कहने का तो मौक़ा न मिलता कि उनकी जीत आपात-स्थिति लागू किये जाने की लोकमत द्वारा पुष्टि है।

सत्तारूढ़ दल और दूसरे लोगों ने श्रीमती गांधी की उम्मीदवारी पर जितनी उत्तेजना प्रदर्शित की उससे श्रीमती गांधी ज्यादा प्रभावी, प्रतापी और महिमा-मय बन गयीं। जब एक संवाददाता ने उनसे पूछा कि क्या वह संसद में इसलिए जा रही हैं कि शाह आयोग के दुष्परिणामों से या गुमनामी से बच सकें, तो श्रीमती गांधी ने तुरंत पूछा, "क्या आप सोचते हैं कि मैं इन तमाम महीनों के दौरान गुम नामी में थी ? वही बातें न दोहराइये जो लोग इधर-उधर कहते फिरते हैं।"

दिल्ली के एक संपादक ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा : "अगर परिणाम के बारे में कोई आश्चर्य की बात है तो वह यह कि श्रीमती गांधी बहुत सामान्य मतों से जीतीं" (इंडियन एक्सप्रेस, 9 नवंबर, 1978, एस० मुलगाँवकर, "एडिटर्स नोटबुक" में)। एक अमरीकी पत्र शिकागो के सन टाइम्स ने लिखा कि यह जीत "उससे भी ज्यादा घटिया थी जितनी कि कांग्रेस के चुनाव में बदनाम निकसन की जीत होती।" चिकमगलूर से जब चुनाव-परिणाम आना शुरू हुआ तो 12, विलिंगडन क्रिसेंट में बिजली बुझी हुई थी। लेकिन श्रीमती गांधी हाथ में टार्च लिये मुसकराती हुई इधर-उधर टहल रही थीं। आपात-स्थिति के तमाम सूरमा वहाँ पर जमा थे। शुक्ला, भिंडर, यूनुस, धवन और ब्रह्मचारी तो थे ही। निश्चित जीत की जानकारी के साथ श्रीमती गांधी रूसी दूतावास में अक्तूबर क्रांति के सम्मान में आयोजित एक स्वागत-समारोह में भाग लेने जा रही थीं। जैसे ही उनकी गाड़ी बाहर निकलने लगी, एक आदमी ने ज़ोर से नारा लगाया "जवाहरलाल नेहरू ज़िंदाबाद।" उन्हें गुस्सा आ गया और उन्होंने उसे धक्का देकर फाटक से बाहर निकलवा दिया (स्टेट्समैन, 8 नवंबर, 1978)।

अब श्रीमती गांधी को विश्वास हो गया था कि उनके बेहतरीन दिन लौट रहे हैं, उन्होंने खादी के कपड़े किनारे रख दिये, भारी रेशमी कपड़े पहने, नये ढंग से बाल बनाये और लंदन के लिए रवाना हो गयीं। शुरू-शुरू में तो लंदन की भारतीय संस्थाओं में उनके स्वागत वग़ैरह के लिए ज़बरदस्त होड़ रही। लेकिन धीरे-धीरे विरोध का वातावरण बनता गया। 'फ्रेंड्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी इंटर-नेशनल' ने पूरे इंग्लैंड में यह पत्र लिखकर भेज दिया था कि अपने पिता के जन्म-दिवस के आयोजन के बहाने आना उनकी एक चाल है। "वह ब्रिटेन के राज-नीतिज्ञों से फिर से संपर्क स्थापित करना चाहती हैं...। उनकी कोशिश यह है कि अपने को वह अपराधी के बजाय ज़ुल्म का शिकार बतायें...। आपको चाहिए कि श्रीमती गांधी को जतला दें कि आपको उनकी ज़रूरत नहीं है।" कई उत्साही लोग संशय में पड़ गये। कुछ लोग यहाँ तक सोचने लगे कि उन्हें लंदन आना भी

चाहिए या नहीं ? क्या उनके आने से प्रधानमंत्री केलाघन के लिए उलझन नहीं पैदा होगी ? वह पहले ही अल्पमत में थे और हो सकता था कि उन्हें चुनाव कराना पड़े। निश्चय ही वह भारतीय लोगों को नाराज़ करना नहीं चाहेंगे। लेकिन चिकमगलूर के चुनाव-परिणाम ने श्रीमती गांधी की लंदन-यात्रा में दिलचस्पी बढ़ा दी थी। यहाँ तक कि केलाघन ने उत्साहित होकर 10, डाउनिंग-स्ट्रीट में उनका स्वागत करने और चाय पर बुलाने के प्रस्ताव पर सहमति दे दी थी।

लंदन के हीथरो हवाई अड्डे पर श्रीमती गांधी को जैसे विरोधपूर्ण स्वागत का सामना करना पड़ा वैसा किसी भारतीय नेता को कभी पहले नहीं करना पड़ा था (वी० एम० नायर, स्टेट्समैन, 13 नवंबर, 1978)। "फ़ासिस्ट इंदिरा गांधी", "तानाशाह वापस जाओ" आदि के पट्ट लेकर प्रदर्शनकारी काले झंडों से उनका स्वागत कर रहे थे। श्रीमती गांधी के समर्थन में लगाये जा रहे नारे उनके विरोधी नारों में खो गये। वहीं पर दस मिनट की प्रेस-कांफ्रेंस में श्रीमती गांधी ने जनता सरकार पर हमला शुरू कर दिया। ऐसा करना दिल्ली के मैजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ़ था। श्रीमती गांधी को बाहर जाने का पासपोर्ट इसी स्पष्ट शर्त पर दिया गया था कि बाहर जाकर वह किसी राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लेंगी।

ब्रिटेन के अख़बारों की प्रतिक्रिया भारतीयों के विरोध के मुक़ाबले कहीं अधिक उग्र थी। संडे टाइम्स ने संपादकीय में लिखा कि "वह पूरी तरह भ्रष्ट और स्वागत न करने योग्य आगंतुक हैं ।...श्रीमती गांधी के भारत के विपरीत यह देश एक स्वतंत्र देश है। इसलिए इस देश में जो भी आना चाहे उसे यहाँ आने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि श्रीमती गांधी का स्वागत किया जाये, देश की जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले यहाँ के राज-नीतिज्ञ उनको मान्यता दें, या उनका सम्मान करें, या उनकी धूम हो...।" श्रीमती गांधी जहाँ-जहाँ गयीं वहाँ विरोध-प्रदर्शन हुए और सतर्क पत्रकार उनके पीछे लगे रहे। उनकी सुरक्षा का प्रबंध बाक़ी राजनीतिज्ञों के मुक़ाबले ज्यादा सावधानी से किया गया था। जिस क्लैरिज होटल में वह ठहरी थीं, पुलिस ने उसकी पूरी तरह घेरेबंदी कर रखी थी।

जैसे-जैसे उनकी यात्रा आगे बढ़ने लगी, लोगों की दिलचस्पी बढ़ती गयी। जिन लोगों ने टी० वी० पर श्रीमती गांधी के साथ डेविस फ्रॉस्ट का इंटरव्यू देखा था वे भी संजय के बारे में श्रीमती गांधी के उत्तरों से चकित थे। कैफ़े रोयल के नेपोलियन कक्ष में, जहाँ सारी दुनिया के पत्रकार जमा थे, एक सवाल के जवाब में वह बरस पड़ीं। उन्होंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि आप कैसी बातें कर रहे हैं ! क्या किया है संजय ने ? कुछ भी तो नहीं। 1975 या 1976 में उसने कुछ दिलचस्पी लेनी शुरू की, बस और क्या ?" यह आयोजन ब्रिटिश संसद-सदस्य माइकेल फ़ुट ने किया।

17 नवंबर को वह वेल्स की मनोहारी घाटी की यात्रा पर गयीं। वहाँ उन्होंने एक भारतीय करोड़पति स्वराज पाल की स्पाइरल स्टील मिल का उद्घाटन किया। स्वराज पाल ब्रिटेन में श्रीमती गांधी के कार्यक्रम के सह-संयोजक भी थे। अफ़वाह यह थी कि श्रीमती गांधी का पैसा भी उस मिल में लगा है। उस समय इंग्लैंड में श्रीमती गांधी के साथ वेल्स तक जाने वाले एक भारतीय पत्रकार ने बड़ी दिलचस्प झलकियाँ बतायीं। ये झलकियाँ ब्रिटेन के कुछ ऐसे संसद-सदस्यों के बारे में थीं जो उनकी चापलूसी पर आमादा थे। माइकेल फ़ुट ने एक बहुत ही

"बेहूदा भाषण" दिया था। उन्होंने श्रीमती गांधी का वर्णन "भारत को एकीकृत करने वाले" और "स्वतंत्रता के रक्षक" के रूप में किया था। यह भाषण उतना ही वाहियात था जितना श्रीमती गांधी का। लेकिन अपने-अपने बारे में एक-दूसरे की बातें सुनकर दोनों की आँखों में आँसू आ गये थे। श्रीमती गांधी ने कहा था, "आप जानते हैं जब मैं आक्सफ़ोर्ड में आयी थी तो मैं छात्रावास में रहती थी। मैं एक अकेली डरी हुई लड़की थी जैसा कि कोई भी विदेशी छात्र होता है। और तब एक लड़की आयी। उसने मेरे दरवाज़े पर दस्तक दी और पूछा कि क्या वह अंदर आ सकती है? मैं कितनी अकेली थी तब!" और तब उन्होंने याद किया कि कैसे नाई बेवन की उनके पिता से बातें हुई थीं। और कैसे वह महसूस करती थीं कि वह तो खुद ही आधी वेल्सवासी हैं। उन्होंने बताया कि वह वेल्स के बारे में कितनी चिंतित रहा करती थीं।...और ये बातें सुनकर ग़रीब मज़दूरों की आँखों में आँसू आ गये थे। महान श्रीमती गांधी ने ग़रीब वेल्स-श्रोताओं को मुग्ध कर दिया था। बेचारे माइकेल फ़ुट आँखों से आँसू पोंछ रहे थे। यह नेहरू के साथ उनके संबंध की करामात थी। उस नौजवान पत्रकार ने लिखा, "मैंने दो राजनीतिज्ञों को पारस्परिक सौहार्द्र से इतना द्रवित होते पहले कभी नहीं देखा।"

लेकिन उन्हें साप्ताहिक इकोनोमिस्ट की वह टिप्पणी क़तई अच्छी नहीं लगी होगी जिसमें पत्र ने लोगों को चेतावनी दी थी कि श्रीमती गांधी को वह अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त नहीं करने दिया जाना चाहिए जिसकी वह कोशिश कर रही हैं। संडे टेलिग्राफ़ ने यह सलाह दी कि "ब्रिटिश राजनेताओं को भूतपूर्व तानाशाह के प्रति ठंडी शालीनता बरतनी चाहिए।"

कभी भी उन्होंने पश्चात्ताप का एक भी शब्द नहीं बोला। न ही उन्होंने कभी इस संभावना का खंडन किया कि कांग्रेस (इं) की जीत के बाद वह प्रधानमंत्री बनने की कोशिश करेंगी (स्टेट्समैन, 19 नवंबर, 1978)। एक पत्रकार-सम्मेलन में उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत रूप से वह कभी प्रधानमंत्री बनना नहीं चाहतीं। लेकिन लोकसभा के लिए उप-चुनाव लड़ने की इच्छा न होने की बात भी तो उन्होंने ही कही थी। उन्होंने कहा, "लेकिन अब मैं लोकसभा में हूँ। अगर लोग ही मुझसे प्रधानमंत्री बनने के लिए कहें तो मैं क्या कर सकती हूँ? मैं स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कह सकती हूँ, लेकिन व्यक्तिगत रूप से मैं प्रधानमंत्री बनना नहीं चाहती हूँ।" यह श्रीमती गांधी का जवाब था। 1965 में जब वह सूचना और प्रसारण-मंत्री थीं तो उन्होंने एक पत्र में लिखा था कि "यह अजीब लग सकता है कि राजनीति में रहनेवाला आदमी पूरी तरह राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से मुक्त हो। लेकिन मुझे लगता है कि मैं उसी तरह की विलक्षण व्यक्ति हूँ" (नयनतारा सहगल की पुस्तक इंदिरा गांधीज़ एमर्जेंस ऐंड स्टाइल)। यह पत्र लिखने के एक साल बाद वह प्रधानमंत्री थीं। लेकिन वह सोचती थीं कि वह पूरी तरह राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से मुक्त हैं।

20 नवंबर को जब वह चिकमगलूर से जीतकर लोकसभा में वसंत साठे और सी० एम० स्टीफ़ेन के साथ संसद में घुसीं तो जयजयकार और उपहास दोनों ही के साथ उनका स्वागत किया गया। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट सदस्य ज्योतिर्मय बसु ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा, "दुष्टता फिर संसद में आ गयी है।" जनता बेंचों से आवाज़ आयी, "हिटलर, हिटलर!" लेकिन उनके भक्तों ने जवाब में कहा, "इंदिरा गांधी की जय।" अध्यक्ष-दीर्घा में बैठे हुए कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज

अर्स पत्रकार-मित्रों के बीच दावा कर रहे थे कि उन्होंने श्रीमती गांधी को संसद में भेजा है। स्टीफ़ेन ने वड़े कर्तव्य-भाव से श्रीमती गांधी से अपनी सीट पर बैठने के लिए कहा। लेकिन उन्होंने बड़ी विनम्रता से इंकार कर दिया और वह उनके और वसंत साठे के बीच बैठ गयीं। वसंत साठे सदन में उनके सबसे प्रमुख ढिंढोरची थे।

अभी उनको सदन में आये एक ही दिन हुआ था कि एक-से-एक नयी मुसीबतें पैदा होने लगीं। लोकसभा की विशेषाधिकार समिति ने उन्हें सदन का अपमान करने का दोषी ठहराया था और "सदन के सामूहिक समझदारी के अनुसार उनके लिए दंड निर्धारित करने का फ़ैसला किया था।" विशेषाधिकार का यह प्रश्न कँवरलाल गुप्त और मधु लिमये ने उठाया था और इसे 18 नवंबर, 1977 को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया गया था। श्रीमती गांधी पर यह आरोप लगाया गया था कि पाँचवीं लोकसभा के लिए मारुति संबंधी एक प्रश्न का उत्तर देने के लिए जो अधिकारी जानकारी इकट्ठा कर रहे थे उनके काम में बाधा डाली गयी। उन्हें धमकाया गया, परेशान किया गया और उनके विरुद्ध झूठे अभियोग चलाये गये। समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि श्रीमती गांधी ने मारुति लिमिटेड के हितों के संरक्षण के लिए, जिनका प्रबंध उनका पुत्र कर रहा है, अपने प्रधानमंत्री के पद का दुरुपयोग किया। इसी प्रकार का निर्णय उनके भूतपूर्व अतिरिक्त निजी सचिव आर० के० धवन और केंद्रीय जाँच ब्यूरो के भूतपूर्व निदेशक डी० सेन के विरुद्ध किया गया।

जब यह प्रश्न उठा कि श्रीमती गांधी के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जाये तो इस पर लगभग सभी दलों में गंभीर मतभेद था। जनता पार्टी में भी कुछ सदस्य कड़ी कार्रवाई करने के पक्ष में थे और कुछ का रवैया नर्म था। मोरारजी भाई देसाई और चौधरी चरणसिंह इस प्रश्न पर एकमत थे। उनका कहना था कि "कड़ी कार्रवाई" करने की आवश्यकता है। श्री अटलबिहारी वाजपेयी का सुझाव यह था कि "भर्त्सना" करना ही पर्याप्त होगा। प्रारंभ में लालकृष्ण आडवाणी भी कड़ी कार्रवाई करने के पक्ष में नहीं थे, पर बाद में वह भी मोरारजी देसाई से सहमत हो गये। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने पॉलिट ब्यूरो में एक प्रस्ताव पास किया : "...जब भी कठिन राजनीतिक निर्णय करने होते हैं, सामान्यतया टालमटोल की जाती है और कड़ाई से काम नहीं लिया जाता। पर आज की परिस्थिति में विशेषाधिकार के प्रश्न पर अत्यधिक कड़ी कार्रवाई की माँग करने और इस प्रश्न पर अपनी बहादुरी दिखाने से तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष को हानि पहुँच सकती है, क्योंकि विरोधी शहीद बनते फिरेंगे और जनता की सहानुभूति उनके साथ हो जायेगी।" यह बात तो बड़े पते की थी, पर जिस सरकार ने कुछ किया ही नहीं था और जिसकी उपलब्धि शून्य से अधिक कुछ न थी, सिवाय लंबी-चौड़ी बातें करने के, और जो कुछ कर भी नहीं सकती थी उसके सामने अपनी बहादुरी दिखाने का एक ही मौक़ा आया था। उस वक़्त श्रीमती गांधी पर वार करना उनके लिए बहुत आसान था। कड़ी कार्रवाई का पक्ष लेनेवाले इस बात के लिए कृतसंकल्प थे कि श्रीमती गांधी चाहे कोई भी राजनीतिक लाभ क्यों न उठा लें, उनके विरुद्ध कार्रवाई करनी ही चाहिए। पहली बार देश-भर में श्रीमती गांधी के प्रति सहानुभूति का वातावरण पैदा हो गया जब उन्होंने लोकसभा में भाषण करते हुए कहा : "इस सरकार की असफलताओं के कारण इसका जनता के साथ अलगाव बढ़ रहा है। इसकी अयोग्यता के कारण प्रशासन में कोई तालमेल नहीं रह गया है

और अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। यदि इसे सुधारने के लिए कुछ न किया गया तो फ़ासिस्टवाद के लिए बड़ी उपजाऊ भूमि तैयार हो जायेगी।"

सरकार ने श्रीमती गांधी को सभा से निष्कासित करने का निर्णय करके फ़ासिस्टवाद को बढ़ावा दिया, जिस फ़ासिस्टवाद की प्रतीक स्वयं श्रीमती गांधी थीं। संसद-सदस्य के नाते श्रीमती गांधी में कोई विशेष योग्यता नहीं थी और यदि उन्हें लोकसभा में बने रहने दिया जाता तो उनके प्रभाव को सीमित किया जा सकता था। उन्हें लोकसभा से निकालकर उन्हें संसदीय व्यवस्था के बाहर सत्ता की खोज करने का बढ़ावा दिया गया और इस खेल में उन्हें कोई मात नहीं दे सकता।

चिकमगलूर की इस संसद-सदस्या ने सदन से निकलने से इंकार कर दिया और इस घटना से अधिकाधिक राजनीतिक लाभ उठाने की चेष्टा की। लोकसभा ने उन्हें सदन से निष्कासित करने और जेल भेजने का निर्णय कर लिया था, लेकिन उस निर्णय के तीन घंटे बाद तक वह सदन से बाहर जाने से इंकार करती रहीं और तीन घंटे की उस अवधि में सदन को नौटंकी बनाकर रख दिया। प्रेस-गैलरी ठसाठस भरी थी और नीचे सभा-भवन में लोग गा रहे थे और एक-दूसरे से गले मिल रहे थे। अध्यक्ष ने 19 दिसंबर को शाम के पाँच बजकर पाँच मिनट पर सभा स्थगित कर दी और स्थगन की घोषणा होते ही इंदिरा गांधी का समर्थन करने-वाले नर-नारी सभा-भवन में घुस पड़े। वह अपने स्थान पर बैठी कभी संवाद-दाताओं को बयान दे रही थीं और कभी अपनी बहुओं को, जो तब तक वहाँ पहुँच चुकी थीं, गले लगाकर प्यार कर रही थीं। उनका कहना था : "मैं सदन की हिरासत में हूँ और मुझे यहीं से जेल ले जाया जाये।" उनकी भाव-भंगिमा और अभिनय के प्रदर्शन से अक्तूबर, 1977 के उस दिन की याद आ रही थी जब उन्हें पहली बार गिरफ़्तार किया गया था। लगभग 9 बजे संसद के सुरक्षा दल के मुख्य अधिकारी ने स्पीकर के हस्ताक्षर कराकर वारंट उनको दिखाया और श्रीमती गांधी जाने के लिए उठ खड़ी हुईं। उन्हें इतना समय मिल गया था कि उन्होंने भीड़ इकट्ठी कर ली थी और उनके ढिंढोरची उन्हें तिहाड़ जेल तक विजेता के समान ले जाने के लिए आ गये थे। लंदन में श्रीमती गांधी ने डींग हाँकी थी : "सरकार ने मेरे विरुद्ध जो भी क़दम उठाया है, उससे मुझे सहायता मिली है।" इसमें कोई संदेह नहीं था।

7

कर्नाटक हाथ से निकल गया

देवराज अर्स और ललितनारायण मिश्र में एक रहस्यमय साम्य है। ललितनारायण मिश्र भी श्रीमती गांधी के एक सिपहसालार थे जिनका जीवन जनवरी, 1975 में अचानक समाप्त कर दिया गया। 1969 तक अर्स और मिश्र दोनों राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्वहीन व्यक्ति थे। इसके बाद दोनों का उदय हुआ—एक का नयी दिल्ली में और दूसरे का कर्नाटक में। ललितनारायण मिश्र की तरह देवराज अर्स भी पैसा जमा करने के मामले में विशेषज्ञ हो गये। दोनों पैसा ख़र्च करने के मामले में भी माहिर थे। नक्षत्रों के प्रभाव में दोनों का विश्वास था और वे अकसर तांत्रिकों और भविष्यवक्ताओं के शिकार हो जाते थे। दोनों की ज़िंदगी बहुत मामूली ढँग से शुरू हुई, लेकिन बड़े नाटकीय ढँग से उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आया। ज़िंदगी की बेहतरीन चीज़ों के लिए उनका मोह ग़ज़ब का था—हालाँकि मिश्र "डनहिल" सिगरेट और नैपोलियन ब्रांडी के शौक़ीन नहीं थे जैसा कि अर्स हैं। इन दोनों ख़ूबसूरत और आकर्षक व्यक्तियों की राजनीतिक कार्य-शैली में भी समानता थी। दोनों उदार हृदय थे। दोनों को श्रीमती गांधी का बहुत समय तक पूरा विश्वास प्राप्त रहा। दोनों के जीवन में काफ़ी समानताएँ थीं, यहाँ तक कि दोनों के घरों में परेशान करनेवाली बीवियों का भी एक विचित्र साम्य था। लेकिन एक अंतर था दोनों में, वह यह कि ललितनारायण मिश्र की गुड्डी जब चढ़ी तो उसकी डोर का दूसरा सिरा श्रीमती गांधी के हाथ में था और देवराज अर्स ने सपनी जड़ें ज़मीन में इतनी गहरी जमा लीं कि श्रीमती गांधी के लिए भी उन्हें उखाड़ना कठिन था।

मिश्र की तरह अर्स भी श्रीमती गांधी द्वारा ऊपर चढ़ाये गये व्यक्ति थे, हालाँकि वह 1952 से कर्नाटक विधानसभा के सदस्य थे और निजलिंगप्पा मंत्रिमंडल में रेशम-उद्योग के मंत्री भी रह चुके थे। लेकिन उनका उत्थान 1969 के कांग्रेस विभाजन के बाद हुआ। उन दिनों कर्नाटक दो प्रमुख जातियों—लिंगायतों और वोक्कालिगाओं—के शिकंजे में जकड़ा हुआ था। राजनीति, प्रशासन, शिक्षा

और जन-जीवन के हर क्षेत्र पर इन दोनों जातियों की ज़बरदस्त पकड़ थी। कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि किसी दूसरी जाति का व्यक्ति राज्य में कोई राजनीतिक हस्ती बन सकता है, मुख्यमंत्री बनने की बात तो दूर रही थी। जब कांग्रेस का विभाजन हुआ तो शक्तिशाली लिंगायत और वोक्कालिगा दूसरे पक्ष में चले गये थे। श्रीमती गांधी ने यह सोचा कि इन दोनों जातियों पर प्रहार किये बिना वह राज्य में कोई शक्ति खड़ी नहीं कर सकतीं। इसके लिए उन्होंने देवराज अर्स को चुना।

अर्स अर्सू जाति के थे, जिनकी संख्या राज्य में 0.5 प्रतिशत भी नहीं है। बहुतों को इस उद्देश्य के लिए अर्स का चयन बहुत विचित्र लगा, क्योंकि दल को बिलकुल बुनियाद से खड़ा करना था। श्रीमती गांधी ने जब अर्स को अपनी पार्टी की राज्य शाखा का तदर्थ अध्यक्ष बनाया तब अर्स ने इस कठिन कार्य को अदम्य उत्साह के साथ करना शुरू किया। दल के कार्यालय के लिए उन्होंने एक छोटा-सा मकान किराये पर लिया और जब जगह कम पड़ी तो बाहर तंबू लगा दिया। प्राय: इतना भी पैसा नहीं होता था कि प्रेस-कांफ्रेंसों में कॉफ़ी भी पिला सकें। उनके पास कुछ गाएँ थीं जिनकी देखभाल वह और उनकी पत्नी किया करती थीं। दूध बेचकर वह अपना ख़र्चा चलाते थे। इस समय तक उनका छोटा भाई केम्पराज अर्स मद्रास की फ़िल्मी दुनिया में काफ़ी नाम कमा चुका था। एक बार अपनी आर्थिक कठिनाइयों से परेशान होकर देवराज अर्स ने अपने भाई के पास सहायता के लिए जाने का निर्णय किया। उनके भाई ने अपमान करते हुए कहा, "आप राजनीति में गये ही क्यों?" यह कहकर उसने दरवाज़ा बंद कर लिया था। लेकिन देवराज अर्स लौटकर फिर नयी कांग्रेस को संगठित करने के काम में पूरे उत्साह से जुट गये।

1971 के लोकसभा चुनाव में श्रीमती गांधी की भारी विजय के बाद कर्नाटक की राजनीति में भी परिवर्तन आया। सिंडीकेट के सभी नेता पराजित हो गये थे और लोग इस नयी पार्टी को परिवर्तन की आशा लेकर निहार रहे थे। राज्य में दल के अध्यक्ष होने के नाते देवराज अर्स को 1972 के विधानसभा के चुनाव के लिए प्रत्याशियों को चुनने के मामले में खुली छूट दी गयी और उन्होंने भविष्य की योजना को ध्यान में रखते हुए उम्मीदवारों की सूची बनायी। दल के टिकट देने के मामले में पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यकों को ख़ासा महत्व दिया गया और इसके लिए सैद्धांतिक आधार के रूप में "वितरण में न्याय" के सिद्धांत पर पूरी तरह अमल किया। अर्स यह फ़ैसला कर चुके थे कि ऊँची जाति के लोगों की पकड़ को तोड़ देना है, क्योंकि प्रभुत्वशील वर्ग और प्रभुत्वशाली जाति में कोई अंतर नहीं था। वह जानते थे कि जो कुछ वह कर रहे हैं उसका परिणाम क्या होगा। इसका परिणाम वर्ग-संघर्ष के रूप में निकलेगा। इसका बीजारोपण करने के लिए वह पूरी तरह तैयार थे। उन्होंने साफ़-साफ़ आरोप लगाया कि बहुसंख्यक ऊँची जातियाँ समाज का खून चूसती हैं। देवराज अर्स ने 1978 के आरंभ में लेखक के साथ एक भेंट-वार्ता में बताया, "मैंने कोशिश की कि दूसरे वर्गों और जातियों को संगठित और जागृत करूँ। और मैंने इसमें सफ़लता प्राप्त की। 216 सदस्यों की विधान सभा में मैं अपने दल के 165 विधायकों को निर्वाचित करा सका। और उसके बाद मेरे ख़िलाफ़ कोई भी जोड़-तोड़ नहीं चल सकी।"

हालाँकि विधानसभा में उनका दल बहुमत में आ गया था, लेकिन 1952 के

चुनावों के बाद यह पहला मौक़ा था जब अर्स ने खुद चुनाव नहीं लड़ा था। अर्स के विरोधियों ने श्रीमती गांधी को इस पर सहमत कर लिया था कि दल के पदाधिकारी विधानसभा चुनाव के प्रत्याशी नहीं हो सकते। जिन्हें विधानसभा का चुनाव लड़ना हो उन्हें पहले दल के पद से त्यागपत्र देना होगा। अर्स ने दल के पद पर बने रहना उचित समझा। और इसलिए ऐसा लगता था कि मुख्यमंत्री-पद के दावेदारों में उनका नाम कहीं नहीं था। दो बड़े लिंगायत नेता चन्माबासप्पा और सिद्धवीरप्पा जीतकर आये थे और ज्यादातर लोगों का यह ख़याल था कि इन दोनों में से ही कोई मुख्यमंत्री बनेगा। महत्वपूर्ण लिंगायतों की उपेक्षा कैसे की जा सकती थी?

सिद्धवीरप्पा ने बड़े आत्मविश्वास के साथ अपने को मुख्यमंत्री-पद का प्रत्याशी घोषित कर दिया, लेकिन अर्स भी मैदान में आ गये। उनके मुख्यमंत्री-पद की दावेदारी पर बहुतों को हँसी आयी। लोगों ने कहा कि उनकी यह मजाल कि वह सिद्धवीरप्पा से टक्कर लें! श्रीमती गांधी के दूत के रूप में विधानसभा दल के नेता के चुनाव के लिए उमाशंकर दीक्षित दिल्ली से आये। उन्होंने दल के विधायकों की एक अनौपचारिक बैठक यह जानने के लिए रखी कि वे नेता के रूप में किसे पसंद करते हैं? यह स्पष्ट हो गया कि ज्यादातर लोग देवराज अर्स के पक्ष में थे। जब विधान-सौध में विधायकों की औपचारिक बैठक हुई उस समय तक परिणाम बिलकुल स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ चुका था कि भारी बहुमत श्री अर्स के पक्ष में है। पर सिद्धवीरप्पा हार इतनी आसानी से मानने के लिए तैयार न थे। उन्हें यक़ीन था कि ज़रूर कहीं कोई गड़बड़ हुई है। श्रीमती गांधी एक छोटे-से आदमी को, जो न लिंगायत है न वोक्कलिगा, मुख्यमंत्री बनाने की बात कैसे मान सकती हैं? उन्होंने खड़े होकर कहा कि विधायक चाहे कुछ भी सोचें, लेकिन हमारी सर्वोच्च नेता श्रीमती गांधी की अनुमति के बिना कुछ नहीं हो सकता। दीक्षित भी, जिन्हें स्वयं श्रीमती गांधी ने ही बनाया था, मना नहीं कर सके। बैठक स्थगित कर दी गयी। दीक्षित ने राजभवन जाकर टेलीफ़ोन पर श्रीमती गांधी से बातचीत की। दोपहर के बाद जब विधायक फिर मिले तो उस बैठक में दीक्षित ने घोषणा की कि श्रीमती गांधी भी देवराज अर्स को मुख्यमंत्री बनाना चाहती हैं।

लेकिन श्रीमती गांधी ने अर्स को क्यों पसंद किया, इसका जवाब आज तक कोई नहीं जानता। शायद वह यह सोचती हों कि वोक्कलिगाओं और लिंगायतों की जकड़ को तोड़ने के लिए अर्स ही सही हथियार हो सकते थे, या फिर उस कारण से जिस कारण से श्रीमती गांधी को सिंडीकेट के नेताओं ने प्रधानमंत्री-पद के लिए चुना था—और वह कारण यह कि श्रीमती गांधी गूँगी गुड़िया की तरह उनके हाथों की कठपुतली बनी रहेंगी। लेकिन अगर यह कारण था तो श्रीमती गांधी ने भी उतनी ही बड़ी ग़लती की थी जैसी कामराज और सिंडीकेट के अन्य नेताओं ने की थी।

लेकिन अर्स को कोई जल्दी नहीं थी। कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** के गंभीर अध्येता होने के नाते समय की पहचान के मामले में वह भी श्रीमती गांधी की तरह ही चतुर थे। उनका नियम था—एक-एक क़दम आगे बढ़ना, एक बार में एक दुश्मन से निपटना। उनका पहला दुश्मन था प्रभुत्वशाली जातियों का गठबंधन। और इसे ख़त्म करने में श्रीमती गांधी उनके साथ थीं। गाँवों में सत्तारूढ़ जातियों की कमर तोड़ देने के लिए उन्होंने क़र्ज़ से राहत दिलाने के संबंध में उठाये गये

क़दमों के रूप में अपना सबसे शक्तिशाली हथियार इस्तेमाल किया। बहुत ही जोशो-ख़रोश से इसका क्रियान्वयन किया गया। भूमि-सुधार संबंधी क़ानून भी देश के अन्य भागों के मुक़ाबले कर्नाटक में सबसे प्रगतिशील थे। राज्य के हर ताल्लुक़े में उन्होंने भूमि से संबंधित सवालों के लिए एक पाँच-सदस्यीय ट्रिब्यूनल गठित किया और उसमें एक हरिजन सदस्य का रखा जाना अनिवार्य कर दिया। इन ट्रिब्यूनलों में पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों का बड़ी उदारतापूर्वक मनोनयन किया गया। इनके फ़ैसलों के खिलाफ़ सिर्फ़ उच्च न्यायालय में अपील हो सकती थी। अर्स ने कहा था कि ऐसा उन्होंने क़ानूनी उलझनों और देरी से बचने के लिए किया था। जब उच्च न्यायालय में इस संबंध में पंद्रह हज़ार याचिकाएँ जमा हो गयीं तो उन्होंने कहा कि देश के न्यायालय भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हैं। आम ग़रीब लोगों में इस कथन से उनकी लोकप्रियता और बढ़ गयी।

बँधुआ मज़दूरी की पद्धति को ख़त्म करने और भूमिहीन मज़दूरों के लिए मकान की जगह देने के सिलसिले में उनका काम देश के अन्य भागों में मूलगामी सामाजिक परिवर्तन के लिए आदर्श माना जाने लगा। मुख्यमंत्री के रूप में उनके सात साल के शासनकाल में ढाई लाख लोगों को दस लाख एकड़ से अधिक ज़मीन के पट्टे दिये गये और आठ लाख से अधिक खेतिहर मज़दूर-परिवारों को मकानों की ज़मीन दी गयी। अर्स ने सहकारी समितियों को फिर से गठित किया। अब तक इन पर ऊँची जातियों का ही एकाधिकार रहा था और जब उच्च न्यायालय ने अर्स के इस निर्णय के ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया तो आम लोगों की निगाह में अर्स का महत्व और बढ़ गया।

उन्होंने अपनी योजनाओं में आम आदमियों का बहुत ध्यान रखा। वह इतने व्यवहारकुशल थे कि यहाँ पर ही वह रुक नहीं गये, बल्कि उन्होंने आगे बढ़ने का फ़ैसला किया। हर समय अपनी सत्ता के आधार को मज़बूत करने और अपने राजनीतिक कोष को भरते रहने में वह लगे रहे। वह जानते थे कि सत्ता की राजनीति बिना पैसों के नहीं चलायी जा सकती। धन एकत्र करने के मामले में वह कोई भी तरीक़ा अपनाने में संकोच नहीं करते थे। मुख्यमंत्रित्व के अपने प्रारंभिक काल में उनके आर्थिक मददगार के० के० मूर्ति नाम के एक किरासन तेल के व्यापारी थे। मूर्ति निजलिंगप्पा के भी विश्वासपात्र रह चुके थे। अर्स ने मूर्ति को कर्नाटक फ़िल्म विकास निगम का अध्यक्ष बना दिया, जिससे दोनों को लाभ हुआ। इसके शीघ्र ही बाद उन्होंने बड़ी मछलियों पर जाल डाला। एक थे एच० आर० बासवराज—दक्षिण के एक बहुत बड़े शराब के ठेकेदार। अपने शराब के कारख़ानों के अलावा इनका एक सिनेमा हॉल, और इससे भी बड़ी बात यह कि एक अख़बार भी था जिसे किसी भी नेता की हवा बाँधने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। यह दोस्ती बासवराज और देवराज अर्स दोनों के लिए इतनी लाभदायक रही कि बासवराज को राज्यसभा की सीट दे दी गयी। कांग्रेस के दूसरे विभाजन के समय जब यशपाल कपूर ने अर्स से नेशनल हेरॅल्ड को बचाने के लिए धन की माँग की थी तो 52 लाख की रक़म में से बहुत बड़ा भाग बासवराज ने ही दिया था। इसके बदले बासवराज को नेहरू-परिवार के इस अख़बार के निदेशक-मंडल में नियुक्त कर दिया गया। इनके दूसरे धनदाताओं में एक थे खोडे। यह भी शराब के बड़े व्यापारी और शराब के कारख़ाने के मालिक थे। ग्रोवर आयोग की जिस रिपोर्ट में अर्स और उनके कुछ मंत्रियों को दोषी ठहराया गया है उसमें एक

नाम पांडुरंग शेट्टी का भी आता है। उद्योगपति शेट्ठी भी श्री अर्स के धनदाताओं में प्रमुख हैं। शेट्टी को बंगलौर में ज़मीन का वह टुकड़ा जो स्टेडियम के लिए निर्धारित था, नाममात्र की क़ीमत पर दे दिया गया था। मुख्यमंत्री के एक और "महाजन" एक भवन-निर्माता ठेकेदार भी हैं। हाल ही में उन्होंने श्री अर्स के सरकारी निवास बालाब्रुई के नज़दीक एक बहुमंज़िला शानदार होटल बनाया है। अर्स के आलोचक कहते हैं कि इसमें अर्स की भी हिस्सेदारी है। निश्चय ही इस होटल में कुछ विशेष कमरे अर्स के विशेष अतिथियों के लिए आरक्षित रहते होंगे, जिस तरह दिल्ली में ललितनारायण मिश्र दिल्ली के कुछ होटलों में रखते थे।

अर्स उन लोगों में से नहीं थे जो ठेकेदारों और बड़े-बड़े पैसेवालों से अपनी घनिष्ठता को छुपाते। अर्स तो साफ़ कहते थे कि क्या हुआ अगर वे मेरे नज़दीक हैं! क्या उनके नज़दीक होने से उन कामों पर कोई असर पड़ता है जो मैं ग़रीबों के लिए करता हूँ? उन्होंने अपने विरोधियों को अनेक बार चुनौतियाँ दीं कि इन पैसेवालों से संबंध रखने के कारण ग़रीबों के ख़िलाफ़ उनका कोई भी फ़ैसला वे सामने लाकर बतायें। उनका दावा था कि उनके संबंधों के कारण उनके प्रगतिशील कामों में कोई रुकावट नहीं पड़ती थी। अर्स बहुत ही धार्मिक, बहुत ही अंधविश्वासी व्यक्ति हैं। लेकिन निश्चय ही वह शुद्धतावादी नहीं हैं। वास्तव में तो वह नैतिकता जैसी चीज़ों की क़तई चिंता नहीं करते। अपने नज़दीकी दोस्तों के साथ बातचीत में तो वह साफ़-साफ़ अपने "अनैतिक" होने की डींग भी मारते रहते थे। उनके बारे में हर चीज़ मानो अलग-अलग खानों में बँटी हुई है। धर्म और अंधविश्वास अपनी जगह हैं, राजनीति अपनी जगह और व्यक्तिगत जीवन अपनी जगह। साधु-महात्माओं के बारे में उनकी धुन और उनके लिए आये-दिन होनेवाले यज्ञों के बावजूद अर्स बिलकुल आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष विचारों के आदमी हैं। विचित्र जीव हैं वह, ऐसा ही आदमी तो भारतीय राजनीति की दलदल में सफलता प्राप्त कर सकता है।

श्रीमती गांधी और धन, दोनों ही उनकी राजनीतिक शक्ति को बढ़ाते जाने में महत्वपूर्ण रहे हैं। लेकिन इसके अलावा भी कुछ और बातें थीं। देश का कोई दूसरा मुख्यमंत्री ऐसा नहीं था जो उदारता से कृपादृष्टि बिखेरने में अर्स का मुक़ाबला कर सके। राजनीतिक कृपा बिखेरने में तो वह निश्चय ही सबको मात कर चुके हैं। उन्होंने इतने बोर्ड और निगम बनाये हैं कि देवीलाल और बाक़ी तमाम मुख्यमंत्रियों को भी मात कर दिया है। 1978 तक उन्होंने कर्नाटक में 75 निगम और बोर्ड बना डाले। जंगल, उद्योग और कृषि विभागों के लिए उन्होंने तीन-तीन निगम और बोर्ड बनाये। पिछड़ी जातियों के लिए एक वित्त-निगम बनाया गया और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए एक अलग वित्त-निगम। आप किसी भी चीज का नाम लीजिये, कर्नाटक में उसके लिए कोई-न-कोई निगम, कोई-न-कोई बोर्ड होगा। 75 निगमों या बोर्डों का मतलब होता है उनके 75 अध्यक्ष। हरेक के साथ एक मुफ़्त का मकान, एक मुफ़्त की कार और अन्य सहूलियतें। अगर अध्यक्ष थोड़ा-सा भी समझदार हो तो अपनी अवधि ख़त्म होने के पहले दस-पंद्रह लाख रुपये तो बड़ी सफ़ाई से बनाकर निकल सकता है। अर्स ने सामाजिक सेवा के साथ राजनीतिक और व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के और अनेक तरीक़े ढूँढ़ निकाले थे। उन्होंने हर ज़िले में नियुक्ति कमेटियाँ बनायीं और उनमें कितने ही ग़ैर-सरकारी लोगों को भर दिया। इस तरह न केवल उन्होंने अपने कुछ वफ़ादार लोगों का एक गिरोह बना लिया, बल्कि और ज़्यादा

स्थानीय लोगों की नियुक्ति का रास्ता भी खोल दिया। और अगर इनके आलोचकों की बातों पर विश्वास किया जाये तो उनका कहना है कि ये कमेटियाँ स्थानीय स्तर पर धन-संग्रह की कमेटियों की तरह भी काम करती थीं। लिंगायतों और वोक्कलिगाओं को जो बात शायद सबसे ज्यादा बुरी लगी वह यह थी कि राज्य में शासक-गुटों के युगों से चले आ रहे प्रभुत्व को तोड़ने का यह सबसे अचूक तरीक़ा था।

कुछ ही वर्षों में अर्स देश के सबसे ज्यादा शक्तिशाली मुख्यमंत्री बन गये। पद से हटाये जाने के बाद भी, जब उन्हें चारों ओर से चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था, तब भी उन्हें अपनी आधारभूत शक्ति पर भरोसा था। उस समय मुझसे बात करते हुए उन्होंने कहा था, "मेरी सबसे बड़ी ताक़त यह है कि मैं अर्स हूँ।" यह बातचीत पैलेस ग्राउंड के उनके मनपसंद विलासितापूर्ण बंगले में हो रही थी। बहुत-से लोग इसे "रंगमहल" कहते हैं। डनहिल की तंबाकू भीनी-भीनी महक के साथ बढ़िया कॉफ़ी की सुगंध मिली हुई थी, जिसके प्याले हर आधे घंटे बाद वर्दीधारी बेयरे ले आते थे।

1972 में मुख्यमंत्री-पद की शपथ ग्रहण करते समय अर्स एक फटा-पुराना कुर्ता पहनकर आये थे। 1950 के आस-पास तक वह मैसूर ज़िले के कालाहल्ली गाँव में अपनी दस-बारह एकड़ ज़मीन अकसर खुद जोतते-बोते थे। मुख्यमंत्री बनने के बाद अपनी पहली प्रेस-कांफ्रेंस में उन्होंने पत्रकारों को पनामा सिगरेट पिलायी थी। उन दिनों वह खुद भी यही सिगरेट पीते थे।

एक पत्रकार ने मज़ाक किया, "अभी तक आप पनामा ही पी रहे हैं?" देवराज अर्स ने उसे जवाब दिया था, "क्या मतलब है आपका? देवराज अर्स कभी नहीं बदलेगा। मेरा ब्रांड पनामा है और पनामा ही रहेगा।" कुछ महीनों बाद उनकी दूसरी या तीसरी प्रेस-कांफ्रेंस हुई और उसमें पेश की गयी '555'। उसके बाद से वह 'इंडिया किंग' से नीचे कभी नहीं उतरे। और फिर तो वह पाइप के अच्छे-ख़ासे शौक़ीन हो गये। बेहतरीन नेपोलियन ब्रांडी उनकी प्रिय शराब हो गयी। जल्दी ही उनके पास ब्रायर की लकड़ी के 75 बेहतरीन पाइप इकट्ठे हो गये। अपने ख़ाली समय में वह अकसर 'डनहिल' की 'पाइप बुक' के पन्ने उलटते रहते। साधु-संतों के प्रति प्रकट भक्ति के बावजूद उन्होंने अपने अंदर एक ख़ास क़िस्म की नफ़रत पैदा कर ली, जो अपने देश में राजनीतिज्ञों को काफ़ी लाभ पहुँचाती है। बड़े-बड़े होटलों में खूबसूरत, महकती और हीरे-जवाहरात से लदी महिलाएँ श्रीमती गांधी के बारे में चहकती हुई सुनायी देंगी कि "देखिये कितनी कुलीन हैं, कितनी आलीशान हैं!" वास्तव में यह कितनी बड़ी शक्ति है। लेकिन यही गुण मक्कारी में भी है। अर्स अपने मित्रों से यह कहने में कोई संकोच नहीं करते कि मुख्यमंत्री बनने का "एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह है कि लोग आपको विदेशी वस्तुएँ भेंट करते रहते हैं।"

1969 तक राजनीति के क्षेत्र में अर्स को कोई जानता भी नहीं था। आज वह बहुत बड़ी हस्ती बन चुके हैं। उनकी तरक़्क़ी में श्रीमती गांधी का बहुत बड़ा हाथ है और वह इसे स्वीकार करने को तैयार भी थे। 1979 में श्रीमती गांधी से संबंध टूटने के बाद उन्होंने कहा, "अगर मैं इस समय भी श्रीमती गांधी के प्रति आभार और आदर व्यक्त न करूँ तो यह उचित न होगा। 1969 से मैं बहुत-से राजनीतिक अनुभवों में उनके साथ रहा हूँ। उस दौर में उन्होंने मुझे जिस तरह अपना राजनीतिक समर्थन और सहयोग दिया, मैंने भी उसी तरह उनके कठिनाई

और आवश्यकता के दिनों में उन्हें भरपूर मदद दी है।"

लेकिन इन दोनों के संबंध का टूटना एक स्वाभाविक अनिवार्यता थी। अर्स इतने ज़्यादा महत्वाकांक्षी थे, उन्हें अपनी अपार क्षमताओं का इतना अधिक आभास था कि वह किसी की जी-हुज़ूरी नहीं कर सकते थे। कम-से-कम उस छिछोरे छोकरे को तो अपनी नकेल थमाकर पीछे-पीछे चलने को क़तई तैयार नहीं थे। अर्स उस तरह के व्यक्ति नहीं हैं कि ज़ैलसिंह या जगन्नाथ मिश्र या नारायण-दत्त तिवारी की तरह रहकर संतोष कर लें। 1977 में श्रीमती गांधी की पराजय के बाद उनके मन में श्रीमती गांधी के बारे में कुछ संशय पैदा होने लगे। वह अर्स की नज़रों में कुछ गिर गयी थीं, और निजी बातचीत के दौरान वह कहा करते थे कि अपनी माँ को संजय गांधी ने जिस तरह अपनी मुट्ठी में कर रखा है उसे देखकर आश्चर्य होता है। वह कहा करते थे कि श्रीमती गांधी के साथ सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि वह आधे दर्जन चापलूसों से घिरी हुई हैं जो सुबह, दोपहर, शाम, हर समय उनके पास जाकर उन्हें उलटी-सीधी बातें बताते रहते हैं।

विचारधारा के स्तर पर भी श्रीमती गांधी से अर्स को एक शिकायत थी। वह सोचते थे कि उत्तर भारत में उनकी पराजय का कारण उनके निकम्मे मुख्य-मंत्री रहे हैं। इन मुख्यमंत्रियों ने दल के कार्यक्रमों को लागू नहीं किया। ये ग़रीबों और अमीरों, दोनों को ख़ुश रखना चाहते थे और इसी कारण दोनों के बीच में पिस गये। अर्स की ये ग़द्दारी की बातें संजय गांधी के चमचों गुंडूराव, एफ़० एम० ख़ान और जाफ़र शरीफ़ ने बड़े कर्तव्यभाव से दिल्ली तक पहुँचा दी। ये लोग अर्स के पीछे परछाईं की तरह लगे रहते थे। ये चाहते थे कि अर्स उन जैसे ही बन जायें और जब कभी अर्स अपना साहस प्रदर्शित करते थे तो "विश्वासघात' की कहानियों के साथ ये लोग झट दिल्ली पहुँच जाते और बड़े कर्तव्यभाव से दरबार में उन्हें सुना देते। 1978 के बीच में आपसी संदेह के बीज जड़ पकड़ चुके थे। अर्स ने उन्हें गिराने के लिए हो रहे प्रयासों को भाँप लिया था। उनको इसमें कोई संदेह नहीं था कि प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष के पद से हटाने के बाद उन्हें मुख्यमंत्री की गद्दी से हटाया जायेगा।

चिकमगलूर के चुनाव के दौरान श्रीमती गांधी और अर्स के आपसी संबंधों में निर्णायक मोड़ आया। तब तक एक-दूसरे के साथ वे इसलिए चिपके रहे कि दोनों को एक-दूसरे की ज़रूरत थी। बँगलौर के एक जानकार पत्रकार के शब्दों में श्रीमती गांधी को देवराज अर्स की साख की ज़रूरत थी और अर्स को उनका करिश्मा चाहिए था। लेकिन चिकमगलूर के चुनाव ने श्रीमती गांधी के करिश्मे के खोखलेपन को उजागर कर दिया था। अर्स किसी भी दूसरे आदमी के मुक़ाबले यह बात ज़्यादा अच्छी तरह जानते थे कि अगर चिकमगलूर के चुनाव के अंतिम दिनों में उन्होंने वह सब-कुछ न किया होता जो उन्होंने किया तो क्या परिणाम होता। एक पत्रकार ने इस चुनाव-अभियान के पूरे दौर को बहुत नज़दीक से और बड़े ग़ौर से देखा था। उसने मुझे बताया कि कैसे कुरुबा (गड़रिया) जाति के लोगों में नोटों की गड्डियाँ बाँटी गयीं। तारीकेरे, बिरुर और काडुर क्षेत्रों में श्रीमती गांधी को लिंगायतों के वोट अर्स की बदौलत ही मिले। अर्स ने बहुत-से पत्रकारों से कहा, "मैं आपको बताना नहीं चाहता कि मैंने क्या-क्या किया। आप इसे जीत कहते हैं? कहाँ गया उनका करिश्मा? बताइये मुझे।"

लेकिन वह जानते थे कि अभी संबंध तोड़ने का समय नहीं आया था। उन्हें तब तक श्रीमती गांधी के साथ रहना था जब तक वह किसी दूसरे लंगर का इंतज़ाम

न कर लें। कांग्रेस (इं) के एक प्रबल स्तंभ होने के कारण उन पर जनता सरकार के हमले भी जारी थे। 1979 की जनवरी में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने ग्रोवर आयोग की पहली रिपोर्ट पर कार्रवाई करने का निर्णय किया। इस आयोग ने सात में से चार आरोपों को सही ठहराया था। सबसे महत्वपूर्ण आरोप थे—अपने भाई केंपराज अर्स को कर्नाटक फ़िल्म विकास निगम का निदेशक बनाना, और अपने दामाद एम० डी० नटराज को सभी नियमों को ताक़ पर रखकर ज़मीन देना। जब देवराज अर्स मुख्यमंत्री बने तब तक उनके छोटे भाई पर दुर्भाग्य की मार पड़ चुकी थी और अब वह अपने बड़े भाई अर्स के पास मदद के लिए आये थे। अब पासा पलट गया था। लेकिन केंपराज अपने भाई का अनुग्रह पाने में सफल हुए। कहा यह जाता है कि दोनों भाइयों के बीच समझौता कराने में केंपराज की पत्नी का बहुत बड़ा हाथ रहा। बैंगलौर के एक पत्रकार आइ० के० जागीरदार के अनुसार, जिन्होंने देवराज अर्स पर एक किताब भी लिखी है, जब अर्स बीमार पड़े तो उनकी भावज ललिता ने बीमार मुख्यमंत्री की इतनी तन्मयता से सेवा की कि अर्स ने उसके पति यानी अपने भाई को पुरानी ग़लतियों के लिए माफ़ कर दिया। सत्य जो भी हो, केंपराज कर्नाटक फ़िल्म विकास निगम के निदेशक ही नहीं बना दिये गये, बल्कि वह राज्य की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक हस्ती भी बन गये। इस तरह अर्स के विरोधियों की आँखों में वह किरकिरी की तरह खटकने लगे। और अब तो ग्रोवर आयोग ने भी अर्स के खिलाफ़ भाई-भतीजेवाद का आरोप सत्य ठहरा दिया था।

हालाँकि राज्य सरकार को ही ग्रोवर आयोग की रिपोर्ट के आधार पर नियमपूर्वक मुक़दमा दायर करने का अधिकार था, लेकिन इसके बावजूद अर्स दहल गये। हालाँकि उन्हें दंडित करने का कोई सवाल नहीं था, क्योंकि वह खुद मुख्यमंत्री थे, लेकिन यह रिपोर्ट राज्य में उनके राजनीतिक विरोधियों के हाथ में एक हथियार थी। इसी कारण वह श्रीमती गांधी के साथ कुछ ज्यादा देर तक चिपके रहे। अगर ऐसा न होता तो अलगाव शायद पहले ही हो जाता। बार-बार उन्होंने अपने सार्वजनिक बयानों में जनता पार्टी पर उन्हें और श्रीमती गांधी को दंडित करने की नीति अपनाने का आरोप लगाया। श्रीमती गांधी के फ़ार्म पर उन्हीं दिनों छापा मारा गया था। अर्स ने कहा, कि यह बड़ी विचित्र बात है कि प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई कांति देसाई के ख़िलाफ़ लगाये गये आरोपों की जाँच न कराने के लिए राज़ी न होने का कारण यह बताते हैं कि श्रीमती गांधी ने उन्हें आरोप-मुक्त कर दिया था, और फिर भी उन्होंने उनके (अर्स के) ख़िलाफ़ ग्रोवर आयोग की नियुक्ति की हालाँकि श्रीमती गांधी ने उनको भी (अर्स को) आरोप-मुक्त कर दिया था। "क्या यह राजनीतिक बदले की भावना नहीं है?" उन्होंने पूछा (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 13 फ़रवरी, 1978)।

श्रीमती गांधी और देवराज अर्स, दोनों, जनता सरकार के आक्रमणों से निबटने के लिए ज्यादा शक्ति जुटाने के तरीक़ों की तलाश में थे। चिकमगलूर की जीत के बाद कांग्रेस के बहुत-से लोग इंदिरा गांधी के साथ चले जाने को लालायित हो उठे थे। एक राजनीतिक टीकाकार ने लिखा, "वे ऐसा अनुमान लगाते हैं कि सत्ता में बने रहने का और उसका फ़ायदा उठाते रहने का यही एक तरीक़ा था कि श्रीमती गांधी के चरणों में नतमस्तक हो जाया जाये" (रंजीतराय, बिजनेस स्टैंडर्ड, 10 नवंबर, 1978)। संसद में कांग्रेस (इं) के नेता उन लोगों की गिनती कर रहे थे जो कांग्रेस (इं) में आने को तैयार थे।।

वे जनता पार्टी के एक "बहुमत दल" के साथ चल रही अपनी उस बातचीत की भी चर्चा कर रहे थे जो उनके साथ मिल जाने को "तैयार बैठा" था। उनका संकेत चरणसिंह और उनके साथियों की तरफ़ था। श्रीमती गांधी ने तिहाड़ जेल से सीधे किसान रैली में ही चरणसिंह को उनके जन्म-दिवस के अवसर पर खूबसूरत संदेश के साथ फूलों का एक गुलदस्ता भेजा था। जब यह समाचार चरणसिंह की जाट बिरादरी को मिला तो प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उनके नेता के साथ मोरारजी और जनसंघ के समर्थकों ने जैसा वर्ताव किया था उसे देखते हुए श्रीमती गांधी के साथ समझौते का क़दम ही सही रास्ता नज़र आता था। और इसी आशंका से जनता पार्टी के नेता देसाई और चरणसिंह के बीच समझौते की नयी बातचीत होने होने का आग्रह करने लगे। इससे पहले कि श्रीमती गांधी चरणसिंह के लिए कोई नया दाना डालती, चरणसिंह जनता सरकार में उप-प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री की कुर्सी पर जम चुके थे।

फ़िलहाल यह मोर्चा बंद हो जाने के बाद श्रीमती गांधी और देवराज अर्स दूसरे संभव गँठजोड़ों की तलाश में लग गये। कांग्रेस-अध्यक्ष स्वर्णसिंह तो बिना बुलाये ही उनके साथ जा मिलते, मगर यशवंतराव चह्वाण उन्हें रोके हुए थे। इसके बावजूद स्वर्णसिंह 26 फ़रवरी की रात को श्रीमती गांधी से मिलने गये और वहाँ पर एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर कर आये। यह वक्तव्य दोनों पार्टियों को एक करने की कोशिशों का सूचक था। बयान में कहा गया था, "हम यह आशा करते हैं कि एकता की प्रक्रिया को धक्का पहुँचाने वाला कोई कार्य नहीं किया जायेगा" (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 27 फ़रवरी, 1979। दूसरे दिन सुबह स्वर्णसिंह ने यह आशा जगायी कि दोनों कांग्रेसों की एकता "तीन सप्ताह के अंदर" हो जायेगी। कांग्रेस का एकता-विरोधी खेमा श्रीमती गांधी की चाल को समझता था : उनका लक्ष्य था कांग्रेस को तोड़ना, चह्वाण और उनके साथियों के राजनीतिक जीवन को खत्म करना और ज्यादा-से-ज्यादा कांग्रेसी संसद-सदस्यों को अपने दल में मिलाना। वे जानते थे कि श्रीमती गांधी संजय गांधी को हुई सज़ा और विशेष अदालतों के कारण एकता के लिए बेताब हैं। कांग्रेस के कुछ सदस्य जिनमें देवकांत बरुआ, के० पी० उन्नीकृष्णन, श्रीमती अंबिका सोनी, सौगत राय और दादा रूपवते शामिल थे, दिनेश गोस्वामी के घर पर मिले और उन्होंने एलान किया कि इंदिरा-स्वर्णसिंह वक्तव्य एक "धोखे की टट्टी" है, जिसका उद्देश्य कांग्रेसजनों को ऐसी स्थिति में डाल देना है जहाँ से श्रीमती गांधी उन्हें अपने "स्वार्थों" की पूर्ति के लिए इस्तेमाल कर सकें। वे चाहते थे कि एकता-वार्ता तत्काल रोक दी जाये। एकता का विरोध प्रायः उन क्षेत्रों के लोगों में हो रहा था जहाँ कांग्रेस अभी तक मज़बूत थी, जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, असम, केरल। एक मौक़े पर अर्स ने इंदिरा गांधी, रजनी पटेल, वसंत दादा पाटिल और एन० एम० तिड़के के बीच एक मुलाक़ात का आयोजन किया, लेकिन उसका नतीजा कुछ नहीं निकला। श्रीमती गांधी ने इस शिकायत से बातचीत शुरू की कि कांग्रेस के संसद-सदस्य विशेष अदालतों वाले विधेयक का समर्थन कर रहे हैं। दूसरा पक्ष घुमा-फिराकर "दल के अंदर लोकतंत्र" चलाने और संजय-चौकड़ी के द्वारा हस्तक्षेप न किये जाने आदि की शर्तों पर आ जाता था। श्रीमती गांधी संजय के ख़िलाफ़ कुछ भी सुनते ही भड़क उठती थीं। समस्तीपुर, फ़तेहपुर और लोकसभा के अन्य उप-चुनावों में श्रीमती गांधी की पार्टी की पराजय के बाद एकता-विरोधी खेमा ज्यादा मुखर हो गया। इन पराजयों के कारण श्रीमती गांधी की लहर कुछ

उतर गयी थी, और अचानक उन्हें कई राज्यों में खुद अपने दल में काफ़ी परेशानी उठानी पड़ रही थी। तमिलनाडु में उनकी पार्टी के महत्वपूर्ण लोगों ने उनकी एक मीटिंग में जाने से इंकार कर दिया था। पश्चिम बंगाल में संजय गांधी के चेलों की हरकतों के ख़िलाफ़ तनाव बढ़ रहा था, जिन्हें ज़बरदस्ती उस राज्य में पार्टी के ऊपर थोप दिया गया था।

जब श्रीमती गांधी मार्च में कलकत्ता गयीं तो खुद उनके स्वागत-समारोह में दो गुटों के बीच एक घिनौना और हिंसक झगड़ा हो गया। अपने होटल में लौटने के बाद श्रीमती गांधी ने अपनी पार्टी के वहाँ के कुछ सदस्यों से साफ़-साफ़ कह दिया, "अगर कुछ लोग संगठन के साथ संजय गांधी की संबद्धता को पसंद नहीं करते तो वे दल छोड़ देने को स्वतंत्र हैं।" श्रीमती गांधी ने यह स्पष्ट कर दिया कि संजय के सवाल पर कोई समझौता नहीं हो सकता और न ही वह संजय के अंतरंग मित्र कमलनाथ के ख़िलाफ़ कोई शिकायत सुनना चाहती थीं। कमलनाथ उन दिनों संगठन में अपनी तानाशाही चला रहे थे। उन्होंने बड़े रोब से पूछा, "क्या दल के किसी स्तर पर विभाजित निष्ठा नहीं है?" वह उन लोगों को समझ नहीं पा रही थीं जो उनके प्रति तो निष्ठावान थे, लेकिन संजय के प्रति नहीं। इस बात को वह बहुत बड़ी लानत समझती थीं।

कलकत्ता में प्रकट किया गया श्रीमती गांधी का यह रुख़ एकता-विरोधी खेमे के रुख़ को और कड़ा कर देने का कारण बना। अब उनका नारा था : "समर्पण नहीं करेंगे।" यशवंतराव चह्वाण के आशीर्वाद से शरद पवार ने एकता के प्रयासों के ख़िलाफ़ भरपूर मुहिम छोड़ दी। अंततः 12 मार्च को कांग्रेस ने घोषणा कर दी कि एकता-वार्ता का अध्याय समाप्त हो गया है। अब कोई एकता-वार्ता नहीं होगी। जब कांग्रेस-अध्यक्ष स्वर्णसिंह चह्वाण को जन्म-दिवस की बधाई देने गये तो चह्वाण ने खिलकर कहा, "यह मेरा एक सबसे खुशगवार जन्म-दिवस है।" सतारा के 66 वर्ष के मराठा नेता ने गद्गद होकर पत्रकारों से कहा, "जो कुछ होना था वह हो गया। श्रीमती गांधी सम्माननीय साथी नहीं चाहतीं, वह तो समर्पण करने वाले क़ैदी चाहती हैं।" ऐंटनी बहुत प्रसन्न थे और बरुआ सही साबित होने के गर्व से भरे हुए थे : "जो कुछ मैं एक साल से कह रहा हूँ वही हुआ। मैं हवाई बातें नहीं करता हूँ।"

जहाँ तक श्रीमती गांधी और कांग्रेस की बात थी, एकता का यह प्रसंग समाप्त हो चुका था, लेकिन देवराज अर्स के लिए नहीं। यह अध्याय समाप्त कर दिये जाने के दो ही दिन बाद उन्होंने बँगलौर में पत्रकारों को बताया कि वह एकता की नयी कोशिशें शुरू करेंगे और यह कि श्रीमती गांधी एकता के ख़िलाफ़ नहीं हैं, न ही संजय गांधी का एकता से कुछ लेना-देना है—"वह इस मामले में कहीं भी तसवीर में नहीं आता।" तब तक वह अपनी ही योजना में लग गये थे यानी श्रीमती गांधी को छोड़कर एकता करना। 17 मार्च को ग्रोवर आयोग की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिये जाने के बाद से वह काफ़ी परेशान थे। उन्हें इस संबंध में कांग्रेस (इं) के बाहर का समर्थन चाहिए था। और यह श्रीमती गांधी और उनके पुत्र के रहते संभव नहीं था। जब वह श्रीमती गांधी के प्रति पूरी निष्ठा रखते थे उस समय भी उन्होंने दूसरे दलों के नेताओं के साथ अपने पुराने संबंध तोड़े नहीं थे। केरल के ऐंटनी, महाराष्ट्र के शरद पवार और रजनी पटेल, दिल्ली के चंद्रशेखर—सबसे उनके संबंध बरक़रार थे। वह अपनी ओर से ही नयी संभावनाओं की तलाश करने लगे।

बंबई में गोयनका का अतिथि-गृह, 'एक्सप्रेस टावर' राजनेताओं, उद्योगपतियों और पत्रकारों का अच्छा ख़ासा मिलन-स्थल था। यहीं पर देवराज अर्स की चंद्रशेखर, जार्ज फर्नाडीज़, शरद पवार और रजनी पटेल से एक महत्वपूर्ण मुलाक़ात हुई। शेखर और जार्ज अपने दल के बूढ़े खूसटों से परेशान हो गये थे। परेशान तो दूसरे भी थे, लेकिन कोई रास्ता नहीं निकाल पा रहे थे। हर आदमी समझ रहा था कि जनता पार्टी इस तरह नहीं चल सकती, पर यह कोई नहीं जानता था कि पार्टी कब और कैसे टूटेगी? यहीं पर उन्होंने श्रीमती गांधी को छोड़कर सभी कांग्रेसजनों की एकता की संभावना के बारे में मशविरा किया। चंद्रशेखर और जार्ज इस बात पर सहमत थे कि पहले मोरारजी देसाई को और फिर कुछ समय बाद शायद जनसंघ को सबसे अलग कर देना होगा। लेकिन जनसंघ को साथ रखने पर किसी को आपत्ति नहीं थी, देवराज अर्स तक को नहीं। चंद्रशेखर ने इस विचार को अख़बारों में छपने दिया। उन्होंने एक समाचार एजेंसी को बताया कि वह कांग्रेस के इंदिरा-विरोधी गुट के साथ तालमेल के पक्ष में हैं। जहाँ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध अभियान का सवाल था, उन्होंने कहा कि "यह तो राजनीति है।" कुछ ही दिन बाद चंद्रशेखर और यशवंतराव चह्वाण की बंबई में मुलाक़ात एक रात्रि-भोज में हुई। चह्वाण उनसे सहमत थे। चह्वाण ने चंद्रशेखर से कहा कि निश्चय ही जनता पार्टी और कांग्रेस के इंदिरा-विरोधी गुट के बीच सहयोग हो सकता है।

अर्स ने पहले ही चरणसिंह से अपनी "दत्तक पुत्री" के माध्यम से, जो भारतीय विदेश-सेवा में अब दिल्ली में अफ़सर हैं, संपर्क बना रखा था। यह महिला एक तरह से देवराज अर्स की राजनीतिक संपर्क-अधिकारी का काम करती थीं। अर्स ने जगजीवनराम से भी गुप्त बातचीत शुरू कर रखी थी और उन्हें समझा रहे थे कि चरणसिंह के हाथ से समय निकलता चला जा रहा है और जगजीवनराम ही स्वाभाविक नेता हो सकते हैं।

अर्स अच्छी तरह जानते थे कि फ़ौरन कुछ होने वाला नहीं। वह तो केवल संभावनाओं को टटोल रहे थे और इस सिलसिले में उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि ग्रोवर आयोग की रिपोर्ट के बारे में उन्हें ज़्यादा चिंता नहीं करनी चाहिए। बहुत-से मित्र हैं जो उनकी मदद करेंगे, विशेष रूप से अगर वह श्रीमती गांधी से अलग हो जायें। और यही उनका अगला क़दम होने वाला था। उन्होंने एक-एक क़दम पर विचार किया और फ़ैसला किया कि वह जल्दबाजी में कुछ नहीं करेंगे, न ही वह यह धारणा बनने देंगे कि संबंध वह तोड़ना चाहते हैं। धीरे-धीरे उन्होंने एक-एक करके क़दम उठाये।

21 अप्रैल, 1979 को उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) समिति में पहला विस्फोट किया। उन्होंने कहा, "लोग चोरी-छुपे संजय गांधी के पास न जायें, वर्ना मैं उनका भंडाफोड़ करूँगा।" और बड़ी चालाकी से उन्होंने यह भी कहा कि उनमें और श्रीमती गांधी में इस सवाल पर दरार पैदा करने की कोशिश दल और देश, दोनों के लिए नुक़सानदेह होगी।...मैं कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों और श्रीमती गांधी के नेतृत्व में विश्वास रखता हूँ।...लेकिन मुझे उनका चापलूस समझने की ग़लती कोई न करे...।"

अर्स जानते थे कि यह श्रीमती गांधी को जान-बूझकर दी गयी चुनौती थी। उन्होंने कहा भी चुनौती के अर्थ में ही था। निशाना ठीक जगह लगा था। श्रीमती

गांधी ने भी संजय के बारे में अर्स की टिप्पणी के प्रति अपनी नाराज़गी को छुपाया नहीं। जब अर्स अपना भाषण समाप्त करके बैठ गये तो लोगों ने देखा कि श्रीमती गांधी अर्स के साथ बड़े आवेश के साथ बात कर रही थीं। अर्स उठ खड़े हुए और 'नमस्ते' कहकर चले गये।

संजय पर प्रहार करने का सिलसिला आगे बढ़ाया श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने। कुछ ज्यादा तल्ख़ी के साथ उन्होंने कहा, "कुछ लोगों ने आपके आसपास शनि का घेरा डाल रखा है। वे आपके और आपके लड़के के नाम पर दुकान लगाते हैं।"

श्रीमती गांधी इसे बरदाश्त नहीं कर सकती थीं। वह बरस पड़ीं। उन्होंने कहा, "यह मीटिंग समस्याओं पर बातचीत करने के लिए बुलायी गयी है, व्यक्तियों पर नहीं। मैं इसकी अनुमति नहीं दूंगी।" श्रीमती सिन्हा को पार्टी के मुसटंडों ने शोर मचाकर बिठा दिया। कुछ लोगों ने तो उन्हें गालियाँ तक दीं। श्रीमती सिन्हा ने अपने काग़ज़ात फ़ेंक दिये और घोषणा की कि वह विरोध प्रकट करने के लिए बहिर्गमन कर रही हैं। बाहर आकर उन्होंने कहा, "हम श्रीमती गांधी को अपने नेता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन उनके कुत्तों को नहीं।"

दोनों नेताओं के रिश्तों में चरमराहट अप्रैल के अंत में तब पैदा हुई जब देवराज अर्स ने जनता पार्टी के ख़िलाफ़ सड़कों पर संघर्ष करने की संजय गांधी की योजना में भाग लेने से तक़रीबन इंकार कर दिया। कर्नाटक में संजय गांधी के लोग विशेष अदालतों के विरोध में 16 मई को दिल्ली में आयोजित रैली के लिए कर्नाटक से भारी संख्या में लोगों को लाना चाहते थे। लेकिन बिना सरकारी सहायता के इसकी व्यवस्था करना संभव नहीं था। अर्स ने बजाय सहायता करने के उनके पर काट देने का फ़ैसला किया। कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस (इं) कमेटी की एक बैठक में उन्होंने एक प्रस्ताव पास करवा लिया जिसमें कहा गया कि कोई भी मंत्री और विधायक इस रैली में भाग नहीं ले सकता। उन्होंने पत्रकारों को बताया, "यह ठीक है कि हमें विरोध करने का अधिकार है। लेकिन यह काम आम सभाओं और इसी तरह के अन्य तरीक़ों से होना चाहिए। कोई हिंसा नहीं होनी चाहिए। अगर हम हिंसा करते हैं तो हम अपने ही सिद्धांतों के विरुद्ध आचरण करेंगे।" (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 27 अप्रैल, 1979)। उनका तर्क बहुत सीधा था कि अगर क़ानून और व्यवस्था की समस्या उठ खड़ी होती है और मंत्री तथा विधायक गिरफ़्तार किये जाते हैं तो क्या होगा? इस तर्क को श्रीमती गांधी और संजय गांधी तो नहीं समझ सकते थे। कर्नाटक में विशेष अदालतों के ख़िलाफ़ होने वाले प्रदर्शनों के सिलसिले में अर्स ने यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक प्रदर्शन संवैधानिक सीमाओं के अंदर रहेगा तब तक ही वह उसे बरदाश्त करेंगे। उन्होंने घोषणा की, "अगर आंदोलनकारी सीमाओं को पार करते हैं तो मैं उन्हें जेल में बंद कर दूंगा।"

अहमदाबाद में 6 मई को कांग्रेसजन के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए श्री अर्स ने कहा, "इसमें कोई शक नहीं कि व्यक्ति महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन दल की नीतियाँ और कार्यक्रम व्यक्तियों से ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं।" निश्चय ही वह धीरे-धीरे ज्यादा दबंग होते जा रहे थे।

8 मई को दिल्ली से जाफ़र शरीफ़ बँगलोर वापस आये। पत्रकारों से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि वह माँग करेंगे कि देवराज अर्स प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष का पद छोड़ दें। जब किसी अख़बार ने उस पर ध्यान नहीं दिया तो जाफ़र शरीफ़ ने श्रीमती गांधी को अगले दिन सुबह एक तार भेजकर यह माँग

की कि श्री अर्स को प्रदेश के कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद से हटा दिया जाये। तार की प्रतियाँ उन्होंने अख़बारों के दफ़्तरों में भेज दीं ताकि उसका प्रकाशन हो सके। जो भी श्रीमती गांधी की पार्टी के काम करने के ढँग को जानता है वह समझ सकता है कि जाफ़र शरीफ़ श्रीमती गांधी के कहने पर यह सब कर रहे थे—या संजय के कहने पर, जो एक ही बात थी। दूसरे दिन एक विधायक की लड़की की शादी के सिलसिले में चिकमगलूर जाते हुए श्रीमती गांधी बँगलौर रुक गयीं। वह दिन-भर बँगलौर में रहीं, लेकिन मुख्यमंत्री, इस्पात-मंत्री बीजू पटनायक के साथ कुद्रेमुख में थे। उस शाम श्रीमती गांधी से क़रीब आधा दर्जन लोग मिले। जब भी देवराज अर्स की बात चली, उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा, "वह उन लोगों से मेल-जोल बढ़ा रहे हैं जो मुझे मार डालना चाहते हैं।" श्री अर्स की हर गतिविधि की जानकारी उन्होंने रखी थी। उन्हें मालूम था कि अर्स जनता पार्टी के नेताओं से बंबई में मिले थे। चंद्रशेखर और फर्नांडीज़ के साथ उन्होंने भोजन किया था और कई दूसरे नेताओं के साथ उनकी बातचीत हुई थी। उन्होंने कहा, "मैं षड्यंत्र-कारियों को अब बरदाश्त नहीं करूँगी।" रायचूर ज़िले के एक भूतपूर्व मुस्लिम विधायक ने श्रीमती गांधी को बताया कि विधानसभा के पिछले चुनावों में वह केवल दो-तीन सौ वोटों से हार गये थे। अगर वह उनके चुनाव-क्षेत्र में आतीं तो उनकी जीत निश्चित थी। इस पर श्रीमती गांधी ने बड़ी तल्खी से कहा, "मैं आपके चुनाव-क्षेत्र में क्यों आती? आपके मुख्यमंत्री कहते हैं कि उनकी मदद से तो चिकमगलूर से कोई भी लड़की जीत सकती थी। आप अर्स को अपने चुनाव-क्षेत्र में ले जाते, मुझे नहीं।" वास्तव में यह टिप्पणी तो आचार्य कृपालानी की थी। अर्स ने तो उसे विधानसभा में विपक्ष के नेता के जवाब में दोहरा-भर दिया था। फिर भी दिल्ली के एक अखबार ने इसे बड़ी प्रमुखता से छापा था और श्रीमती गांधी का ध्यान इस ओर फ़ौरन दिलाया गया था।

बँगलौर जाने से पहले श्रीमती गांधी ने यह निर्देश भेज दिया था कि 11 मई को प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक रखी जाये। वह चाहती थीं कि अध्यक्ष-पद के सवाल को अंतिम रूप से निपटा दिया जाये। लेकिन अर्स के आदमी बैठक में बड़ी संख्या में घुस आये और जब श्रीमती गांधी और अर्स पैलेस-मैदान में आये तो वह प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक कम और आम सभा ज्यादा लग रही थी। वह बहुत क्रुद्ध हुईं, लेकिन कर कुछ न सकीं। शुरू में ही बोलते हुए श्री अर्स ने यह ऐलान कर दिया कि वह कर्नाटक कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष-पद से हट जायेंगे, लेकिन नये अध्यक्ष का चुनाव कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य ही करेंगे। जब श्रीमती गांधी बोलने खड़ी हुईं तो वह अपना क्रोध दबा नहीं सकीं। वह शुरू से ही प्रदेश कांग्रेस कमेटी की 'निष्क्रियता' के खिलाफ़ लंबी-चौड़ी शिकायतें करती रहीं। उन्होंने कहा कि जब शाह आयोग की बैठक बँगलौर में हो रही थी तो प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने कुछ भी नहीं किया। युवक कांग्रेस के कुछ लड़कों को आयोग के सामने प्रदर्शन करने की ज़िम्मेदारी निभानी पड़ी। किसी ने संजय का नाम भी नहीं लिया था, लेकिन उन्होंने संजय की वकालत की। उन्होंने कहा कि लोग आते हैं और मुझसे कहते हैं कि संजय को कम-से-कम एक वर्ष तक के लिए राजनीति से अलग कर दिया जाये (इशारा देवराज अर्स की ओर था)। मैं ऐसा क्यों करूँ? जनता पार्टी उसे परेशान कर रही है और कांग्रेस कुछ करने को तैयार नहीं है। ऐसी हालत में अगर वह कुछ करता है तो मैं रोकनेवाली कौन हूँ? मैं क्यों रोकूँ?"

दोपहर बाद उसी दिन प्रेस-कांफ्रेंस में प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के बारे में अनिवार्य सवाल पूछा गया : "क्या अर्स के पद का झगड़ा खत्म हो गया है?" इस पर श्रीमती गांधी ने कहा, "इस सवाल पर दिल्ली में जाकर और बातचीत करनी होगी।"

श्रीमती गांधी की 3 जून की बेंगलौर-यात्रा तक दरार पूरी तरह पड़ चुकी थी। इसी बीच तंजावुर में फिर एक झटका लग चुका था। और उन्हें पक्का भरोसा था कि तमिलनाडु के मुख्यमंत्री रामचंद्रन को अपना समर्थन वापस लेने के लिए राजी करने के पीछे देवराज अर्स ने "शैतानी" की भूमिका अदा की थी। फिर भी उस दिन सुबह जब बेंगलौर के हवाई अड्डे पर पत्रकारों ने उनसे पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि उनके और देवराज अर्स के मतभेदों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर छापा जा रहा है। वह एक और विधायक की लड़की की शादी में भाग लेने चिकमगलूर चली गयीं। इस विवाह में अर्स को भी जाना था लेकिन अर्स ने फ़ैसला किया कि वह शाम वाले स्वागत-समारोह में जायेंगे, सुबह वाली रस्म में नहीं। नव-दंपत्ति को आशीर्वाद देने के बाद श्रीमती गांधी डेढ़ बजे कार से बेंगलौर लौट आयीं। अर्स भी कार से ही क़रीब दो घंटे बाद सड़क के रास्ते ही बेंगलौर से रवाना हुए। बेंगलौर और चिकमगलूर के बीच दो सड़कें हैं। एक हसन होकर जाती है और दूसरी अरसीकेरे होकर। बेंगलौर से रवाना होने के पहले मुख्यमंत्री को सरकारी सूचना मिल गयी थी कि श्रीमती गांधी अरसीकेरे होकर आ रही हैं। यह रास्ता छोटा और चालू रास्ता था।

जैसे ही कार रवाना हुई, अर्स के एक साथी ने संकोच करते हुए पूछा कि हम लोग किस रास्ते से चलेंगे? अर्स ने पाइप को चबाते हुए बड़ी लापरवाही से कहा, "हसन वाले रास्ते से।" उनके उस साथी ने अर्स की उस कुटिल मुसकराहट को समझने में भूल नहीं की। अर्स से कहा, "मैं नहीं चाहता कि मैं श्रीमती गांधी से रास्ते में टकरा जाऊँ।" अर्स ने अपने इरादों को बिलकुल साफ़ कर दिया था। दस साल के निकट संबंधों के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो रहे थे। अपने पाइप को दाँत से दबाते हुए अर्स ने और स्पष्ट करते हुए कहा, "या तो वह मेरी गरदन मरोड़ देंगी या मैं उनकी गरदन मरोड़ दूंगा।" ऐसा लग रहा था कि अर्स अपने-आप से बातें कर रहे थे, अपने साथी से नहीं बोल रहे थे। "वह नयी चालें नहीं जानतीं,...उनका पाला मेरे जैसे राजनेता से नहीं पड़ा होगा। केवल मैं ही उन्हें सबक़ सिखा सकता हूँ। मैं जानता हूँ वह क्या करने जा रही हैं। और मेरे पास उनकी हर चाल की काट मौजूद है।"

21 जून को जब देवराज अर्स ने श्रीमती गांधी के "कारण बताओ" नोटिस का जवाब भेजा तब तक यही स्थिति रही। अपने जवाब में उन्होंने लिखा था, "आप हम लोगों के साथ जब बर्ताव करती हैं तो पूरी तरह भूल जाती हैं कि हम आपके घरेलू नौकर या सूबेदार नहीं हैं। हम चुने हुए प्रतिनिधियों की संस्था और उनके चुने हुए पदाधिकारी हैं। बँधुआ मज़दूरों, छोटे कर्मचारियों और मातहतों की तरह आपका जो बर्ताव है उसे बरदाश्त करने से मैं इंकार करता हूँ।" इसके कुछ दिन बाद अर्स कांग्रेस (इं) से निकाल दिये गये। उन्होंने अपना दल 'कर्नाटक कांग्रेस' के नाम से खड़ा कर लिया।

अचानक श्रीमती गांधी परेशानी में पड़ गयीं। जिसकी उन्हें अपेक्षा थी वह नहीं हुआ। उन्हें आशा थी कि अर्स के समर्थक डूबते हुए जहाज में से चूहों की तरह कूदकर भागेंगे, लेकिन उनका यह अनुमान ग़लत निकला। कर्नाटक में संजय

के आदमियों ने सोचा था कि श्रीमती गांधी की इस कार्रवाई से राज्य में मध्यावधि चुनाव हो जायेगा और मतदाताओं पर श्रीमती गांधी के चामत्कारिक असर को देखते हुए अर्स के समर्थक श्रीमती गांधी के पैरों पर गिरने लगेंगे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। सरकार गिराने के विशेषज्ञ यशपाल कपूर बेंगलौर के एक होटल में नोटों के बंडल लेकर बैठे, लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला। कर्नाटक श्रीमती गांधी के हाथ से निकल गया।

8

जनता सरकार का पतन

जनता सरकार के पतन के पीछे बहुत-से कारण काम कर रहे थे। प्रधानमंत्री बनने की चौधरी चरणसिंह की अमिट आकांक्षा, लोहियावादियों की विध्वंसक संस्कृति, औद्योगिक घरानों की चिंता और डर, अंदर-ही-अंदर भारत की रूसी लॉबी की चालबाज़ियाँ, आपात-स्थिति के परिणामों से बच निकलने की श्रीमती गांधी और उनके बेटे की निराशोन्मत्त कोशिशें और इनसे बढ़कर देश पर शासन करने की समस्याओं से पूरी तरह निपटने में जनता सरकार की नाकामयाबी।

जनता पार्टी की अगर कोई राजनीतिक संस्कृति थी भी तो वह बहुत ही विचित्र राजनीतिक संस्कृति थी जिसमें विभिन्न राजनीतिक धाराओं का समावेश था। इसमें जनसंघ की संस्कृति थी जिसकी जड़ें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में थीं। इसका सारा ज़ोर एकात्मक अनुशासन और ऊपर के आदेशों को बिना सवाल खड़े किये समर्पित भाव से स्वीकार कर लेने की परंपरा पर था। जनता पार्टी में एक और संस्कृति थी, जिसकी जड़ें स्वतंत्रता से पहले के दिनों की कांग्रेस में थीं। अब इसके कुछ अवशेष ही बचे थे, क्योंकि राजनीतिक मंच पर श्रीमती गांधी के आने के बाद ज़्यादा-से-ज़्यादा हथिया लेने की कोशिश करनेवाले कांग्रेसियों का वर्चस्व हो गया था। कांग्रेस में सत्तालोलुप वह पीढ़ी हावी थी जिसकी प्रतीक स्वयं श्रीमती गांधी थीं। जनता पार्टी में वे पुराने कांग्रेसी आये थे जिन पर काफ़ी जंग लग चुका था और जिन्हें दक़ियानूसी कहा जाता था। श्रीमती गांधी की प्रगतिशीलता की लहर आने के बाद कांग्रेस के ये लोग घूरे पर फेंक दिये गये थे। इनके प्रतीक 83 साल के बूढ़े मोरारजी देसाई थे। देवी-देवताओं की दुहाई देनेवाले, चर्ख़ा चलानेवाले और मूत्र-चिकित्सा में विश्वास रखनेवाले मोरारजी देसाई। यह एक ऐसे प्रतीक थे जैसे कबाड़ी बाज़ार से ख़रीदकर लाये गये हों। लेकिन अपने तमाम दक़ियानूसीपन और अक्खड़ व्यवहार के बावजूद उनमें पुरानी दुनिया के कुछ संस्कार भी थे। वह टूट सकते थे, पर झुक नहीं सकते थे। जनता पार्टी में एक और धारा आयी थी जो सत्तालोलुप थी, चालबाज़ी की राजनीति की विशेषज्ञ थी और

अंदर से अमीरपरस्त थी। श्रीमती गांधी की कांग्रेस से जनता पार्टी में आये इस संस्कृति के लोग थे बीजू पटनायक, हेमवतीनंदन बहुगुणा, नंदिनी सतपथी और बाबू जगजीवनराम। जगजीवनराम यानी राजनीतिक सड़ाँध के प्रतीक। जगजीवन राम में वह तमाम कालिमा थी जो आज़ादी के बाद कांग्रेस पर छा गयी थी। जगजीवनराम की यह कालिमा उनके अच्छे प्रशासक होने की बहुप्रचारित क्षमता से ढँक नहीं पाती थी। जनता पार्टी में एक और छोटी-सी उप-संस्कृति के लोग भी थे जो कांग्रेस से आये थे। इनमें चन्द्रशेखर थे। वह वर्षों श्रीमती गांधी के साथ रहे थे, लेकिन उनकी संस्कृति के साथ एकाकार नहीं हो पाये थे। यह एक ऐसा "हैमलेट" जैसा चरित्र था जिनका तन तो उनके साथ था, मगर मन नहीं। आचार्य नरेंद्रदेव की राजनीतिक पाठशाला में पढ़े होने के कारण वह कांग्रेस में एक बाहरी तत्व ही बने रहे। लेकिन यही उनकी शक्ति बन गयी। जैसे-जैसे उनका प्रगतिशील-विरोध भाव उभर कर सामने गया वैसे-वैसे वह उनकी आस्था बनती गयी।

इसके अलावा जनता पार्टी में समाजवादी थे। या यों कह लीजिये कि बचे हुए समाजवादी। समाजवादी आंदोलन में टूटने और जुड़ने का सिलसिला लंबे अरसे तक चला। कम-से-कम छः बार यह पार्टी टूटी। समाजवादियों की दो धाराएँ जनता पार्टी में आयीं। इसमें कुछ तो प्रजा समाजवादी पार्टी वाले थे—एम० एम० जोशी, एन० जी० गोरे, मधु दंडवते जैसे लोग। ये लोग राजनारायण, मधु लिमये और जार्ज फर्नांडीज़ से बिलकुल भिन्न राजनीतिक चरित्र के थे। राजनारायण ने डॉ० लोहिया के तमाम रूखेपन, बेढंगेपन को विरासत के रूप में अपना लिया था और उसे अपनी अशिष्टता से सौ गुना बढ़ा लिया था। उन्होंने अपने गुरु के कोई भी महान गुण नहीं अपनाये। मधु लिमये और कुछ अन्य लोग डॉ० लोहिया के बौद्धिक वारिस होने का अभिनय करते हैं। इस पक्ष के सिद्धांत-वेत्ता और जुझारू ट्रेड यूनियन-नेता जार्ज फर्नांडीज़ उस अराजकतावादी व्यक्ति की तरह हैं जिन्हें पालतू बना लिया गया हो और जो अचानक एक कुशल प्रशासक के तौर पर अपनी क्षमता प्रदर्शित करने को बेताब हों। लेकिन यह भूमिका उनके लिए मुनासिब नहीं थी। भारतीय राजनीति का यह क़बीला विध्वंस और पार्टी तोड़ने का विशेषज्ञ था। वे केवल तोड़ सकते थे, जोड़ नहीं सकते थे।

श्रीमती गांधी के आपातकालीन शासन के सीधे परिणाम के रूप में जनता पार्टी के बाड़े में ये सारे ज़ानवर इकट्ठे हुए थे। नये शासकों को छोड़कर सभी यह अच्छी तरह समझते थे कि इंदिरा-संजय की "तानाशाही" के ख़िलाफ़ क्रोध और घृणा के कारण ही वे सत्ता में आ पाये हैं। लेकिन श्रीमती गांधी के पतन के साथ पैदा हुए उन्माद ने उन्हें वस्तुस्थिति के प्रति अंधा बना दिया था। राजघाट पर शपथ लेने के एक घंटे के भीतर नेताओं के राजनीतिक दंभ का टकराव शुरू हो गया था। इस वृद्ध शासनतंत्र के सभी लोगों ने ऐसा व्यवहार करना शुरू कर दिया कि जैसे जीत उन्हीं के कारण हुई हो। देसाई फिर से "सर्वोच्च" की तरह व्यवहार करने लगे। आखिर उनकी अध्यक्षता में ही तो जनता पार्टी की जीत हुई थी। उन्होंने उस जगह से सूत्र संभाला जहाँ से पिछली बार वह प्रधानमंत्री बनते-बनते रह गये थे। वह हमेशा सोचते थे कि नेहरू के बाद प्रधानमंत्री के वाजिब उत्तराधिकारी वही हैं, लेकिन राजनीति के "छोटे-छोटे लोगों" ने अपनी "चालबाजियों" से उन्हें प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया। बार-बार प्रधानमंत्री बनने का दावा उन्होंने किया, लेकिन हर बार एक "बित्ता-भर की लड़की" ने उनके प्रयासों

को विफल कर दिया। वह लड़की तो इस पद के "योग्य नहीं थी" और जिसका विरोध करना मोरारजी देसाई अपना कर्तव्य समझते थे। मोरारजी देसाई से भी ज्यादा चौधरी चरणसिंह अपने-आपको जनता पार्टी का असली निर्माता और उससे भी ज्यादा उसकी जीत का कारण समझते थे। बाद में उन्होंने दावा किया कि अमृतसर से पटना तक जनता पार्टी की जो जीत हुई है वह केवल उन्हीं के कारण हुई है। अगर प्रधानमंत्री के ताज का असली कोई हक़दार है तो वह हैं। जगजीवनराम भी ऐसा ही सोचते थे। उन्होंने भी प्रधानमंत्री बनने की आकांक्षा मोरारजी देसाई और चौधरी चरणसिंह की तरह ही पाली थी। उन्हें भी कोई शक नहीं था कि जीत उन्हीं के कारण हुई है। जगजीवनराम को पक्का विश्वास था कि चुनाव की घोषणा के बाद अगर उन्होंने धमाका न किया होता तो श्रीमती गांधी फिर सत्ता में आ जातीं। अगर वह आज प्रधानमंत्री नहीं बन सकते थे तो उन्होंने श्रीमती गांधी का साथ ही क्यों छोड़ा? अगर केवल मंत्री ही बने रहना था तो तानाशाही के खिलाफ़ उनकी लड़ाई का तुक ही क्या था? मंत्री तो उन्हें श्रीमती गांधी भी बना देतीं। और अगर उन्होंने सौदेबाज़ी की होती तो शायद उप-प्रधानमंत्री भी बना देतीं। उनके सहायक हेमवतीनंदन उनसे ज्यादा निराश थे। उन्होंने यह आशा बाँध रखी थी कि बाबूजी की कुर्सी के पीछे से वह शासन चलायेंगे। यही उम्मीद उनके रूसी मित्रों को भी थी जिन्होंने, कहा जाता है कि, सी० एफ़० डी० के चुनाव-कोष में काफ़ी धन लगाया था।

लेकिन जनता पार्टी की एकता के लिए सबसे बड़ा ख़तरा चौधरी चरणसिंह साबित हुए। एक दिन के लिए भी वह सरकार और दल में अपनी दोयम स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाये थे। उनका अपार दंभ जे० पी० के० आंदोलन के दिनों में भी समस्या बना हुआ था। मार्च, 1975 में संसद के समक्ष प्रदर्शन की तैयारियाँ चल रही थीं। लोकसंघर्ष समिति ने एक पोस्टर छपवाया जिसमें उन विपक्ष के नेताओं के नाम छापे जो उसमें भाग लेने वाले थे। कुछ पोस्टर भालोद के दफ़्तर में भेजे गये। जब चरणसिंह ने पोस्टरों को देखा तो वह आपे से बाहर हो गये। उनका नाम दूसरे नंबर पर था। उन्होंने क्रोध में कहा, "यह मुझे प्रधानमंत्री न बनने देने की चाल है।" उन दिनों किसी विपक्षी नेता का प्रधानमंत्री बनने की बात कहना सपना देखने के समान था। भालोद के दफ़्तर ने उन पोस्टरों को लेने से इंकार कर दिया। और अंततः लोक संघर्ष समिति ने दूसरा पोस्टर छपवाकर भालोद के दफ़्तर में भेजा जिसमें चौधरी चरणसिंह का नाम ऊपर था!

तनाव और खींचातानी तो बिलकुल शुरू में ही पैदा होने लगी थी। चुनाव कराने की श्रीमती गांधी की घोषणा के दो दिन बाद ही विपक्ष के नेता दिल्ली में श्रीमती गांधी के खिलाफ़ संयुक्त रूप से चुनाव संघर्ष में उतरने की रणनीति पर विचार करने के लिए मिले थे। पार्टियों के विलय के बारे में चौधरी चरणसिंह से ज्यादा आतुर कोई नहीं था। मोरारजी देसाई के लिए दलों का विलय एक "पाप" जैसा था। संगठन कांग्रेस के जो लोग भी विलय के लिए तैयार भी थे, वे अपनी शर्तों पर विलय चाहते थे। हालाँकि संगठन कांग्रेस बिलकुल ख़त्म-सी हो गयी थी, फिर भी उसके नेता कांग्रेस की महान और लंबी परंपरा की ऊँची-ऊँची बातें करते थे। वे कहते थे कि अगर विलय होना है तो सभी दल संगठन कांग्रेस में विलीन हो जायें। चौधरी चरणसिंह के लिए यह अभिशाप था। वह किसी ऐसी पार्टी में सम्मिलित नहीं हो सकते थे जिसके अध्यक्ष वह स्वयं न हों। जनसंघ थोड़ा साव-धान था। उसने अपने पत्ते नहीं खोले। लेकिन ऐसा लगता था कि उसके नेता

किसी भी ऐसे क़दम के साथ हैं जो श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ विपक्ष को एकजुट कर दे। 1974 में उत्तर प्रदेश के विधानसभा के चुनावों में जनसंघ की जो हार हुई थी उससे जनसंघ के विचारक इस नतीजे पर पहुँच गये कि अकेला जनसंघ जहाँ तक बढ़ गया है उससे आगे नहीं बढ़ सकता। इस पार्टी पर सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी होने का लेबल लग चुका था। इसे दुकानदारों की पार्टी कहा जाता था। नेता इसे धर्म-निरपेक्ष और प्रगतिशील छवि प्रदान करना चाहते थे। वे सोचते थे कि अगर राजनीति में उन्हें और आगे बढ़ना है तो ऐसा करना ही होगा। पार्टी को अपना कलंक धोना था और अपने आधार को फैलाना था।

जनता पार्टी बनाने का विचार जब स्वीकार कर लिया गया तो चरणसिंह बड़े खुश हुए। उन्होंने मान लिया कि वही इस नयी पार्टी के स्वाभाविक नेता होंगे। और किसने इस पार्टी को एक बनाने की कोशिश की थी ? जब उनके ही भालोद दल के महामंत्री पीलू मोदी ने पार्टी के अध्यक्ष-पद के लिए मोरारजी देसाई का नाम सुझाया तो उन्हें खासा धक्का लगा। बाद में चौधरी चरणसिंह ने कुपित होकर पीलू मोदी पर आरोप लगाया, "तुमने मेरा नाम इसलिए प्रस्तावित नहीं किया कि मैं गुजराती नहीं हूँ।" उन्हें ऐसा लगा कि जैसे उनकी सारी ज़िंदगी बरवाद हो गयी। यही उन्होंने उत्तर प्रदेश-निवास में अपने अनुयायियों को बताया। उनके अनुयायियों ने कहा कि अकेले चुनाव लड़िये। लेकिन जनवरी, 1977 में किसमें इतना नैतिक बल और साहस था कि श्रीमती गांधी से अकेले लड़ लेता ? और सच तो यह है कि उनमें से बहुत-से लोग श्रीमती गांधी से सम-झौता करना चाहते थे। चुनावों की घोषणा होने के ठीक पाँच दिन पहले खुद चौधरी चरणसिंह ने श्रीमती गांधी को समझौता करने के लिए पत्र लिखा था। उनके साथी बीजू पटनायक से गुप्त बातचीत कर रहे थे। बीजू पटनायक का संजय-चौकड़ी से बातचीत का संबंध स्थापित हो गया था। लेकिन अब चौधरी चरणसिंह जनता पार्टी के निर्माता होने का दावा कर रहे थे। नीचा दिखाये जाने के कारण वह बड़े कुपित थे।

लेकिन चिकनी-चुपड़ी और दोहरी बातें करनेवाले जनसंघ के नेताओं ने चरणसिंह को वादे करके थोड़ा ठंडा कर लिया। उन्होंने चरणसिंह से कहा कि मोरारजी देसाई को तो जनता पार्टी का बरुआ बनाया जा रहा है। जनता पार्टी का इंदिरा गांधी तो उन्हें ही बनाया जायेगा। अपने साथियों से बातचीत करने के बाद चौधरी चरणसिंह ने दल का महामंत्री बनना स्वीकार किया। अटलबिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण अडवाणी को संदेश भेजा गया। जब जनसंघ के ये दोनों नेता चरणसिंह के पास गये तो चरणसिंह भरे हुए बैठे थे। उन्होंने कहा, "आप लोग मुझे इतना छोटा समझते हैं कि मैं पार्टी का मुंशी बनूंगा ?" यह चरणसिंह की रणनीति थी कि कम-से-कम पार्टी में नंबर दो का स्थान इस चाल से प्राप्त कर लिया जाये। चूंकि उन्होंने महामंत्री के पद को मुंशी का काम कहा था, तो उपाध्यक्ष बनाने की सलाह कैसी रहेगी ? चरणसिंह ने कहा, "यह ठीक है। लेकिन एक शर्त है कि मुझे पूरे उत्तर भारत में चुनाव-संचालन करने का पूरा अधिकार दिया जाये।"

नयी पार्टी की एक बैठक में जनसंघ के एक नेता भैरोंसिंह शेखावत ने यह प्रस्ताव रखा। लेकिन यह देसाई को क़बूल नहीं था। उन्होंने कहा कि अध्यक्ष तो पूरे देश का इंचार्ज होता ही है। इस पर चौधरी चरणसिंह ने धीरे से कहा था, "मैं उत्तर भारत देख लेता हूँ, देसाई दक्षिण भारत देख लें।" देसाई ने तड़ाक से

जवाब दिया, "मैं क्यों दक्षिण भारत देखूँगा, मैं अखिल भारतीय अध्यक्ष हूँ।" ऐसा लगा कि सारा ढाँचा उसी समय चरमरा कर टूट जायेगा। लेकिन काफ़ी कठिनाई के बाद मोरारजी देसाई को इस बात के लिए मनाया गया कि चौधरी चरणसिंह को चुनाव के लिए "उत्तर भारत का प्रमुख" बनाया जाये।

चुनाव में जीत के बाद चौधरी चरणसिंह ने सोचा, प्रधानमंत्री बनने के लिए वही मुनासिब व्यक्ति हो सकते हैं। क्या जनसंघ के नेताओं ने उनसे यह वादा नहीं किया था? चौधरी चरणसिंह को बराबर यह शिकायत थी कि किसी ने भी उनका नाम प्रस्तावित नहीं किया। यहाँ तक कि उनका ही राग अलापने वाले राजनारायण ने भी उनका नाम नहीं सुझाया। उसके बदले उन्होंने जगजीवनराम और बहुगुणा के ख़िलाफ़ अपनी घृणा का इस्तेमाल करके उन्हें मोरारजी देसाई के पक्ष में करने का काम किया। 1978 के जून में जब चौधरी चरणसिंह मंत्रिमंडल से निकाले गये तो उन्होंने कहा, "यह मेरी पहली बड़ी भूल थी।" जनता पार्टी का अध्यक्ष चन्द्रशेखर को बनाकर उन्होंने "दूसरी बड़ी भूल" की। प्रधानमंत्री-पद का ताज न पा सकने के बाद उन्होंने सोचा था कि कम-से-कम दल पर तो क़ब्ज़ा किया जाये। दल की अध्यक्षता के लिए उन्होंने कर्पूरी ठाकुर का नाम सुझाया। लेकिन तभी जयप्रकाश नारायण ने निर्देश दिया कि दल का पहला अध्यक्ष चंद्रशेखर को बनाया जाये। न तो जगजीवनराम जयप्रकाश नारायण को उन्हें प्रधानमंत्री न बनाने के लिए माफ़ कर सकते थे और न ही चरणसिंह चंद्रशेखर को दल पर "थोप देने" के लिए जयप्रकाश को माफ़ कर सकते थे। चौधरी साहब के अनुयायियों ने उनसे पूछा, "यह चंद्रशेखर कौन है? जिस पार्टी को आपने बनाया उसकी अध्यक्षता करनेवाला यह कौन होता है?" लेकिन हुआ यह कि चरणसिंह को चंद्रशेखर को अध्यक्ष स्वीकार करने के लिए मना लिया गया। कहा गया कि वह तो सिर्फ़ नाममात्र के अध्यक्ष होंगे, असली प्रभाव तो आपका ही होगा। उत्तर भारत में लोकसभा के चुनावों में अभूतपूर्व सफलता दिलाने के बाद चौधरी चरणसिंह को विश्वास था कि कम-से-कम उत्तरी भारत में तो उनकी सर्वोच्चता को कोई चुनौती नहीं दे सकता। किसी भी स्थिति में इसके अलावा कुछ हो सकने की वह कल्पना ही नहीं कर पाते थे। जनसंघ लोकसभा में सबसे बड़े गुट के रूप में जीतकर आया था और वह चौधरी साहब के साथ मिल-जुलकर खेलने को तैयार था। वह सोचता था कि जनसंघ और भालोद पक्षों के एक हो जाने से यह गठबंधन अपराजेय और लाभदायक रहेगा। शीघ्र ही जनसंघ ने दोहरी नीति अपना ली—केंद्र में मोरारजी देसाई के साथ और उत्तरी राज्यों में चौधरी चरणसिंह के साथ।

1977 के विधानसभा के चुनावों के पहले चौधरी चरणसिंह का दल के नेतृत्व के साथ पहला बड़ा संघर्ष हुआ। उन्होंने अपने-आप ही सर्वोच्चता संभाल ली और टिकटों का बँटवारा मनमाने ढँग से शुरू कर दिया। लेकिन उन्हें यह देखकर बहुत आघात लगा कि अब वह सर्वोच्च बॉस नहीं हैं। जिस उत्तर प्रदेश को वह अपनी जागीर समझते थे उसकी सूची में से दल के अध्यक्ष चंद्रशेखर ने जब 88 नाम काट दिये तो उनका खून खौल उठा। उत्तर प्रदेश में उनके अधिकार को चुनौती देने की हिम्मत चंद्रशेखर ने कैसे की? त्यागपत्र लिखने में तो चौधरी चरणसिंह माहिर हैं ही, उत्तर प्रदेश के "प्रेक्षक" पद से उन्होंने तत्काल त्यागपत्र दे दिया। और चुनाव आयोग से भालोद का चुनाव-चिह्न जनता पार्टी को देने के लिए अधिकृत करनेवाला पत्र उन्होंने निकलवा लिया। उन्होंने सोचा कि दल को

झुकाने के लिए उनका इतना करना काफ़ी होगा। लेकिन उनकी अपेक्षाओं के विपरीत चंद्रशेखर ने कठोर रवैया अपनाया और अल्टीमेटम जारी कर दिया। चरणसिंह की बंदूक की नली गरदन पर रखकर राजनीति चलाने की शैली विफल हो गयी। राजनारायण जनता पार्टी के कार्यालय में दौड़े-दौड़े गये। उन्होंने वह त्यागपत्र लिया और फाड़कर फेंक दिया।

लेकिन दो खेमों के बीच लड़ाई की यह शुरुआत थी। जब वह गृहमंत्री बने तो कुछ ही हफ़्तों के अंदर उनके घर में दरबार लगने लगा। प्रमुख दरबारी थे राजनारायण, श्यामनंदन मिश्र, दिनेशसिंह और भानुप्रतापसिंह। इस दरबार में विचार का विषय हमेशा मोरारजी देसाई और उनका परिवार होता था। देसाई के ख़िलाफ़ वातावरण बनाया जाने लगा। श्यामनंदन मिश्र कभी देसाई के भक्त रह चुके थे, लेकिन मंत्री न बनाये जाने के कारण वह नाराज़ थे। उन्होंने संसद में कांति देसाई के ख़िलाफ़ अभियान छेड़ दिया। वह कांति देसाई और हिंदूजा ब्रदर्स तथा अन्य व्यापारियों के संबंधों को लेकर संसद में उद्धरण-पर-उद्धरण देते रहते थे। अब तक लोगों को यह मालूम नहीं था कि चौधरी चरणसिंह ने मोरारजी देसाई को मार्च, 1978 में ही एक पत्र लिखा था जिसमें मोरारजी देसाई के उस भाषण का हवाला भी था जो उन्होंने 25 जनवरी, 1978 को भावनगर में दिया था और जिसमें उन्होंने कहा था कि कांति देसाई पर लगाये जाने वाले आरोप निराधार और शरारतपूर्ण हैं। इस पत्र में चरणसिंह ने लिखा था कि "कांति देसाई पर लगाये जानेवाले आरोप, जिनकी आज सारे देश में गूंज हो रही है, नये हैं, पुराने नहीं।" चरणसिंह ने भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री अर्ल ऑफ़ चैथम को उद्धृत करते हुए कहा था कि अगर मंत्रियों के ख़िलाफ़ आरोप लगाये जाते हैं तो उनकी जाँच होनी चाहिए। वह चाहते थे कि देसाई जाँच करायें। क्योंकि इसी तरह के क़दम से दल की "नैतिक" स्थिति और सरकार का नाम "ऊँचा" रह सकता है। हर गुज़रने वाले दिन के साथ दल और सरकार की "प्रतिष्ठा तेज़ी से गिर रही थी।"

देसाई ने अपने उत्तर में कहा था, "निहित स्वार्थ वाले लोग मेरे बेटे के ख़िलाफ़ प्रचार कर रहे हैं। उसको लपेटने के लिए नहीं बल्कि मुझे हटाने के लिए।" उन्होंने अपने पत्र में स्मरण कराया कि स्वयं चरणसिंह के दामाद पर कितने ही लोगों ने आरोप लगाये और उन्होंने संसद में उनका जवाब दिया, उनकी रक्षा की है, क्योंकि वह उन आरोपों में विश्वास नहीं करते थे। अगर कांति देसाई के ख़िलाफ़ आरोप की बात है तो देसाई के पास भी चरणसिंह के ख़िलाफ़, उनके दामाद और उनकी पत्नी के ख़िलाफ़ आरोप लगाने वाले अनेक पत्र हैं। और अगर चरणसिंह के सिद्धांत को मान लिया जाये तो "हमें हर दिन जाँच आयोग बिठाने पड़ेंगे।"

देसाई के साथ अपने संघर्ष में चरणसिंह और राजनारायण जनसंघ के समर्थन को शायद मानकर चल रहे थे। भालोद-जनसंघ गठबंधन से इन्हें फ़ायदे हुए थे और उत्तरी राज्यों में दोनों को सत्ता का बहुत बड़ा हिस्सा मिला था। चरणसिंह जनसंघ को कुछ और "रिआयतें" भी देने को तैयार थे, अगर जनसंघ उनकी ज़िंदगी के अरमान को पूरा करने में सहायक होता। एक दिन चरणसिंह ने एक जनसंघ नेता को बुलाकर उनसे कहा कि "उन्हें भविष्य की कुछ और योजनाओं पर विचार करना चाहिए।" जनसंघ नेता ने पूछा, "कैसी योजनाएँ?" चरणसिंह ने भारतीय राजनीति का अपना "विश्लेषण" बताया। कुल निचोड़ यह था कि

मोरारजी देश को नेतृत्व प्रदान नहीं कर सकते और न ही चंद्रशेखर पार्टी को संभाल सकते थे, दोनों अपने-अपने काम में विफल रहे थे। चरणसिंह ने कहा कि इसका एक ही इलाज है कि जनसंघ दल के अध्यक्ष का पद संभाले और वह देश के प्रधानमंत्री हों। उन्होंने कहा, "अगर आपका ग्रुप पूरी तरह मेरी मदद करे तो यह सब बिना किसी कठिनाई के हो सकता है। मोरारजी को ज्यादा देर नहीं चलने देना चाहिए। आप देख रहे हैं कि उनके मंत्रिमंडल में बहुगुणा जैसा आदमी है। मैंने उनसे कई बार कहा है कि उसे हटा दीजिये, लेकिन वह सुनते ही नहीं।"

चरणसिंह ने देसाई को वह गोपनीय और व्यक्तिगत ख़त पहले ही लिख दिया था जिसमें उन्होंने बहुगुणा पर आरोप लगाया था कि वह कम्युनिस्ट पार्टी के निकट हैं और रूस से संबंध स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। "सच तो यह है कि उन्हें कुछ क्षेत्रों में के०जी० बी० (रूसी गुप्तचर संस्था) का एजेंट समझा जाता है। ऐसा बताते हैं कि 1974 और 1975 में रूस ने उन्हें श्रीमती गांधी के संभावी उत्तराधिकारी के रूप में तैयार करना शुरू कर दिया था। इसी को अनुभव करके कांग्रेस नेतृत्व ने 1975 के अंत में उन्हें उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री-पद से हटा दिया था, हालाँकि उन्हें कांग्रेस विधायक दल और पार्टी, दोनों का पूरा बहुमत प्राप्त था।"

चरणसिंह के प्रस्ताव से जनसंघ के वह नेता चकित नहीं हुए, क्योंकि वह जानते थे कि गृहमंत्री का "एकसूत्री कार्यक्रम" क्या है। वह सिर्फ़ प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं। उन्होंने कोई वादा नहीं किया, बस यह कहा कि उन्हें अपने ग्रुप के अन्य नेताओं से बातचीत करनी होगी। चरणसिंह ने इस जवाब को स्वीकारात्मक मान लिया और हनुमान को बुलाकर हरी झंडी दिखा दी। 5 जून, 1978 को जब प्रधानमंत्री देसाई अपनी अमरीका-यात्रा पर गये उसी दिन से यह लड़ाई शुरू हो गयी।

चरणसिंह उन दिनों ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट में अस्वस्थ पड़े हुए थे। राजनारायण गृहमंत्री से वहाँ विचार-विमर्श करने गये। लंबी बातचीत के बाद जब वह लौटे तो एक प्रेस-कांफ्रेंस में उन्होंने चंद्रशेखर, जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी और संसदीय बोर्ड पर करारा प्रहार किया। उन्होंने कहा कि ये सब तदर्थ समितियाँ हैं और इन्हें भंग कर देना चाहिए। वह उन दिनों प्रतिदिन प्रेस से मिलते और हर दिन कोई-न-कोई नया आरोप लगाते और इस तरह उन्होंने अपने प्रहार को हफ़्तों जारी रखा। उन्होंने चंद्रशेखर का वर्णन ग़ैर-क़ानूनी अध्यक्ष के रूप में किया और उन पर आरोप लगाया कि जो लोग तीसरी शक्ति बनाना चाहते हैं, चंद्रशेखर उनसे साँठ-गाँठ कर रहे हैं। उन्हीं दिनों चंद्रशेखर नरौरा कैंप में भाग लेने गये थे। इस कैंप में जनता पार्टी के मसलों और इसके विकल्प के बारे में विचार हो रहा था। यह शिविर जनता पार्टी और सरकार के बारे में व्यापक निराशा का एक प्रत्यक्ष रूप था, क्योंकि जनता सरकार द्वारा देश की समस्याओं को सुलझाने के कोई संकेत नहीं मिल रहे थे।

खुद उद्योग-मंत्री जार्ज फर्नांडीज़ ने दल की राष्ट्रीय कार्यकारिण समिति को एक नोट दिया था जिसमें यह क़बूल किया था कि दल और सरकार दोनों की प्रतिष्ठा गिरती जा रही है और "हम सब इसके दोषी हैं कि हम अपने को पुराने दलों का सदस्य ही समझते हैं, एक नये राजनीतिक दल का सदस्य नहीं।" चोटी पर बैठी त्रिमूर्ति की ओर परोक्ष रूप से संकेत करते हुए उन्होंने कहा था कि मोरारजी देसाई, चरणसिंह और जगजीवनराम को अपनी राजनीतिक और

नैतिक साख का इस्तेमाल करके दल को ठीक रखने के लिए "संयुक्त रूप से प्रयास करना चाहिए...। देश, पार्टी और आनेवाली पीढ़ियों के प्रति यह उनका कर्तव्य है। अगर वे इसमें चूकते हैं तो इसका परिणाम हर व्यक्ति के लिए दुखद होगा...।"

इन नेताओं के लिए, जो अपनी ही साख गिराने में लगातार लगे हुए थे, ऐसा करना कठिन था। अपने चारों ओर अव्यवस्था के वातावरण के प्रति वे तनिक भी चिंतित नहीं थे। देश के विभिन्न भागों में हरिजनों और मुसलमानों पर हमले हो रहे थे। अप्रैल 1977 से लेकर जनवरी 1978 तक देश के विभिन्न भागों में लगभग 47 विश्वविद्यालय कम या ज्यादा समय के लिए बंद रहे थे। शिक्षा का ढाँचा चरमरा रहा था और इसी काल में कारखानों में 1363 हड़तालें और 199 लॉक-आउट हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन में 83 करोड़ रुपये की हानि हुई। लेकिन जनता पार्टी के ये तीनों नेता एक-दूसरे की टाँग खींचने में लगे हुए थे। मोरारजी देसाई निजी बातचीत में जगजीवनराम पर "व्यक्तिगत नैतिकता और भ्रष्टाचार" के आरोप लगाते थकते नहीं थे। (मधु लिमये ने मेनस्ट्रीम के 1979 के वार्षिक अंक में लिखा : "देसाई के ढोंग की कोई सीमा नहीं थी। सार्वजनिक रूप से वह जगजीवनराम के सरकार बनाने के दावे का समर्थन करते हैं और व्यक्तिगत बातचीत में वह उनकी कठोर शब्दों में प्रायः निंदा करते रहे हैं। कहते रहे हैं कि वह उस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नहीं बनने देंगे जिसकी निजी नैतिकता और सार्वजनिक निष्ठा में खोट है।") जगजीवनराम खुलेआम चरणसिंह को 'कुलक नेता' कहते रहे हैं। यहाँ तक कि मेनका गांधी के साथ भेंटवार्ता में (सूर्य, मई, 1978) उन्होंने चरणसिंह का ख़ासा मज़ाक उड़ाया :

जगजीवनराम : आप चरणसिंह को इतना महत्वपूर्ण क्यों मानती हैं? (हँसी)

मेनका गांधी : चरणसिंह महत्वपूर्ण इसलिए हैं कि वह गृहमंत्री हैं।

जगजीवनराम : गृहमंत्री तो ब्रह्मानंद रेड्डी भी थे। (हँसी)

कच्चे धागों से बँधी हुई यह पार्टी बिखरने के कगार पर पहुँच गयी। आंतरिक संघर्ष बेरोक-टोक चल रहे थे। दल के एक महत्वपूर्ण महासचिव श्री रामकृष्ण हेगड़े की यह टिप्पणी देखिये :

> चरणसिंह और उनके घटक का उद्देश्य चोटी पर पहुँचना था और यह उन्होंने साफ़-साफ़ स्वीकार किया है। उनकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी आकांक्षा प्रधानमंत्री बनना है। उनका उद्देश्य न तो समाज को बदलना है, न शोषण को ख़त्म करना है और न ही लोगों की खुशहाली उनका लक्ष्य है। उनका उद्देश्य बिलकुल व्यक्तिगत है। अगर 1977 में जनता पार्टी को बहुमत न मिला होता तो चरणसिंह निश्चय ही कुछ हफ़्तों में श्रीमती गांधी से मिल जाते। और इसलिए हम देखते हैं कि शुरू से ही एक घटक सत्ता को हथियाने के लिए खुलकर और बेशरमी से लड़ाई में जुट गया और घृणास्पद हद तक चरित्र-हनन करने लगा। सवाल चाहे टिकटों का हो, या मंत्रालयों के बँटवारे का, या मंत्रिमंडल में पद-क्रम का, सत्ता की व्यक्तिगत आकांक्षाओं के कारण नग्न सिद्धांतहीन समीकरण राजनीतिक वातावरण पर छाये रहे। जो लोग अपने को उठाने की प्रतिद्वंद्विता में लगे थे उनके लिए दल की घोषित नीतियाँ और कार्यक्रम बिलकुल असंगत होने ही थे। यहाँ तक कि जयप्रकाश नारायण

को भी भुला दिया गया। शायद ही कभी राष्ट्रीय कार्यसमिति में चुनाव में किये गये वादों, आर्थिक नीतियों और जनता की समस्याओं पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ हो। शीत-युद्ध जैसी स्थिति में परिणाम पर फलप्रद और रचनात्मक विचार-विमर्श असंभव था। केंद्रीय संसदीय बोर्ड तो सुरक्षा परिषद की तरह काम करता था और उसमें एक सदस्य प्रायः वीटो पावर का इस्तेमाल करते थे ...।

और इसलिए जब राजनारायण ने दल के अध्यक्ष पर सुनियोजित प्रहार प्रारंभ किया तो किसी को यह समझते देर नहीं लगी कि यह सब किस उद्देश्य से किया जा रहा है। इसका उद्देश्य चंद्रशेखर को दल के अध्यक्ष-पद से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य करना था; ताकि "मास्टर प्लान" के अगले भाग का क्रियान्वयन किया जा सके। लेकिन तभी एक प्रमुख जनसंघ नेता सुंदरसिंह भंडारी का बयान आ गया, जिसमें पहली बार इस घटक ने अपने रुख़ को स्पष्ट किया। भंडारी ने स्वीकार किया कि 1978 में मुख्यमंत्रियों को चुनते समय भालोद और जनसंघ ने एक व्यवस्था को स्वीकार किया था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इसमें इसे जारी रखने की कोई अंतर्निहित व्यवस्था थी। "हम में से कोई भी अपने किसी उद्देश्य के लिए एक-दूसरे के समर्थन को अपना स्वाभाविक अधिकार मानकर नहीं चल सकता।" भंडारी ने राष्ट्रीय कार्यकारिणी पर राजनारायण के हमले को ग़लत बताया कि वह अवैध है और दल के मतभेदों को "व्यक्तियों का मतभेद बताया जिससे नीतियों और सिद्धांतों का कोई लेना-देना नहीं था।" भंडारी ने यह स्पष्ट कर दिया कि जनसंघ घटक मोरारजी देसाई के ख़िलाफ़ अविश्वास-प्रस्ताव को समर्थन नहीं देगा। दूसरे दिन पत्रकारों ने भंडारी के इस वक्तव्य की ओर राजनारायण का ध्यान दिलाया। इस पर राजनारायण ने कहा, "हममें और जनसंघ के लोगों में झगड़ा कराने की कोशिश मत कीजिये। इस खेल में आप सफल नहीं होंगे।" तब तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ-विरोधी राजनारायण का जन्म नहीं हुआ था।

जब देसाई विदेश-यात्रा से लौटे तो काफ़ी क्रुद्ध थे। हवाई अड्डे पर राजनारायण उनके इत्र लगाना चाहते थे; उन्होंने राजनारायण को फटकारते हुए कहा, "अब आप इत्र लगा रहे हैं और जब मैं बाहर था तो गंदी हवा फैला रहे थे।" देसाई को यह समझते देर नहीं लगी कि आक्रमण का असली निशाना वही हैं। 22 जून को राष्ट्रीय कार्यकारिणी में राजनारायण को दल के मतभेदों को सार्वजनिक रूप में प्रकट न करने के निर्देश का उल्लंघन करने का दोषी पाया गया। इस पर चरणसिंह ने यह अनुभव किया कि राजनारायण का मामला ऐसा सवाल नहीं है कि जिस पर कोई कड़ा रुख़ अपनाने की जरूरत हो। उन्होंने देसाई-सरकार पर हमला करने का एक नया बहाना खोज लिया। 28 जून को आधी रात के समय सूरज कुंड से उन्होंने देसाई सरकार के ख़िलाफ़ अपनी तोप का पहला गोला दाग़ दिया, जहाँ वह स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। अब तक वह देसाई सरकार में बने हुए थे, लेकिन उन्होंने सरकार का वर्णन "नपुंसक लोगों के समूह" के रूप में किया जो देश पर शासन नहीं कर सकता। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा, "जो लोग मुझसे मतभेद रखते हैं वे नहीं जानते कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री को गिरफ़्तार करके जेल में बंद करने में सरकार की विफलता के बारे में आम जनता की कितनी तीखी भावनाएँ हैं। लोग इसके तरह-तरह के अर्थ निकालते हैं और

इसके बारे में प्रचलित तरह-तरह की कहानियों पर विश्वास कर लेते हैं।" उन्होंने कहा कि कुछ लोग चाहते हैं कि श्रीमती गांधी को मीसा में गिरफ़्तार कर लिया जाये। अगर सरकार ने ऐसा किया होता तो आपात-काल के शिकार हुए लोगों की सैकड़ों माताओं ने उस दिन दीवाली मनायी होती।..."किसी भी दूसरे देश में इन स्थितियों में उन्हें ऐतिहासिक नूरेमबर्ग के ऐतिहासिक मुक़दमे जैसे मुक़दमे का सामना करना पड़ रहा होता...।" चरणसिंह शायद भूल गये थे कि 1977 के अक्तूबर में उन्होंने श्रीमती गांधी की गिरफ़्तारी के सिलसिले में कैसा घपला किया था, और गृहमंत्री के नाते श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ चलनेवाले मुक़दमों की सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं के हाथ में थी। फिर जिस सरकार के वह स्वयं भी अंग थे, उसके ख़िलाफ़ मंत्री के रूप में इस तरह के वक्तव्य न देने की मर्यादा का उन्होंने उल्लंघन किया था। उनसे त्यागपत्र की माँग करते हुए अपने पत्र में मोरारजी देसाई ने लिखा था कि वक्तव्य देने के पहले किसी भी समय गृहमंत्री ने मंत्रिमंडल में अपने साथियों से या उनसे कोई मशविरा नहीं किया था। उन्होंने कहा कि यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का उल्लंघन है और संसदीय प्रणाली के आचरणों के सभी मानदंडों के विपरीत भी। राजनारायण से भी शिमला में धारा 144 तोड़ने और हिमाचल प्रदेश की जनता पार्टी के मुख्यमंत्री पर प्रहार करने के कारण त्यागपत्र माँगा था। त्यागपत्र देने के दूसरे दिन चौधरी चरणसिंह ने कहा था कि उन्हें राहत महसूस हो रही थी "क्योंकि सरकार में मैं भ्रष्ट लोगों से घिरा हुआ था।" उन्होंने "राहत" मिलने की जो बात कही थी वह श्रीमती गांधी के उस "भरपूर राहत" वाली बात जितनी ही विश्वसनीय थी, जो मार्च 1977 के चुनावों में पराजित हो जाने के बाद श्रीमती गांधी ने कही थी।

अब श्रीमती गांधी अपनी भेंटवार्ताओं में बहुत ही गद्‌गद होकर कह रही थीं, "ये लोग देश का शासन नहीं चला सकते।" जनता पार्टी के अंदर पड़ने वाली दरारों से केवल वही प्रसन्न नहीं थीं, कम्युनिस्ट पार्टी और रूसी लॉबी भी बहुत प्रसन्न थी। सरकार की हर परेशानी से इनका उत्साह बढ़ जाता था। भारत के घटना-चक्र से रूस साफ़ तौर पर परेशान था। इमर्जेंसी का लगभग अंतिम एक साल रूसपक्षी कम्युनिस्टों के लिए अनुकूल नहीं रहा था। श्रीमती गांधी और उनके कम्युनिस्ट सहयोगियों के बीच संजय गांधी के व्यक्तित्व और उनकी नीतियों को लेकर काफ़ी खिंचाव आ गया था। श्रीमती गांधी का संदेश स्पष्ट था : अगर कम्युनिस्ट पार्टी को उनका समर्थन करना आवश्यक लगता है तो यह उसे उनकी शर्तों पर होगा। और कम्युनिस्ट पार्टी को यह ग़लतफ़हमी दूर कर लेनी चाहिए कि वह कांग्रेस-दल के मामलों में बेहिचक दख़लंदाज़ी कर सकती है। श्रीमती गांधी की इस आलोचना के बाद बहुत-से कांग्रेसी-नेताओं ने कम्युनिस्ट पार्टी की निंदा करते हुए वक्तव्य जारी किये। कम्युनिस्ट यह कहते घूम रहे थे कि श्रीमती गांधी को "नष्ट करने" के लिए सी० आई० ए० के लोगों ने संजय गांधी को वश में कर रखा था। सी० आई० ए० के अनेक एजेंटों के और बिचौलियों के नामों की चर्चा की जा रही थी। दूतावास के जिस अमरीकी अधिकारी के बारे में यह कहा जा रहा था कि उसने संजय गांधी से संबंध स्थापित कर लिया है, उसकी गतिविधियों का अध्ययन करने के एक अमरीकी पत्रकार भारत आया। इस संबंध में शेख़ अब्दुल्ला के महत्वाकांक्षी बेटे फारूक़ अब्दुल्ला और कुलदीप नारंग के नामों का उल्लेख किया जाता था। ये दोनों भारतीय संजय गांधी के

नज़दीकी दोस्त और समर्थक थे और निश्चय ही अमरीकियों से इनके घनिष्ठ संबंध थे। स्वयं श्रीमती गांधी के भी एक समय में सी० आई० ए० से निकट संबंध बताये जाते थे। भारत में अमरीका के भूतपूर्व राजदूत डेनियल पैट्रिक मोयनिहान ने अपनी पुस्तक में इसका रहस्योद्घाटन करते हुए लिखा है : "हम लोगों ने दो बार, लेकिन सिर्फ़ दो बार ही, एक राजनीतिक दल को धन देकर भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप किया है। लेकिन दोनों बार यह राज्यों के चुनावों में कम्युनिस्टों की जीत की संभावना को देखते हुए किया गया—एक बार केरल में और एक बार पश्चिम बंगाल में...दोनों ही बार यह पैसा कांग्रेस पार्टी को दिया गया था, जिसने पैसा खुद माँगा था। एक बार तो पैसा स्वयं श्रीमती गांधी को दिया गया जो उस समय दल की पदाधिकारी थीं।" (डेनियल पैट्रिक मोयनिहान, ए डेंजरस प्लेस)।

बाक़ी दुनिया में प्रकाशित हो जाने के साल-भर बाद जब मोयनिहान की यह किताब भारत में प्रकाशित हुई तो काफ़ी राजनीतिक बावेला मचा। इस पर श्रीमती गांधी ने राजनीतिज्ञों जैसा रुख़ अख़्तियार करते हुए खंडन जारी कर दिया। उन्होंने जम्मू जाते हुए रास्ते में चंडीगढ़ के हवाई अड्डे पर संवाददाताओं से बात करते हुए कहा : "यह आधारहीन और शरारतपूर्ण बयान है। ये लोग (अमरीकी) मेरे ख़िलाफ़ हैं और यह बात सभी जानते हैं" (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 12 अप्रैल, 1978)।

श्रीमती गांधी और एस० के० पाटिल सहित अन्य लोगों के खंडन करने पर मोयनिहान को उत्तेजित होकर कुछ और विवरण देने पड़े। उन्होंने पैसे देने की बात को दोहराया और कहा कि "धन इतना अवश्य था जो एक गंभीर चुनाव-अभियान के लिए अपेक्षित था।" मोयनिहान के इस कथन से संवाद देनेवाले पत्रकार ने अंदाज़ा लगाया कि यह धन दस हज़ार डॉलर से लेकर एक लाख डॉलर तक हो सकता है (साइमन विंचेस्टर, गार्जियन, 28 अप्रैल, 1979)। मोयनिहान ने कहा, "जिस समय यह धन दिया गया था उस समय अमरीकी सरकार भारत सरकार और कांग्रेस पार्टी को एक मानकर चलती थी। हम लोगों ने भारत सरकार को अरबों डॉलर दिये थे। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस राजनीतिक दल को पैसा देने में कोई ऐसा ख़ास फ़र्क़ नहीं था जो बीस साल पहले सरकार पर पूरी तरह हावी था।...उन्होंने दो बार मदद माँगी और अमरीकी सरकार ने उन्हें मदद दी।" मोयनिहान ने यहाँ तक कहा कि उनकी पुस्तक के जिन दो पैराग्राफ़ों में इस राजनीतिक सहायता का उल्लेख है उनको प्रकाशन से पहले सी० आई० ए० से पास करा लेना ज़रूरी था। "इन दो-चार लाइनों को पास कराने के लिए मुझे पूरा एक दिन लगाना पड़ा।"

1973 में जब मोयनिहान भारत में राजदूत बनकर आये थे तब से समय बहुत बदल चुका था। उन्होंने अपनी इसी किताब में लिखा है : "मुझे कोई बड़ी सफलता नहीं मिली। नेहरू की बेटी के राज में संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र विदेश नीति के मामले में सोवियत नीति से प्रतिबद्ध हो गया था। और इससे भी बदतर बात यह थी कि वह अपने ही ढंग के अधिनायकवाद की तरफ़ बढ़ रहा था। ख़ुद हमारे यहाँ जब सरकार चरमरा रही थी तो जो कुछ मैं कर सकता था वह यही था कि छठे और सातवें दशक में अमरीका ने भारत में जो असाधारण आंशिक वर्चस्व बनाया था उसे समाप्त कर देता। मैंने अँग्रेज़ों की तरह ही यहाँ से निकल जाना उचित समझा, बनिस्बत धकियाये जाने के।"

1969 के कांग्रेस विभाजन के बाद फ़ौरन, जब श्रीमती गांधी अल्पमत में होने के कारण अपनी सरकार को बनाये रखने के लिए कम्युनिस्ट संसद-सदस्यों पर आश्रित हो गयीं, तो कम्युनिस्टों ने कांग्रेस के मामलों को अपने हित में चलाने की कोशिशें शुरू कर दीं। वर्षों पहले एक वकील और चतुर रणनीति-विशेषज्ञ मोहन कुमारमंगलम ने कम्युनिस्ट नेताओं को एक "थीसिस" लिखकर दी थी—1957 से दल की नीति की समीक्षा। इसमें उन्होंने "सत्ता पर कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को तोड़ने के लिए पार्टी की वामपंथी संयुक्त मोर्चे की नीति को व्यर्थ बताया था। इसके बजाय उन्होंने सुझाया था कि कांग्रेस पर भीतर से क़ब्ज़ा करना चाहिए। उनकी यह थीसिस वर्षों तक बेकार पड़ी रही। जब समय इसके अनुकूल आया तो वह निकाली गयी। 1967 के आम चुनावों के बाद जब लोक-सभा में कांग्रेस सदस्यों की संख्या 361 से घटकर 283 रह गयी और 1969 के विभाजन के बाद और भी ख़राब हो गयी तब कुमारमंगलम अपनी थीसिस पर फिर ज़ोर देने लगे। इस बार उन्हें ज़्यादा समर्थन प्राप्त हुआ। अगले कुछ वर्षों में एक दर्जन कम्युनिस्ट और उनके सहयात्री कांग्रेस में घुमाये गये। उन्होंने कांग्रेस पार्टी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी शुरू कर दी। और एक वक़्त तो ऐसा आया जब मोहन कुमारमंगलम उप-प्रधानमंत्री बनने की कगार पर पहुँच गये और केंद्र में कांग्रेस-कयुनिस्ट संयुक्त सरकार बनने की संभावनाओं की चर्चा चलने लगी।

लेकिन 1973 की गर्मियों में एक विमान-दुर्घटना में मोहन कुमारमंगलम अचानक मारे गये। रूसियों की और भारत में उनके तमाम मित्रों की आशाएँ ध्वस्त हो गयीं। कांग्रेस के एक अन्य नेता श्री एल० एन० मिश्र भी धीरे-धीरे रूस के क़रीब आ रहे थे। लेकिन अपने राजनीतिक जीवन और प्रभाव के शिखर पर पहुँच कर वह भी चल बसे। और तब रूसियों ने हेमवतीनंदन बहुगुणा और श्रीमती नंदिनी सतपथी को "अपने मतलब के लिए तैयार करने" के वास्ते चुना। श्रीमती नंदिनी सतपथी की तो कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि थी, लेकिन बहुगुणा के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। अगर रिक्शेवालों और बिजली मज़दूरों की यूनियन का पदाधिकारी होना कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि के बदले काम कर सकता है तो बात अलग है। लेकिन जिन दिनों वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे उसके दौरान उन्होंने काफ़ी सफलता प्राप्त की। रूस से सीधे संबंध रखने का महत्व वह जानते थे। बहुगुणा ने उन दिनों दिल्ली-स्थित रूसी राजदूत को बहुत प्रयत्नपूर्वक साधा। उन्होंने उन्हें लखनऊ बुलाया और उनके सम्मान में एक भव्य आयोजन किया। बहुगुणा भारत-रूस सांस्कृतिक सोसाइटी के एक विशाल जमावड़े में भी बहुत उत्साह से भाग लेते देखे गये। रूसी राजदूत बहुगुणा के गतिमान व्यक्तित्व और "प्रगतिशील विचारों" से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उनको "भारतीय जनता का महान नेता" कहा। बहुत-से रूसी अफ़सर तो यह कहते सुने गये कि बहुगुणा "भारत के भावी प्रधानमंत्री" हैं। लेकिन चरणसिंह के मुताबिक़ यही उनके मुख्यमंत्री के पद से हटाये जाने का कारण बना। यही श्रीमती सतपथी के साथ हुआ। श्रीमती सतपथी उड़ीसा की मुख्यमंत्री थीं और उन कांग्रेसियों में से थीं जो "रूस के काफ़ी क़रीब" हो गये थे। बहुत-से लोग आश्चर्य करते हैं कि क्या यह महज़ संयोग है कि जो भी रूसियों के क़रीब आता था, श्रीमती गांधी का कुल्हाड़ा उस पर गिरता था?

हालाँकि कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस के अंदर की रूसी लॉबी संजय गांधी के बारे में काफ़ी सशंक थी और उसकी आलोचना करती थी, लेकिन उन्होंने

आपात-स्थिति का ज़ोरदार समर्थन किया था और जयप्रकाश नारायण तथा सैकड़ों अन्य विपक्षी नेताओं को जेल में डाल देने का स्वागत किया था। "फ़ासिस्ट जयप्रकाश नारायण" के ख़िलाफ़ आवाज़ लगाने में कम्युनिस्ट पार्टी सबसे आगे थी। वह श्रीमती गांधी पर बिहार आंदोलन को कुचल देने के लिए ज़ोर डाल रही थी। लेकिन जैसे-जैसे आपात-स्थिति गहराती गयी वैसे-वैसे "सी० आई० ए० समर्थित चौकड़ी" श्रीमती गांधी पर हावी होती गयी। कम्युनिस्ट बड़ी दुविधा में फँस गये। वह श्रीमती गांधी का तो समर्थन करना चाहते थे, लेकिन उनका बेटा उनके लिए "अछूत" था। जब उन्होंने दोनों के बीच विभाजन-रेखा खींची तब श्रीमती गांधी ने उन्हें साफ़-साफ़ फटकार दिया कि कांग्रेस के मामलों से "दूर रहो"। सोवियत नेता अभी भी श्रीमती गांधी के मोहपाश में जकड़े हुए थे। ऐसी स्थिति में भारत में उनके लोग गुस्सा दिखाने के अलावा और कुछ नहीं कर सकते थे। अपना क्रोध प्रदर्शित करने का उनका एक ढंग यह था कि उन्होंने अपने प्रकाशनों में संजय गांधी का नाम प्रकाशित करना बंद कर दिया, जैसे कि वे अचानक ऊँचे उठ जाने वाले उस नौजवान के ख़िलाफ़ बड़ा भारी संघर्ष कर रहे हों।

मार्च, 1977 के राजनीतिक "भूकंप" से रूसी नेता भौंचक्के रह गये। वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करना चाहिए? यहाँ तक कि चुनाव वाले दिन, यानी 16 मार्च को भी प्रावदा ने श्रीमती गांधी की हाल की प्रभावी सफलताओं का गुणगान किया था। और मास्को रेडियो के स्टेशन—शांति और प्रगति: सोवियत जनता की आवाज़—ने कहा था कि दक्षिणपंथी चाहे जितनी भी "ऊँची-ऊँची बातें" करें, वे मज़दूरों, किसानों, छोटे व्यापारियों और बुद्धिजीवियों के कांग्रेस को वोट देने के संकल्प को कमज़ोर नहीं कर सकते। लेकिन जिस दिन श्रीमती गांधी ने पद छोड़ा, उसके दूसरे ही दिन सुबह "सोवियत जनता की आवाज़" ने "आपात-स्थिति की ज्यादतियों और ग़लतियों" को श्रीमती गांधी की हार का कारण बताया।

साफ़ था कि श्रीमती गांधी की पराजय से वह अचक्के में पकड़े गये थे और अपने क़दम वापस लेने की कोशिश कर रहे थे। हर आदमी यह सोच रहा था कि मोरारजी देसाई की नयी सरकार अमरीका की ओर झुकी हुई होगी। और नये विदेशमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी निश्चय ही रूस-विरोधी होंगे। इस स्थिति में रूस को भारत की नयी सरकार के साथ अगर बहुत मधुर नहीं तो कम-से-कम कामचलाऊ रिश्ते बनाने की कोशिश तो करनी ही थी। आख़िरकार तीसरी दुनिया में भारत रूस का सबसे ज्यादा निष्ठावान, स्थायी और शक्तिशाली साथी साबित हुआ था। और अमरीकी प्रभाव-क्षेत्र में जाने देना राजनीतिक बुद्धिमत्ता की बात न होती। दो ही दिन के अंदर रूस के सरकारी अख़बार इज़वेस्तिया ने आपात-काल के दौरान श्रीमती गांधी के अधिनायकवादी व्यवहार की आलोचना करते हुए एक लेख छापा। रूस के विदेश-नीति से संबंधित साप्ताहिक पत्र ज़ा रुबेज़ोम ने तो न केवल श्रीमती गांधी की, बल्कि संजय गांधी की भी कड़ी आलोचना की, जबकि कुछ ही महीने पहले रूस ने इन दोनों का स्वागत शाही मेहमानों की तरह बड़े शानदार ढंग से किया था। अक्तूबर 1977 में मोरारजी देसाई और अटलबिहारी वाजपेयी की रूस-यात्रा से उनकी आशंकाएँ कुछ कम हुईं। लेकिन उन्हें इस बात का पक्का भरोसा नहीं हो सकता था कि भारत में उनकी जो भी उपलब्धियाँ हैं उनका असर अमरीका की ओर जनता सरकार के

झुकाव से खत्म नहीं हो जायेगा, नये शासक दल में उन्हें नये दोस्त बनाने होंगे। जनता पार्टी में जाने वाले लोगों में उनके कुछ पुराने दोस्त थे, जैसे हेमवतीनंदन बहुगुणा तथा नंदिनी सतपथी। इन पुराने संबंधों को मजबूत करते हुए नये लोगों को ढूंढ़ना था जो सोवियत "वाहन" बन सकें।

उनकी नज़र सबसे पहले जनता पार्टी के सिद्धांतवेत्ता माने जाने वाले मधु लिमये पर पड़ी। हालाँकि वह सरकार में नहीं थे, फिर भी दल की नीतियों और कार्यक्रमों को तै करने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण होने के बारे में किसी को कोई शक नहीं था। और वह केवल इसलिए नहीं कि वह दल के एक महासचिव थे, वल्कि इसलिए कि वह प्रभावी संसदविज्ञ थे। और यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि रूस में महासचिव-पद बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है।

लिमये ने रूसियों से मेल-जोल वढ़ाने की कोशिश वर्षों पहले से शुरू कर दी थी। 1973 में जब ब्रेज़नेव भारत आये थे तब लिमये उनसे "लोकतंत्र" पर विचार-विमर्श करने के लिए गये थे। जैसे ही नयी सरकार बनी, लिमये ने भारत सोवियत सांस्कृतिक समाज के मास्को जाने वाले एक प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया और वहाँ उन्होंने अपनी एक छाप छोड़ी। रूस से लौटने के वाद मधु लिमये ने वड़े पैमाने पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर हमला कर दिया। वह जानते थे कि जनता पार्टी पर इसका क्या परिणाम होगा। दो ही साल पहले जब ग़ैर-कांग्रेस दलों के साथ आने के सवाल पर वहस हो रही थी तव पूना में महाराष्ट्र सोशलिस्ट पार्टी का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन में मधु लिमये ने जनसंघ के साथ एकता की ज़ोरदार पैरवी की थी, और डॉक्टर लोहिया को उद्धृत करते हुए कहा था कि "जनसंघ की देशभक्ति और राष्ट्रवाद की भावना, समाजवादी पार्टी की समतामय चेतना और संगठन कांग्रेस की स्वतंत्रता-संग्राम के नेतृत्व की विरासत के एक साथ मिलने से एक वहुत ही बढ़िया दल बनेगा।" चूंकि लिमये अव सीधे जनसंघ पर हमला नहीं कर सकते थे क्योंकि वह जनता पार्टी का अंग बन गया था, इसलिए वह अव इसकी माँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर हमला कर रहे थे। वह जानते थे कि जनसंघ के लोग इसे बरदाश्त नहीं करेंगे। मधु लिमये देख रहे थे कि अगर दल में चुनाव हुए तो ग़ैर-जनसंघी लोग संगठन पर क़ब्ज़ा नहीं कर पायेंगे। वेहतर ढंग से संगठित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता उस पर छा जायेंगे। और इसलिए जनता पार्टी की औपचारिक स्थापना के कुछ ही महीने वाद उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि इस पार्टी में अगले पाँच वर्षों तक कोई चुनाव नहीं हो सकते और उसके बाद तो चुनाव होने का प्रश्न ही नहीं होगा, क्योंकि पार्टी रहेगी ही नहीं।

लगभग उसी समय जव मधु लिमये चुनाव के बाद पहली बार मास्को गये थे, जनता पार्टी के एक-दूसरे संसद-सदस्य देवेंद्र सतपथी को भी पूर्वी जर्मनी में आमंत्रित किया गया था, लेकिन उनके वदले उनकी पत्नी नंदिनी सतपथी वहाँ गयीं। जिस समय वह विदेश-यात्रा पर थीं उसी दौरान उनके पीछे उड़ीसा और नयी दिल्ली में उनके घरों की तलाशी ली गयी थी और वहाँ से बहुत-सी संदेहास्पद सामग्री प्राप्त हुई थी। पूर्वी जर्मनी की यात्रा के बाद श्रीमती सतपथी जब भारत लौटीं तो उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। ज़मानत पर रिहा होते ही उन्होंने एक पत्रकार-सम्मेलन बुलाया और कहा कि वह "आतंक की राजनीति, अपमान और चरित्र-हनन की शिकार बनायी जा रही हैं।" जनता पार्टी के 27 संसद-सदस्यों ने एक संयुक्त वक्तव्य में दल की इज़्ज़त को बचाने के लिए श्रीमती सतपथी को

राष्ट्रीय कार्यकारिणी से हटाने की माँग की। उन्होंने कहा कि लगभग सभी अख़-बारों में यह छपा है कि उनके घरों की तलाशी में और उनके संबंधियों के पास से उनकी आमदनी से कहीं ज़्यादा धन, जवाहरात, बड़े-बड़े बैंक खाते, बिना लाइसेंस के हथियार, विदेशी मुद्रा और संदेहास्पद क़िस्म के दस्तावेज़ बरामद हुए हैं जिनमें किसी गुप्त एजेंसी "तीसा" की एक गुप्त लिपि में लिखे दस्तावेज़ भी शामिल हैं। एक अँग्रेज़ी साप्ताहिक ने तो यहाँ तक लिखा कि श्रीमती सतपथी के धेनकनाल-स्थित मकान से उड़ीसा में 51 हज़ार रुपये के नोट क्रमानुसार नंबर के मिले और "उन पर एक कम्युनिस्ट देश के वाणिज्य दूतावास कलकत्ता ऑफ़िस की मोहर लगी हुई थी।" यह क़तई विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता कि वाणिज्य दूतावास ने श्रीमती सतपथी को पैसा देने से पहले नोटों के पैकेटों पर अपनी मोहर लगाने की मूर्खता की होगी, या कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसी परेशान करने वाली वस्तु स्वीकार करेगा। निश्चय ही यह बिलकुल अविश्वसनीय लगता है कि श्रीमती सतपथी जैसी चालाक नेता, जिनके बीजू पटनायक जैसे शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी हों, इतनी बड़ी ग़लती करेंगी। लेकिन यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि न तो उस साप्ताहिक की ख़बर का खंडन किया गया और न उसे कोई चुनौती दी गयी। अगर यह मान भी लिया जाये कि मोहर-लगे नोटों की गड्डियों की कहानी मनगढ़ंत थी तो भी अन्य संदेहास्पद सामग्री ऐसी थी जिसके बारे में संसद-सदस्य सोचते थे कि वह उन्हें दल की कार्यकारिणी से हटा दिये जाने के लिए काफ़ी है। लेकिन वे भूलते थे कि दल में बाबू जगजीवनराम और दल के अध्यक्ष चंद्रशेखर जैसे प्रबल समर्थक उनके मित्र के रूप में वहाँ उनकी रक्षा करने के लिए मौजूद थे। यहाँ तक कि जनता पार्टी के सरपरस्त जयप्रकाश नारायण के यह कहने के बावजूद कि वह "नंदिनी सतपथी के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं जानते जो अच्छा हो" उन्हें उड़ीसा विधानसभा के चुनाव का टिकट दिया गया था और वह दल की राष्ट्रीय कार्य-कारिणी की एक सदस्य बनी रही थीं।

अपनी प्रेस-कांफ्रेंस के कुछ ही घंटों बाद श्रीमती सतपथी 12 विलिंगडन क्रिसेंट पहुँच गयीं। दुर्भाग्य से वहाँ पर एक प्रेस फ़ोटोग्राफ़र इंतज़ार कर रहा था। श्रीमती सतपथी ने अपना चेहरा ढँकने की भरपूर कोशिश की, लेकिन फ़ोटो-ग्राफ़र ने कैमरे का खटका दबा दिया। श्रीमती सतपथी मना ही करती रह गयीं। यह साफ़ था कि वह नहीं चाहती थीं कि दुनिया को पता चले कि वह श्रीमती गांधी से मिलने गयी थीं। जब श्रीमती नंदिनी मिलने के बाद श्रीमती गांधी और श्रीमती मोहसिना क़िदवई के साथ बाहर आयीं और फ़ोटोग्राफ़र ने फिर फ़ोटो लेने की कोशिश की तो श्रीमती सतपथी ने कहा, "मैंने आपको मना किया था न।" श्रीमती गांधी मुसकरा दीं। नंदिनी जल्दी से अपनी कार में बैठ गयीं और उन्होंने अपना चेहरा छुपा लिया। भूतपूर्व प्रधानमंत्री के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी कि दुनिया जानती थी कि जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की एक सदस्य छुपकर उनसे मिलने आयी थीं! जब दूसरे दिन ख़बरें आयीं तो लोगों ने सोचा कि नंदिनी छापे और गिरफ़्तारी के कारण श्रीमती गांधी से मिलने गयी थीं। लेकिन सच इससे कहीं ज़्यादा था। जनता सरकार को अंदर से तोड़-फोड़ देने की योजना चालू हो गयी थी।

नंदिनी अपने मित्र जगजीवनराम और हेमवतीनंदन बहुगुणा से भी मिलने गयी थीं और उन्हें यह समझाने का प्रयास किया कि वह जनता पार्टी के ख़िलाफ़ रुख़ अपनायें, क्योंकि जनता पार्टी "जनसंघ और आर० एस० एस० के अलावा

कुछ नहीं" थी। जगजीवनराम और बहुगुणा पहले से ही पार्टी और सरकार में अपनी स्थिति के कारण उदासीन हो चुके थे और उन्हें सी० एफ़० डी० को जनता पार्टी में विलीन कर देने पर अफ़सोस हो रहा था। लेकिन उन्हें मंत्री-पद छोड़ने का साहस नहीं हो रहा था। उन्हें मालूम था कि अगर उन्होंने मोरारजी देसाई का विरोध किया तो उसका यही नतीजा होगा कि जैसे ही वह विरोध शुरू करेंगे, उन्हें पद छोड़ने का आदेश दे दिया जायेगा।

बहुगुणा ने एक बार यह कोशिश की थी, पर उन्हें इतनी फटकार पड़ी कि उसके बाद उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा। वाजपेयी चीन-यात्रा पर जाने वाले थे और उससे एक दिन पहले मंत्रिमंडल की अनौपचारिक बैठक हुई जिसमें चंद्रशेखर और नानाजी देशमुख को भी विशेष रूप से बुलाया गया था। बैठक प्रारंभ होने के तुरंत बाद बहुगुणा ने वाजपेयी के चीन के दौरे का अत्यधिक विरोध किया। उनका कहना था कि इससे भारत और रूस के संबंधों में समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी और ऐसा ठीक नहीं होगा, क्योंकि रूस हमारा सबसे अच्छा मित्र सिद्ध हुआ है। जब बहुगुणा रूस की प्रशंसा करते ही गये तो मोरारजी देसाई ने उनसे पूछा: "क्या कारण है कि आप सदा रूस की चाटुकारी करते रहते हैं ?" इस पर बहुगुणा ने गुस्से से कहा: "आपको भी बहुत-से लोग अमरीका का समर्थक कहते हैं।" कुछ क्षण तक बैठक में तनाव रहा और नानाजी देशमुख ने इस बात को यह कहकर टालने की चेष्टा की कि सभी मंत्री देशभक्त और राष्ट्रवादी हैं। इस पर बहुगुणा ने उन्हें बीच में टोकते हुए कहा: "इस पर हँसने की आवश्यकता नहीं है।" अब तक चंद्रशेखर चुप बैठे थे, लेकिन अब उन्हें गुस्सा आ गया और वह बहुगुणा पर बरस पड़े। वह दस मिनट तक बोलते रहे और बहुगुणा का मुँह बंद हो गया।

पर मधु लिमये का मुँह यह आरोप लगाकर बंद नहीं किया जा सका कि वह रूस के हाथ में खेल रहे हैं। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी। उन्होंने अपने जिम्मे जो काम लिया था उसे जारी रखा और वह काम था मोरारजी भाई को अपदस्थ करना। उनके विचार से इस उद्देश्य की पूर्ति का सर्वोत्तम तरीक़ा यह था कि जनसंघ पर आरोप लगाये जायें, जो देसाई का समर्थक था। रूस से लौटने के बाद मधु लिमये ने चौधरी चरणसिंह से दोस्ती बढ़ानी शुरू की। उस समय चौधरीजी जनसंघ के साथ थे। लेकिन मधु लिमये उनका जनसंघ से संबंध तोड़ने की चेष्टा में लगे हुए थे। वह चौधरी को "फ़ासिस्ट राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" के विरुद्ध आंदोलन में शामिल होने के लिए उकसा रहे थे। पर उस समय न तो चरणसिंह इसके लिए तैयार थे और न राजनारायण।

इसी बीच मधु लिमये अटलबिहारी वाजपेयी से भी मित्रता बढ़ाने की चेष्टा कर रहे थे, क्योंकि उन्हें यह आशा थी कि शायद वाजपेयी भी उनका साथ दें। दिल्ली के एक व्यापारी घराने की—जिसके बारे में सभी जानते हैं कि वह रूस का समर्थक है—अटलबिहारी वाजपेयी को साथ मिलाने के काम पर लगाया गया। श्रीमती कौल, जो वाजपेयी परिवार की दोस्त हैं और वाजपेयीजी के घर ही में रहती हैं, से मेलजोल बढ़ाने की कोशिश की गयी। एक बार तो एक समाचारपत्र ने सुब्रह्मण्यम स्वामी से एक लेख लिखवाया जिसमें वाजपेयी और उनकी विदेश-नीति की आलोचना की गयी थी। संयोग की बात है कि एक संवाददाता ने, जिसकी मधु लिमये से मित्रता है, इस लेख के प्रकाशित होने से कई दिन पहले उसका मसौदा मधु लिमये को दिखा दिया। मधु लिमये उसे लेकर सीधे वाजपेयी

के पास पहुँचे और उन्हें सब-कुछ बता दिया। यह सब वाजपेयी का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए किया गया था। और जब उनकी चीन-यात्रा की घोषणा कर दी गयी तो मधु लिमये ने वाजपेयी से दोस्ती बढ़ानी बंद कर दी।

लिमये के प्रयत्नों को सबसे अधिक बल उस समय मिला जब चरणसिंह रेंगते हुए फिर देसाई मंत्रिमंडल में जा घुसे और राजनारायण को अकेला छोड़ गये। राजनारायण को बड़ा क्रोध आया और कहते हैं कि उन्होंने कहा : "अब मेरे हाथ देखना।" उसके बाद राजनारायण का एक ही लक्ष्य था कि या तो मोरारजी सरकार को अपदस्थ किया जाये, या फिर चौधरी चरणसिंह को इस बात के लिए तैयार किया जाये कि वह जनता पार्टी छोड़कर भारतीय लोकदल को पुनर्जीवित करें। जहाँ तक मोरारजी सरकार को हटाने का संबंध था, मधु लिमये का भी यही उद्देश्य था। उसके बाद से दोनों ने मिल-जुलकर काम शुरू किया। इसमें सामने थे राजनारायण और परदे के पीछे मधु लिमये। लिमये ने राजनारायण को विश्वास दिला दिया था कि सबसे पहला काम तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध लड़ाई छेड़ना है। राजनारायण ने तनिक भी झिझक नहीं दिखायी। जनसंघ ने उनका साथ नहीं दिया और वह अब भी उसे दिखा देंगे कि वह कितनी तबाही मचा सकते हैं।

राजनारायण और लिमये को भली भाँति मालूम था कि जनता पार्टी के संगठन पर अधिकार पाना उनके बूते की बात नहीं है। राजनारायण पार्टी के कार्यालय से चार लाख सदस्यता फ़ार्म ले गये थे, लेकिन फ़ार्म ले जाना एक बात है, सदस्य बनाना दूसरी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासनबद्ध सदस्यों के कारण जनसंघ को सदस्य भर्ती करने का काम शीघ्रातिशीघ्र करने में सफलता मिली थी और यह स्पष्ट था कि यदि जनता पार्टी के संगठन के चुनाव होते हैं तो जनसंघ का ही वर्चस्व रहेगा। इसलिए राजनारायण और लिमये ने दल के चुनावों को स्थगित करने का अभियान चलाया और उनका बहाना यह था कि पचास प्रतिशत या उससे भी अधिक नये सदस्य जाली हैं। 11 मार्च,1979 को राजनारायण ने पटना में घोषणा की कि भारतीय लोकदल के सदस्य विभिन्न स्तरों पर जनता पार्टी के समानांतर संगठन स्थापित करेंगे। उनका कहना था कि भालोद ने यह निर्णय इस कारण किया है कि जनसंघ घटक ने बहुत-से "जाली" सदस्य भर्ती किये हैं।

अब राजनारायण अंतरराष्ट्रीय विषयों के बारे में भी भाषण देने लगे थे। कभी तो वह भारत और रूस के संयुक्त वक्तव्य का स्वागत करते थे और कभी तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता के वाजपेयी द्वारा स्वीकार कर लिये जाने की कटु आलोचना। यह स्पष्ट था कि वह अपने साथी मधु लिमये की बातों को ही तोते के समान दोहराते थे। मधु लिमये को तो एक ऐसा व्यक्ति मिल गया था जो उनके लिए धोखे की टट्टी का काम कर सकता था और घोर स्पष्टवादी था, जितना कि मधु लिमये स्वयं नहीं हो सकते थे। मोरारजी देसाई और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध राजनारायण के अभियान को समर्थन देनेवाले थे राजेंद्र पुरी, जो राजनारायण के "प्रेस प्रतिनिधि" का काम करते थे। इन महाशय ने अपनी राजनीतिक और पत्रकारिता से असंबद्ध आकांक्षाओं के कारण अपनी कार्टून बनाने की प्रतिभा पर पानी फेर लिया था। जनता पार्टी बनने के कुछ ही समय बाद पुरी जनता पार्टी के कुछ नेताओं से मिले थे और उनसे कहा था कि वह चुनावों में उनके लिए प्रचार का काम करने को तैयार हैं। जनता पार्टी के नेताओं ने सोचा कि श्री पुरी चुनाव-संबंधी प्रचार में सहायक होंगे और उन्होंने पुरी को रख

लिया। उसके बाद पुरी ने इस बात पर ज़ोर देना प्रारंभ किया कि उन्हें पार्टी का सचिव बना दिया जाये। सुरेंद्रमोहन और कुछ अन्य नेताओं ने इस पर आपत्ति की, पर मोरारजी देसाई तभी से पुरी से बहुत प्रभावित थे जब उनका एक कार्टून स्टेट्समैन में छपा था जिसमें यह दिखाया गया था कि श्रीमती गांधी एक के बाद एक कांग्रेसी के ऊपर खड़ी हैं, लेकिन फिर भी उनका क़द उनके सामने खड़े मोरारजी की तुलना में कम ही है। उन दिनों मोरारजी भाई और इंदिरा गांधी में कांग्रेस के नेता-पद के लिए होड़ चल रही थी। जब यह मोरारजी भाई के सामने आया तो उन्होंने कहा, "चलो, पुरी को सचिव बना दो।" इस प्रकार पुरी को महासचिव नंबर 5 नियुक्त कर दिया गया और उन्हें प्रचार का काम सौंप दिया गया। बाद में पता चला कि वह इस क्षेत्र में बहुत-कुछ नहीं कर पाये और एक अलग प्रचार-शाखा प्रत्यक्ष रूप से श्री सुरेंद्रमोहन की देख-रेख में स्थापित की गयी। फिर भी जनता पार्टी की अप्रत्याशित जीत के कारण कार्टून बनानेवाले पुरी की महत्वाकांक्षाएँ, जो अब प्रचार के विशेषज्ञ बन बैठे थे, और भी बढ़ गयीं। उन्होंने प्रधानमंत्री देसाई के प्रेस-सचिव का पद प्राप्त करने की बड़ी कोशिश की और जब उसमें असफलता हुई तो निराश होकर बैठ गये। अब उनसे महासचिव का पद भी छिन गया था। चारों ओर से निराश होकर वह नानाजी देशमुख के पास गये और उन्हें इसके बारे में बड़ा लंबा-चौड़ा भाषण दे डाला कि दीनदयाल उपाध्याय शोध-संस्थान के सार्वजनिक संबंधों को किस प्रकार संगठित किया जाये और किस प्रकार जनसंघ घटक को इस बात की आवश्यकता है कि उसका ठीक-ठीक "चित्र जनता के सामने प्रस्तुत किया जाये।" उनका तर्क था कि क्या यह दुख की बात नहीं है कि चुनाव में इस घटक की सफलताएँ जनता में उसके समर्थन के अनुपात में कम ही रही हैं? इस प्रकार की बातें करने के बाद पुरी ने यह प्रस्ताव रखा कि वह सारे जनसंघ घटक के प्रचार का काम संभालने के लिए तैयार हैं और देश की कुछ चोटी की पत्रिकाओं में अपने "प्रभावशाली कॉलमों" के माध्यम से जनसंघ का बहुत भला कर सकते हैं। इस सारे काम के बदले में वह केवल इतना चाहते थे कि उनका मासिक ख़र्च, लगभग पाँच हज़ार रुपया, दे दिया जाये। जब नानाजी ने उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो वह राजनारायण के पास पहुँचे। राजनारायण उनके प्रयोजनों के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति थे। यद्यपि राजनारायण अँग्रेज़ी के प्रति अपनी घृणा का बड़ा प्रचार करते हैं, पर उनमें यह दुर्बलता है कि अगर कोई व्यक्ति अच्छी अँग्रेज़ी में उनके वक्तव्यों का मसौदा तैयार कर दे तो वह उससे बड़े अभिभूत हो जाते हैं। व्यंग्य-चित्रकार होने के नाते पुरी अपनी भाषा में राजनारायण के विशिष्ट मुहावरे का प्रयोग भी कर सकते थे। लगता है कि राजनारायण-चरणसिंह कैंप की नौकरी स्वीकार करने के बाद पुरी का सबसे बढ़िया काम उस वक्तव्य का मसौदा तैयार करना था जिसमें देसाई सरकार के सदस्यों को 'नपुंसकों के पुंज' की संज्ञा दी गयी थी। अब पुरी जैसे प्रचार-विशेषज्ञ की सेवाएँ प्राप्त करने के बाद राजनारायण, लँगोटा कसकर मोरारजी के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो गये।

मधु लिमये इसी बीच चरणसिंह और बहुगुणा को, जो उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुत समय से एक-दूसरे के शत्रु थे, साथ लाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। लिमये ने चरणसिंह को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि यदि बहुगुणा उनके साथ मिल जायें तो उन्हें मुसलमानों के वोट मिल सकते हैं। जिन दिनों बहुगुणा उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने राज्य के मुसलमानों के दिल में

घर कर लिया था। यह गढ़वाली राजनीतिज्ञ नवाबों और बेगमों से लेकर ग़रीब-से-ग़रीब मुसलमानों तक में लोकप्रिय था। बहुगुणा उर्दू बहुत अच्छी बोलते हैं और बीच-बीच में शेरो-शायरी भी करने लगते हैं, जो मुसलमानों का दिल जीत लेती है। जनता से अपने संबंध बनाने की योग्यता बहुगुणा में बहुत है। वह मुसलमानों के घरों में चले जायेंगे और उनके साथ बैठकर बेतकल्लुफ़ी से खाना खा लेंगे और जल्दी ही उनमें घुल-मिल जायेंगे। लिमये को पता था कि बहुगुणा में कितनी योग्यता है और उन्हें यह भी मालूम था कि यदि उनके रूसी मित्र देश के भावी नेतृत्व के लिए किसी व्यक्ति का समर्थन करेंगे तो वह बहुगुणा ही होगा। परंतु चरणसिंह और बहुगुणा में परस्पर वैमनस्य और संदेह की भावना इतनी गहरी थी कि लिमये को इन दोनों को समझाने-बुझाने में बहुत समय लगा। इन दोनों ने एक-दूसरे के विरुद्ध मोरारजी भाई को चिट्ठियाँ लिखी थीं और दोनों में से कोई भी उन आरोपों को नहीं भूल सकता था जो उन चिट्ठियों में लगाये गये थे। इस बात के बावजूद दोनों को मधु लिमये की बात में तुक दिखायी दिया। बहुगुणा बहुत दिनों से भरे बैठे थे कि उनके अपने ही राज्य में उनको विवशता की स्थिति में पहुँचा दिया गया था, जहाँ से वह किसी दिन देश के प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुँचने की आकांक्षा रखते थे। बहुगुणा ने इस बात को महसूस किया कि चुनाव हुआ तो उत्तर प्रदेश में स्थिति यह रहेगी कि सबसे पहले इंदिरा कांग्रेस, दूसरे नंबर पर भालोद, तीसरे नंबर पर जनसंघ और चौथे नंबर पर उनका दल होगा। यह बड़ी निराशाजनक स्थिति थी। वह भानमती के कुनबे जैसी सरकार के सदस्य बनने के कारण मुसलमानों में अपनी लोकप्रियता खो रहे थे, क्योंकि जनसंघ सरकार का एक मुख्य घटक था। वह सरकार में रहते हुए ऐसी बातें कह या कर नहीं सकते थे जिनसे मुसलमानों में उनका समर्थन बना रहे। अलीगढ़ में भीषण दंगों के दौरान भी वह वहाँ नहीं जा पाये थे। उनका बड़ा व्यावहारिक दृष्टिकोण है और यह बात उनकी समझ में आ गयी कि उत्तर प्रदेश में दूसरे नंबर की राजनीतिक शक्ति होने के लिए भी उन्हें चरणसिंह का साथ देना पड़ेगा। उनका सोचना यह था कि यदि वे दोनों इकट्ठे हो जायें तो शायद श्रीमती गांधी की सफलता के ख़तरे को भी रोक सकें। उनके सामने प्रश्न यह था कि क्या जाट-नेता उन्हें अपना दूसरे नंबर का सहायक मानने को तैयार होंगे? इसी संदर्भ में मधु लिमये ने अपनी चाल चली। अप्रैल 1978 में जब मधु लिमये ने चरणसिंह से यह बात कही थी तो उन्होंने तुरंत मना कर दिया था। जनसंघ द्वारा "पीठ में छुरा घोंपे जाने" के परिणामस्वरूप चरणसिंह को जब छः महीने तक राजनीतिक बनवास में रहना पड़ा तब जाकर उन्हें लिमये के प्रस्ताव में कोई अच्छाई दिखायी दी।

दोनों में सौदा उस समय हुआ जब चरणसिंह ने बहुगुणा से कहा : "मेरा एक बेटा है, लेकिन आप जानते ही हैं कि वह राजनीति में रुचि नहीं रखता। मेरे बाद मेरे सारे अनुयायी आप ही के तो होंगे।" दो पुराने शत्रुओं में इस आधार पर समझौता हुआ। इसके बाद बहुगुणा ने मोरारजी देसाई और चरणसिंह के बीच समझौता कराने की चेष्टा की, पर उनके प्रयत्नों को उस समय विफल बना दिया गया। जनसंघ अपने ही कुछ कारणों से इन दोनों को साथ लाने में प्रमुख भूमिका निभाना चाहता था। यद्यपि जनसंघ के लोगों ने चरणसिंह का साथ छोड़ दिया था और वे मोरारजी का समर्थन करने लगे थे, क्योंकि उन्हें आशा थी कि मोरारजी के प्रधानमंत्री रहने पर ही सरकार भली भाँति चल सकती है, पर उन्हें इस बात

से भी चिंता थी कि चरणसिंह पार्टी को छोड़ गये तो सरकार का स्थायित्व समाप्त हो जायेगा। अंततोगत्वा चंद्रशेखर, नानाजी और हेगड़े चरणसिंह को इस बात के लिए तैयार करने में सफल हो गये कि वह उप-प्रधानमंत्री बनना स्वीकार कर लें। मोरारजी ने यह बात स्वीकार कर ली, लेकिन साथ ही एक निर्णय किया कि चरणसिंह के साथ-साथ बाबू जगजीवनराम को भी उप-प्रधानमंत्री बना दिया जायेगा। यह चाल वही थी जो नेहरूजी ने 1960 के बाद वाले दशक में मोरारजी के साथ चली थी। 1961 में पंड़ित गोविंदवल्लभ पंत के निधन के बाद कांग्रेस संसदीय दल का एक उप-नेता चुनने का प्रश्न उठा था और देसाई को यह जानकर बड़ी निराशा हुई थी कि जगजीवनराम उस पद के उम्मीदवार हैं। मौलाना आज़ाद और गोविंदवल्लभ पंत की मृत्यु के बाद मंत्रिमंडल में दूसरे नंबर पर मोरारजी थे और उन्होंने नेहरूजी को इस परिपाटी की याद दिलायी कि दूसरे नंबर का व्यक्ति ही उप-नेता बनता है। उसके बाद नेहरूजी ने यह प्रस्ताव रखा कि दो उप-नेता चुने जायें—एक लोकसभा से और दूसरा राज्यसभा से। देसाई ने नेहरू से कहा : "यदि आपने यही प्रस्ताव सरदार पटेल के सामने रखा होता तो वह मंत्रिमंडल से पदत्याग कर जाते। अब तक मैंने इस नियम का पालन किया है कि मैं दल में वही पद स्वीकार करूँगा जिसके लिए मुझे सर्वसम्मति से चुना जायेगा। यदि उप-नेता के पद के लिए चुनाव होता है तो मैं उसमें खड़ा नहीं होऊँगा और मैं यह भी महसूस करता हूँ कि मुझे मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे देना चाहिए।" नेहरूजी ने कहा कि मेरे लिए जगजीवनराम को इस चुनाव में खड़ा न होने के लिए राज़ी करना कठिन है। अब मोरारजी असमंजस में पड़ गये। उन्होंने यह देख लिया था कि चुनाव कराने का निश्चय कर लिया गया है क्योंकि सब लोग जानते थे कि यदि मोरारजी को सर्वसम्मति से चुने जाने का आश्वासन नहीं होगा तो वह चुनाव में खड़े नहीं होंगे। पर मोरारजी इतनी आसानी से हथियार डालने वाले नहीं थे। उन्होंने नेहरूजी से कहा कि यदि ऐसी बात है तो मैं चुनाव लड़ूँगा। देसाई ने अपनी जीवनी में लिखा है : "ऐसी हवा बनी हुई थी कि मैं अवश्य चुन लिया जाता। इस पर जवाहरलाल ने पैंतरा बदला और कहने लगे कि यदि किसी भी मंत्री को उप-नेता न बनाया जाये और लोकसभा के एक सामान्य सदस्य और राज्यसभा के एक सामान्य सदस्य को दो उप-नेताओं के रूप में चुन लिया जाये तो क्या मुझे इसमें कोई आपत्ति होगी ?" अंततोगत्वा नेहरू ने यही निर्णय किया और देसाई को इस बात में कोई संदेह नहीं था कि ये सारी योजनाएँ केवल इस कारण लागू की गयी थीं कि उन्हें उप-नेता न बनने दिया जाये।

अब मोरारजी भाई वैसी ही चाल चरणसिंह के विरुद्ध चल रहे थे। चरणसिंह ने समझ लिया था कि यह तो उन्हें नीचा दिखाने की चाल है। उन्होंने क्रोध में आकर एक अविस्मरणीय बात कही थी : "मेरे सरकार में आने का प्रश्न समाप्त हो गया है—अंतिम रूप से समाप्त हो गया।"

कुछ ही सप्ताह में चरणसिंह ने उप-प्रधानमंत्री के पद की शपथ ली और साथ ही बाबू जगजीवनराम भी उप-प्रधानमंत्री बना दिये गये। लेकिन बेचारे राजनारायण को अब कोई पूछता न था, जिसने अपने नेता के लिए इतना शोर बचाया था और भागदौड़ की थी। उसी समय उन्होंने अपने कुछ समर्थकों को बताया कि आज से मेरा एकमात्र उद्देश्य देसाई सरकार की जड़ खोदना होगा। इसके लिए मैं कोई भी क़ीमत देने के लिए तैयार हूँ, यदि इंदिरा गांधी और संजय के सामने हथियार

डालने पड़े तो मैं वह भी करूंगा। श्रीमती गांधी स्वयं गहरे संकट में थीं और उन्होंने सभी को परोक्ष रूप से संदेश भेजे थे। तिहाड़ जेल से उन्होंने चौधरी चरणसिंह के जन्मदिन पर उन्हें एक वड़ा-सा गुलदस्ता भेजा था। दोनों उस समय मुसीवत में थे। चरणसिंह देसाई के विरुद्ध जान की वाज़ी लगाकर लड़ रहे थे और उनका विचार था कि किसान सम्मेलन में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके वह सरकार को हिला देंगे। उनके जाट-समर्थक मोरारजी देसाई से लोहा लेने पर तुले वैठे थे। उत्तर प्रदेश और हरियाणा के जाट-क्षेत्रों में वहुधा लोग यह कहते सुनायी देते थे कि "एक वार चौधरी साहव और इंदिरा गांधी इकट्ठे हो जायें तो कोई भी शक्ति उन्हें हरा नहीं सकेगी।" यदि चरणसिंह के खेमे के "शांति-प्रिय लोग" उन्हें उप-प्रधानमंत्री का पद स्वीकार करने के लिए न मना पाते तो इंदिरा गांधी और चरणसिंह का गँठजोड़ किसान सम्मेलन के वाद अगले दिन ही हो जाता।

अव राजनारायण इंदिरा गांधी के साथ समझौता करने के लिए वहुत उता-वले हो रहे थे। रास्ते पहले से ही खुल चुके थे, क्योंकि उस समय से कम-से-कम आधे दर्जन लोग चरणसिंह और श्रीमती गांधी के परिवार के वीच फिर से वात-चीत प्रारंभ कराने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। उनमें एक दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डॉ० स्वरूपसिंह भी थे जो चरणसिंह के संबंधी हैं और वंसीलाल के निजी मित्र। देवीलाल की सहायता से वह अव राज्यसभा के सदस्य वन चुके थे। एक और सज्जन व्रह्मदत्त थे, जो पहले चरणसिंह के सहायक थे और अव इंदिरा गांधी के दल में हैं। कुलदीप नारंग और उनके व्यंग्य चित्रकार मित्र राजेंद्र पुरी भी थे, जिन्हें मोरारजी से पुरानी शिकायत थी। एक और सज्जन वुद्धप्रिय मौर्य थे जिनका चरणसिंह के समर्थकों के साथ उतना ही निकट संवंध था जितना कि श्रीमती गांधी के साथ। ये सभी महानुभाव अपने-अपने ढंग से इन दोनों नेताओं के वीच समझौता कराने का प्रयत्न कर रहे थे। राजनारायण तो पहले ही से सुरेश और सुषमा के चित्रों का प्रचार करने में संजय गांधी के साथ सहयोग कर चुके थे। राजनारायण ने किसान सम्मेलन में इन दोनों को कामसूत्र की मुद्रा में दीवारों पर पोस्टरों के रूप में चिपका दिया था और मेनका गांधी ने उनके चित्र वड़े प्यार से अपनी पत्रिका के मुख-पृष्ठ पर छाप दिये थे। इसके वाद राजनारायण और संजय गांधी कई वार परस्पर मिले और वहुत वार रायवरेली के इस हीरो ने श्रीमती गांधी की कोठी के वाहर मारुति के इस मालिक से मिलने के लिए घंटों अपनी कार में प्रतीक्षा की। राजनारायण का कहना था कि संजय गांधी के साथ उनकी मुलाक़ातों में कोई राजनीतिक पुट नहीं है। लेकिन सभी जानते थे कि संजय राजनारायण को केवल इस वात पर वधाई देने के लिए नहीं मिल रहा था कि उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरुद्ध धर्म-युद्ध छेड़ दिया है।

राजनारायण और मधु लिमये का सबसे पहला वार जनसंघ पर इस प्रकार हुआ कि उत्तर प्रदेश सरकार से जनसंघी मंत्री निकाले गये। राजनारायण-वहुगुणा योजना में किसी हद तक जगजीवनरान भी सहायक हुए। एक कारण तो यह है कि उत्तर प्रदेश में सी० एफ़० डी० पर जगजीवनराम का अधिक प्रभाव नहीं है। दूसरे वहुगुणा ने जगजीवनराम से यह कहा कि रामनरेश यादव को अपदस्थ करना अच्छी चाल होगी जिससे कि चरणसिंह इस वात को समझ लें कि उन लोगों पर निर्भर किये विना उनका वेड़ा पार नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह निर्णय किया कि अगला मुख्यमंत्री भालोद का नहीं होगा। यही कारण था कि बनारसीदास उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। मोरारजी और उनके समर्थकों को सबसे अधिक चिंता बहुगुणा की क़लाबाज़ी पर थी। उत्तर प्रदेश में जो कुछ हुआ उसकी प्रतिक्रिया के रूप में ही उन्होंने बिहार में कर्पूरी ठाकुर को अपदस्थ करने की ठानी। प्रारंभ में श्री चंद्रशेखर इस चाल के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि वह इस समय सरकार के शत्रुओं की संख्या में वृद्धि नहीं करना चाहते थे। उनका कहना था कि इस समय पिछड़ी जातियों के दो नेता सरकार के विरुद्ध हो गये तो उसके लिए अच्छा न होगा। पर बिहार में राजपूतों के गुट की दुराकांक्षाओं के सामने ऐसे सारे तर्क असफल रहे और कर्पूरी ठाकुर को निकाल बाहर किया गया।

"मोरारजी-विरोधी युद्ध" की अंतिम लड़ाई वास्तव में कर्पूरी ठाकुर और देवीलाल के अपदस्थ होने के बाद प्रारंभ हुई। अब राजनारायण के दो शक्तिशाली साथी थे जिन्होंने विपत्ति के दिनों में चरणसिंह का समर्थन किया था। चरणसिंह ने उन दोनों के लिए उस समय कुछ नहीं किया था जब वे राजनीति में बने रहने के लिए हाथ-पाँव मार रहे थे। 12 जून को जब राजनारायण को जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से हटाया गया तो संघर्ष की स्थिति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। राजनारायण का निष्कासन इस कारण हुआ था कि उन्होंने अपने दल के ही सदस्यों की कठोरतम आलोचना और सार्वजनिक रूप से सरकारी नीतियों की निंदा की थी। उस दिन राजनारायण बँगलौर में देवराज अर्स से भेंट करने गये हुए थे। उन्होंने कहा कि मेरे विरुद्ध जो कार्रवाई की गयी है वह "राजनीतिक कार्रवाई" है। अपने विशिष्ट ढँग से राजनारायण ने घोषणा की : "मैं जनता के लिए हूँ, जनता का हूँ और जनता की ओर से हूँ...कोई भी मुझे जनता से अलग नहीं कर सकता। यह समाचार मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखता।" चरणसिंह उन दिनों शिमला में आराम कर रहे थे। उन्होंने पत्रकारों से केवल इतना कहा : "मुझे इस बारे में कुछ नहीं कहना है।"

अगले दिन जनता पार्टी की केंद्रीय अनुशासन समिति ने मुख्यमंत्री देवीलाल और हरियाणा में जनता पार्टी की अध्यक्षा श्रीमती चंद्रावती से इस बात का कारण बताने के लिए कहा कि उन्होंने नारनौल विधानसभा चुनाव में दल के उम्मीदवार के चुनाव-अभियान का खुलेआम विरोध क्यों किया था?

उधर विरोध पक्ष में भी नित नयी घटनाएँ हो रही थीं। श्रीमती गांधी और देवराज अर्स के अलग हो जाने का भी राजनीतिक स्थिति पर प्रभाव पड़ रहा था। एक बार तो यह बात फैल गयी कि इंदिरा गांधी बड़ी विकट स्थिति में पड़ गयी हैं और उनके सामने कोई चारा नहीं रहा। भानमती के कुनबे के समान बहुत-से तत्वों को मिलाकर जनता पार्टी की स्थापना करने और उसके बने रहने का मूलाधार ही नष्ट हो गया था—कम-से-कम लगता ऐसा ही था। जनता सरकार लगभग 28 महीने तक सत्तारूढ़ रही थी और इस पूरी अवधि में इसके नेता जो कुछ भी कहते या करते थे वह इंदिरा गांधी से संबंधित होता था। इंदिरा गांधी ही मुख्य विषय बन गयी थीं और ऐसा लगता था कि जनता पार्टी के नेताओं का राजनीतिक जीवन इंदिरा गांधी के उतार-चढ़ाव पर निर्भर है। इंदिरा गांधी के राजनीति में फिर प्रभावी बन जाने के डर से ही उनमें अभी तक फूट नहीं पड़ी थी।

अब जबकि इंदिरा गांधी के पुनरोदय का ख़तरा टल गया दिखायी देता था,

जनता पार्टी के विभिन्न घटकों में फिर से सरगर्मियाँ प्रारंभ हो गयी थीं। मधु लिमये पूरे ज़ोर-शोर से अपने काम में जुटे हुए थे। 17 मई को उन्होंने एक बैठक बुलायी ताकि यह पता चल सके कि देश में वामपंथी दलों की एकता के उनके स्वप्न के साकार होने की कोई संभावना है या नहीं ? इस बैठक में राजेश्वर राव, भूपेश गुप्त, पी० राममूर्ति, बासवपुन्नैया, हरकिशन सिंह सुरजीत और पी० डब्ल्यू० पी० और आर० एस० पी० के प्रतिनिधि भी थे। इनके अतिरिक्त चंद्रजीत यादव, रघुनाथ रेड्डी, केशवदेव मालवीय, कर्पूरी ठाकुर, श्यामनंदन मिश्र और चौधरी ब्रह्मप्रकाश भी इस बैठक में आये। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि ये लोग उन्हीं तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्होंने बाद में मिलकर चरणसिंह सरकार को समर्थन प्रदान किया। मधु लिमये की चाल को बहुत-से व्यक्तियों ने "भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के पुराने सपने का नया रूप" कहा।

जार्ज फ़र्नांडीज़ भी पीछे नहीं रहना चाहते थे और उन्होंने जुलाई के प्रारंभ में "सभी समाजवादियों" का सम्मेलन बुलाया। यद्यपि इस सम्मेलन में दल में प्रकट होनेवाली कुछ प्रवृत्तियों पर असंतोष व्यक्त किया गया, पर समाजवादी दल के भूतपूर्व अध्यक्ष जार्ज फ़र्नांडीज़ ने कहा : "जो भी जनता पार्टी की एकता भंग करेगा वह तानाशाही के लौटने में सहायक होगा" (मेनस्ट्रीम, वार्षिक अंक, 1979 में समाजवादी नेता सुरेंद्रमोहन)।

उधर चरणसिंह के संघर्ष में विश्वास रखने वाले साथी उन पर यह दबाव डाल रहे थे कि सरकार और जनता पार्टी दोनों का परित्याग करके वह भालोद को तुरंत जीवित करें। पर इस जाट-नेता के समर्थकों में "नरमदलीय" लोग भी थे जो यह नहीं चाहते थे कि चौधरी चरणसिंह कोई जोखिम उठायें। इनमें प्रमुख थीं चौधराइन गायत्री देवी जो अपने पति से सदा यही कहती थीं कि बहुत हो चुका। उनका कहना था कि आपका "वनवास" बड़ी कठिनाई से समाप्त हुआ है और राजनारायण के लुच्चे साथी फिर आपको विस्मृति के गर्त में ढकेलना चाहते हैं। चरणसिंह उनसे सहमत होते दिखायी दे रहे थे। उनका विचार था कि वित्त-मंत्रालय से भी क्यों हाथ धोऊँ ? एक बार जब वह उत्तर प्रदेश में श्रीमती सुचेता कृपालानी के मंत्रिमंडल में थे तो उन्हें वन-विभाग दे दिया गया था, संभवतः यह सोचकर कि इतना छोटा-सा विभाग स्वीकार करने के बजाय चरणसिंह मंत्रि-मंडल छोड़ जायेंगे। पर चरणसिंह ने वन-विभाग का मंत्री होना स्वीकार कर लिया था और लोग उन्हें मिनिस्टर फ़ॉर रेस्ट कहने लगे थे। 'आधी छोड़ पूरी को धावै, पूरी मिलै न आधी पावै' वाली बात थी। चरणसिंह ने सोचा कि राजनारायण चाहे कितना ही दबाव डालें, वह जहाँ हैं वहीं बने रहेंगे। और जब उनके "उग्रवादी' मित्रों ने बहुत दबाव डाला तो उन्होंने राजनारायण से "अंतिम रूप से संबंध-विच्छेद" करने की घोषणा कर दी। यह 3 जुलाई की बात है, राजनारायण के जनता पार्टी से इस बात पर इस्तीफ़ा देने के बस दस दिन बाद की कि संसदीय बोर्ड ने देवीलाल से हरियाणा के जनता विधायक दल का विश्वास प्राप्त करने को क्यों कहा। चरणसिंह ने दिल्ली की एक पत्रिका में प्रकाशित राजनारायण के इस वक्तव्य पर आपत्ति की कि वित्तमंत्री ने ही उनको "त्याग-पत्र देने की बात" सुझायी थी। चरणसिंह ने कहा, "इस इंटरव्यू से तो हद हो गयी है। मैं समझता हूँ कि अब उनके साथ मेरा कोई संबंध नहीं रहेगा।" उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि राजनारायण ने उनसे अपने साथ ही जनता पार्टी छोड़ने के लिए कहा था पर उन्होंने इंकार कर दिया था। चौधरी साहब ने कहा : "जब

राजनारायण ने ज़ोर दिया तो मैंने कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, करो" (स्टेट्समैन, 4 जुलाई, 1979)। पर राजनारायण ने चरणसिंह के शब्दों की नयी ही व्याख्या की। उसका कहना था कि मैं चरणसिंह से संबंध-विच्छेद नहीं कर सकता क्योंकि उनके साथ मेरे संबंध "आध्यात्मिक और उदात्त" हैं। देवीलाल ने भी कहा कि वह चरणसिंह के साथ संबंध नहीं तोड़ सकते।

यद्यपि उनके नेता ने उनका तिरस्कार किया था, राजनारायण और उनके कुछ घनिष्ठ मित्र अगली चाल सोचने लगे। लोकसभा का अधिवेशन कुछ ही दिनों में प्रारंभ होनेवाला था और राजनारायण को लग रहा था कि उन्हें सभा में अकेले ही बैठना पड़ेगा। यहाँ पर डॉ० राममनोहर लोहिया के पुराने अनुयायियों की पुरानी यारी काम आयी। जनता के एक संसद-सदस्य और राजनारायण के पुराने मित्र मनीराम बागड़ी यह नहीं चाहते थे कि उनका मित्र अकेला ही रहे और उन्होंने राजनारायण के साथ मिलने का फ़ैसला कर लिया। पर इस दशा में भी वे दो ही होते और ऐसे नेता के लिए, जो सरकार का तख़्ता पलटना चाहता था, यह स्थिति सम्मानजनक नहीं थी।

बागड़ी ने राजनीति में अपने मित्रों से बातचीत प्रारंभ की। वह बुद्धप्रिय मौर्य से भी मिलने गये, जिनके साथ उनके काफ़ी समय से घनिष्ठ संबंध रहे हैं। उन्होंने मौर्य से कहा : "मैं एक बहुत बड़ी दुविधा में पड़ गया हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? राजनारायण को अकेले ही कैसे बैठे रहने देंगे?"

मौर्य ने कहा, "आप भी उनके साथ बैठिये।"

बागड़ी बोले, "वह तो मैं करूँगा ही, पर पार्टी का क्या बनेगा?"

मौर्य ने सुझाव दिया कि बागड़ी जाकर चरणसिंह से मिल लें। जब वह चरणसिंह के पास पहुँचे तो चौधरी साहब बरस पड़े, "तुम लोग दल को तोड़ रहे हो। ऐसा करना न केवल दल के हित में नहीं है, बल्कि राष्ट्र के हित में भी नहीं होगा। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।"

बागड़ी खिसियाने होकर लौट आये और फिर मौर्य के पास पहुँचे और उलाहना देते हुए बोले, "आपने मुझे वहाँ क्यों भेज दिया?"

अब बागड़ी, राजनारायण और बुद्धप्रिय मौर्य—तीनों ने मिलकर काम करना शुरू कर दिया।

स्वर्णसिंह-कांग्रेस में तो अर्स और श्रीमती गांधी में फूट पड़ जाने के बाद नयी जान पड़ गयी थी। वे लोग इस धारणा का खंडन करना चाहते थे कि वे जनता पार्टी के नेताओं के साथ मिले हुए हैं। अर्स ने 4 जुलाई को बँगलोर में सम्मेलन बुलाया था। कांग्रेसजन ने यह फ़ैसला किया कि वे दो मोर्चों पर काम करेंगे—एक तो दक्षिण में जहाँ श्रीमती गांधी की स्थिति अधिक सुदृढ़ है, वे उनका चित्र धूमिल करने का भरसक प्रयत्न करेंगे और उत्तर भारत में जनता पार्टी की जड़ों में तेल देंगे। हेमवतीनंदन बहुगुणा ने भी इस योजना का समर्थन किया था, क्योंकि कांग्रेस में भूतपूर्व समाजवादी मंच के कुछ सदस्य उनसे सलाह माँगने गये थे। पर इनमें से किसी को भी पता नहीं था कि घटनाक्रम कितनी तेज़ी से चलेगा।

जब राजनारायण ने जनता पार्टी से त्यागपत्र देने की घोषणा कर दी तो बहुगुणा ने रघुनाथ रेड्डी और कांग्रेस के कई अन्य सदस्यों से कहा कि वे चह्वाण को लोकसभा में सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए राज़ी करें। उन्हें पता था कि इस प्रस्ताव का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। पर स्वर्णसिंह-कांग्रेस की मनोवृत्ति यह बन गयी थी कि वह यह प्रमाणित करना चाहती थी कि जनता

पार्टी के साथ उनका कोई लेना-देना नहीं है। पर यह चाल मधु लिमये की योजना से टकराती थी, जिसे राजनारायण कार्य-रूप में परिणत कर रहे थे। राजनारायण और मधु लिमये इस मामले को अपने दल तक ही सीमित रखना चाहते थे। उनका सोचना यह था कि पहले वार में तो सरकार के समर्थकों की संख्या घटकर 267 के आस-पास रह जायेगी और पूर्ण बहुमत के लिए कुछ ही और समर्थकों की आवश्यकता होगी। उनकी योजना यह थी कि लोकसभा के 6 सप्ताह के अधिवेशन में मोरारजी देसाई का चित्र धीरे-धीरे धूमिल कर दिया जाये और अधिवेशन के अंतिम दो-एक दिन में अचानक निंदा-प्रस्ताव लाकर उनकी सरकार को हरा दिया जाये। पर घटनाक्रम की गति ने सभी का हिसाब-किताब बिगाड़कर रख दिया।

7 जुलाई को बुद्धप्रिय मौर्य श्रीमती गांधी से मिलने गये तो देखा कि वह रुआँसी हो रही हैं। उन्होंने इंदिरा गांधी को बहुत अरसे से कभी इतना निराश नहीं देखा था। वह बोलीं, "मौर्य जी, मैं नहीं जानती कि अब क्या होगा? अर्स हमें छोड़कर चले गये और लोग कहते हैं कि आप भी जानेवाले हैं।...अक्तूबर के अंत तक मुझे भी सजा हो जायेगी...।" (लेखक के साथ भेंट के दौरान बी० पी० मौर्य)।

मौर्य ने स्पष्ट रूप से उनसे कह दिया, "हाँ, सज़ा तो आपको ज़रूर होगी।" और इस प्रकार उनकी निराशा में और भी वृद्धि कर दी थी। श्रीमती गांधी ने अगले दिन मौर्य को बुलवाकर उनसे "कुछ करने" को कहा।

मौर्य ने पूछा, "आप अविश्वास-प्रस्ताव का समर्थन क्यों नहीं कर रही हैं?"

वह बोलीं, "नहीं-नहीं, उससे कोई लाभ नहीं होगा। यह बात सुनने में बड़ी अच्छी लगती है, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकलेगा।"

मौर्य बोले, "मैं नहीं मानता। मेरा विचार है, आपको इसका समर्थन करना चाहिए। सरकार का पतन हो जायेगा।"

इंदिरा गांधी इस बात पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थीं। पूछने लगीं, "क्या आपको इस बात का विश्वास है, मौर्य जी?"

मौर्य ने बड़े विश्वास से हामी भरी।

श्रीमती गांधी की दिलचस्पी जाग उठी और वह उनसे पूछने लगीं कि आप किस आधार पर ऐसा सोचते हैं? मौर्य ने अपनी कल्पना के अनुसार पूरा चित्र श्रीमती गांधी के सामने रखते हुए कहा कि यदि वह चरणसिंह का समर्थन करने का वचन दें तो सरकार निश्चित रूप से अपदस्थ हो जायेगी।

श्रीमती गांधी मान गयीं, क्योंकि वह किसी भी क़ीमत पर जनता सरकार का तख़्ता पलटना चाहती थीं। उन्हें पूरा भरोसा था कि सरकार के पतन के बाद वह नयी परिस्थिति संभाल लेंगी।

मौर्य ने कहा, "पर आप एक वादा कीजिये।"

"क्या?"

"आपको यह वादा करना पड़ेगा कि आप प्रधानमंत्री के पद के लिए उम्मीदवार नहीं होंगी।"

ये शब्द सुनकर श्रीमती गांधी चकित रह गयीं, पर उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा, "मौर्यजी, अभी ही नहीं...मैं शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं जीवन-भर प्रधानमंत्री-पद की आकांक्षा नहीं करूँगी। परंतु मुझे अपमानित न किया जाये, मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ।"

"आपको न केवल अपमानित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि आपका सम्मान होना चाहिए। बस, आप केवल इतना कीजिये कि फिर कभी प्रधानमंत्री बनने की बात न सोचिये।"

श्रीमती गांधी बोलीं, "मौर्यजी, मैं शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं प्रधानमंत्री पद की उम्मीदवार नहीं हूँ और जीवन-भर उसकी आकांक्षा नहीं करूँगी। आप केवल इतना कीजिये कि यह सरकार समाप्त हो जाये।"

8 जुलाई की शाम तक संसद-सदस्यों में से लोहिया के 5 चेलों ने जनता पार्टी को छोड़कर राजनारायण का साथ देने का निर्णय किया। अब देवीलाल ने अपनी कार्रवाई प्रारंभ की। देवीलाल और मनीराम बागड़ी ने मिलकर पाँच और संसद-सदस्यों को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह संसद के अधिवेशन के पहले ही दिन जनता पार्टी छोड़ जायेंगे।

अगले दिन जब लोकसभा का अधिवेशन प्रारंभ हुआ और यशवंतराव चह्वाण अविश्वास-प्रस्ताव रखने के लिए सभा की अनुमति माँगने को उठे तो इंदिरा कांग्रेस के सदस्यों ने उनका समर्थन नहीं किया। यह स्पष्ट था कि श्रीमती गांधी का आदेश तब तक उनके पास नहीं पहुँचा था। कुछ ही घंटे बाद श्री सी० एम० स्टीफ़ेन ने अपने दल का रवैया बदला और यह घोषणा की कि वह चह्वाण के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। लेकिन तब तक भी किसी ने इस प्रस्ताव के ख़तरे को नहीं समझा था। सब यही सोचते थे कि अन्य प्रस्तावों के समान इस पर भी बहस होगी और मामला वहीं समाप्त हो जायेगा। उस दिन शाम को बुद्धप्रिय मौर्य फिर श्रीमती गांधी के पास पहुँचे और उन्हें जनता पार्टी के उन सदस्यों की सूची दिखायी जो अपने दल को छोड़नेवाले थे। तब तक भी श्रीमती गांधी इस बात पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थीं। "यह कैसे हो सकता है?" वह बार-बार कहती रहीं। मौर्य की सूची में जार्ज फ़र्नांडीज़ का नाम भी था और श्रीमती गांधी इस बात पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थीं कि जार्ज भी जनता पार्टी को छोड़ देंगे। उन्हें यह बताया गया था कि जार्ज फ़र्नांडीज़ अविश्वास-प्रस्ताव का विरोध करेंगे।

लेकिन अगले दिन कर्पूरी ठाकुर दिल्ली पहुँचे और जनता पार्टी से निकलने-वालों के समूह में 9 व्यक्ति अकेले बिहार के थे। दल-बदलुओं की संख्या बाढ़ की तरह भयावह होती जा रही थी और राजनीतिक वातावरण में अचानक सनसनी फैल गयी थी। चरणसिंह के जो समर्थक उनके पक्ष में क़दम उठाने से पहले भली भाँति सोच-विचार करना चाहते थे, वे भी इस वातावरण से अभिभूत हो गये थे। राजनारायण, कर्पूरी ठाकुर, देवीलाल और अन्य व्यक्तियों ने बिहार और हरियाणा के सैकड़ों समाजवादी और भालोद कार्यकर्ताओं से दिल्ली आने के लिए कहा था जिससे कि वे लोग अपने प्रतिनिधियों पर जनता पार्टी को छोड़ने के लिए दबाव डाल सकें। इन लोगों ने कुछ संसद-सदस्यों को तो ऐसा घेरा कि वे दल बदलने पर विवश हो गये।

चरणसिंह यह सब-कुछ देख रहे थे, पर अभी तक उनकी झिझक समाप्त नहीं हुई थी। मौर्य ने उन्हें बता दिया था कि श्रीमती गांधी उनका समर्थन करने के लिए तैयार हैं, पर उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। उन्होंने मौर्य से कहा, "वह मुझे धोखा देंगी।" पर मौर्य ने उन्हें बताया कि श्रीमती गांधी ने तो आपका समर्थन करने की कसम खायी है। जो भी हो, चरणसिंह ने देख लिया कि

यदि वह कोई क़दम नहीं उठाते तो उनके बहुत-से अनुनायी उनका साथ छोड़ जायेंगे। पर वह जल्दबाज़ी में कुछ करने को तैयार नहीं थे। 10 जुलाई तक जनता पार्टी का बहुमत घटकर केवल तीन सदस्यों का रह गया था और मोरारजी-भाई चरणसिंह पर दबाव डाल रहे थे कि वह लोकसभा में सरकार के समर्थन में भाषण दें। टेलीफ़ोन पर दोनों में काफ़ी गरमागरमी हो गयी और चरणसिंह बोले, "मैं अपने अनुयायियों की बात मानूंगा और वही करूंगा जो मुझसे कहेंगे" (स्टेट्समैन, 11 जुलाई, 1979)।

अचानक मोरारजी देसाई का पतन संभव हो गया था। बाबू जगजीवनराम अपनी शक्ति संगठित करने में लगे हुए थे। 11 जुलाई को उन्होंने जनता पार्टी के संसद-सदस्यों को अपने घर चाय पर बुलाया। कुल 70 सदस्य आये थे, पर समाचारपत्रों को 135 की संख्या बतायी गयी। तब तक लोकसभा में दल के सदस्यों की कुल संख्या घटकर 260 रह गयी थी। चाय का आयोजन यह प्रदर्शित करने के लिए किया गया था कि बाबूजी के साथ जनता पार्टी का बहुमत है। उनकी इस चाल से सभी परिचित थे। पहले भी उन्होंने कई बार ऐसा किया था और सभी लोग जानते थे कि उनकी इस कार्रवाई का वास्तविक उद्देश्य क्या है।

उसी दिन शाम को सी० एफ़० डी० के संसद-सदस्यों की बैठक हुई और बहुगुणा के कई समर्थकों ने यह सुझाव दिया कि उनके दल को जनता पार्टी छोड़ देनी चाहिए। पर बाबूजी के विचार कुछ और ही थे। उनका कहना था कि उस समय दल बदलना "चाणक्य नीति" होगी। वह "राजनीतिक नैतिकता" की बातें करने लगे और कहने लगे कि दल से त्यागपत्र देने के बाद फिर से चुनाव लड़ना ही नैतिक कार्रवाई होगी। बहुगुणा बैठक से उठकर चले गये। ऐसा लगता था कि यह उनकी अंतिम (?) भेंट थी।

बृहस्पतिवार, 12 जुलाई को बहुगुणा और बीजू पटनायक एक साथ मोरारजी भाई से मिलने गये। पहले बहुगुणा उनके कमरे में गये, लेकिन दोनों में काफ़ी खटपट हुई। उसके बाद बीजू पटनायक अंदर जाकर बोले कि मैं दल छोड़कर नहीं जाऊँगा, पर आप बहुगुणा को दल में रहने के लिए राज़ी कर लीजिये। देसाई बोले, "सारी शरारत की जड़ तो वही हैं। और जो कुछ हो रहा है, उन्हीं की करतूत है। इस झमेले से निपट लूं तो मैं बहुगुणा को ऐसा सबक़ सिखाऊँगा जिसे वह कभी नहीं भूलेंगे।" नारद मुनि के समान बीजू पटनायक तुरंत वहाँ से उठकर बहुगुणा के पास गये और उन्हें सारी बात बता दी।

उसी रात को बहुगुणा, पटनायक और मधु लिमये की बैठक चंद्रशेखर के घर पर हुई। इन लोगों ने चंद्रशेखर के सामने यह सुझाव रखा कि जनता सरकार को बचाने का एकमात्र उपाय यह है कि जनसंघ को निकाल दिया जाये। पर चंद्रशेखर यह मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनका कहना था, "आप चाहते हैं कि जो लोग चुपचाप बैठे हैं, उनको तो निकाल दूं और जो दल बदल रहे हैं उनकी लल्लो-चप्पो करूँ? यह क्या बात हुई?" जहाँ तक चंद्रशेखर का अपना संबंध है, उन्होंने मोरारजी भाई को वचन दे दिया था कि आपके साथ मतभेद होते हुए भी मैं आपके साथ हूँ और कम-से-कम अविश्वास-प्रस्ताव पर मतदान हो लेने से पहले आपके विरुद्ध कुछ नहीं कहूँगा।

अगले दिन जनता पार्टी के संसदीय बोर्ड की बैठक होनी थी और जार्ज फ़र्नांडीज़ को यह सुझाव रखना था कि प्रधानमंत्री त्यागपत्र दे दें। यह निर्णय हो चुका था कि जगजीवनराम और वाजपेयी इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगे।

चंद्रशेखर ने फिर इस प्रकार के किसी प्रस्ताव का समर्थन करने से इंकार कर दिया था और यह कहा था कि मैं राजनीति में "राजनीति की गरिमा" को अक्षुण्ण रखने के लिए आया हूँ और यदि कोई ऐसी बात करेगा तो मैं उस व्यक्ति को पार्टी से निकाल दूंगा। जार्ज फ़र्नांडीज़ ने यह प्रस्ताव रखा और बाबूजी ने सहमति में सिर हिलाया। चंद्रशेखर चुप रहे। मोरारजी भाई अपनी बात पर अड़े रहे। उनका कहना था कि सभी कुल 47 सदस्य दल और सरकार को छोड़कर गये हैं और 70 तक चले जायें तब भी सरकार बनी रह सकती है। उसी दिन बहुगुणा ने पार्टी का साथ छोड़ दिया।

14 जुलाई की रात को जगजीवनराम ने मोरारजी भाई को एक लंबी चिट्ठी लिखी जो सरकार के विरुद्ध स्पष्ट रूप से दोषारोपण का प्रतीक थी। चिट्ठी की प्रतियाँ चंद्रशेखर और बहुगुणा को भी भेजी गयीं। अगले दिन बहुगुणा ने अपने कुछ समर्थकों और कांग्रेस नेताओं के साथ इस संबंध में बातचीत की कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को मोरारजी का साथ देने से रोकने के लिए क्या, उपाय किये जाने चाहिएँ? बहुगुणा ही ने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त की और पलड़ा मोरारजी के विरुद्ध झुक गया। यह काम सुरजीत के माध्यम से किया गया जिन्हें वास्तव में देवीलाल को हरियाणा में फिर से मुख्यमंत्री बनाने की चिंता थी और उसका कारण संभवतः यह था कि देवीलाल ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के दो नेताओं को अपने मंत्रिमंडल में ले लिया था। अभी यह बैठक चल ही रही थी कि बाबूजी का टेलीफ़ोन आया कि उन्होंने मोरारजी भाई को चिट्ठी लिख दी है जिसमें वे सभी आरोप हैं जो बहुगुणा ने सरकार पर लगाये थे।

बहुगुणा रुखाई से बोले, "पर उसमें त्यागपत्र का शब्द नहीं है।" उन्हें उत्तर मिला, "वह कल कर देंगे।"

उधर बाबू जगजीवनराम मोरारजी से मिलने गये और मोरारजी ने यह बात स्वीकार कर ली कि उनकी चिट्ठी में जो बातें उठायी गयी थीं उन पर अविश्वास-प्रस्ताव का निपटारा होने के बाद वाद-विवाद किया जायेगा। संभवतः बाबूजी को ऐसा लगा कि बाद में मोरारजी भाई उनके पक्ष में पद-त्याग कर देंगे और इसलिए उन्होंने यह वादा किया कि वह दल में ही रहेंगे और उसका समर्थन करेंगे। लेकिन फिर भी उसी दिन राष्ट्रपति भवन से लौटने के बाद जगजीवनराम ने चंद्रशेखर से कहा कि वह दल और सरकार, दोनों को छोड़ रहे हैं। तब तक उनके पास कांग्रेसी पहुँच चुके थे। समाचारपत्रों में ख़बरें आने लगी थीं कि वह कांग्रेस में जा रहे हैं। पर जगजीवनराम संभवतः इस कारण चुप हो गये कि कांग्रेस के नेताओं ने कांग्रेस में उनका स्वागत करने का तो वचन दिया था, लेकिन इस बात का वादा करने से इंकार कर दिया था कि बाबूजी को नेता बनाया जायेगा।

रविवार को तीसरे पहर तक मोरारजी को उन व्यक्तियों से अपनी स्थिति का मूल्यांकन प्राप्त करने का अवसर मिला जिन पर वह विश्वास करते थे। उनमें से एक थे गृहमंत्री एच० एम० पटेल। जार्ज फ़र्नांडीज़, जिन्होंने बृहस्पतिवार को सरकार के समर्थन में धुआंधार भाषण दिया था, उस दिन प्रातः साथ छोड़ गये थे। अब और कोई चारा नहीं था। मोरारजी भाई राष्ट्रपति भवन गये और अपना त्यागपत्र संजीव रेड्डी के हाथ में दे दिया।

श्रीमती गांधी इस सारे घटनाचक्र को देख-देखकर ख़ुशी से फूली न समाती थीं। रूस का एक संसद-सदस्य पीटर वाई० स्ट्राटमानिस अपने राजदूतावास में बैठा सारी स्थिति को ध्यान से देख रहा था।

9

क्या वह लौटेंगी ?

कहाँ तो श्रीमती गांधी भारतीय राजनीति की "अछूत" थीं और कहाँ वह इस स्थिति में पहुँच गयीं कि जिसे चाहें उसे गद्दी पर बिठा दें ! एक पखवाड़े से भी कम समय में उनकी स्थिति में इतना परिवर्तन हो गया था जिसकी उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी। 8 जुलाई तक वह निराशा के गर्त में थीं और उन्हें विश्वास था कि अक्तूबर तक उन पर मुक़दमा चलेगा। उनके पुराने पिछलग्गू देवराज अर्स ने उन्हे ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया था कि आगे कोई आशा नहीं थी। एक ही बार में न केवल कर्नाटक उनके हाथ से निकल गया, बल्कि लोकसभा में विरोध-पक्ष का नेतृत्व भी ऐसा लगता था कि वह इस वार से संभल नहीं पायेंगी। लेकिन अब राजनीति का सारा संतुलन उनके हाथ में आ गया था और यह स्थिति बन गयी थी कि जिस ओर वह हो जायें वही पक्ष जीत सकता था। यह परिवर्तन इतनी तेज़ी से आया था कि सारे दल और सारे राजनीतिज्ञ अचंभे में पड़ गये थे। देवराज अर्स को भी कम अचंभा नहीं हुआ था। उसकी सारी चालों के दो आधार थे—एक तो यह कि जनता सरकार ज्यों-त्यों करके एक वर्ष और घिसट ही जायेगी और दूसरा यह कि अक्तूबर तक श्रीमती गांधी जेल में होंगी। पर ये दोनों धारणाएँ ग़लत सिद्ध हुईं। देवराज अर्स स्वयं पृष्ठभूमि में चले गये थे। उनका पतन भी उतना ही तीव्र था जितना कि उनका उत्थान। जब यशवंतराव चह्वाण ने लोकसभा में सरकार के विरुद्ध अविश्वास-प्रस्ताव रखने का निर्णय किया तो अर्स ने उन्हें टेलीफ़ोन पर प्रस्ताव पेश न करने के लिए कहा। उनका कहना था, "मेरी सारी योजनाओं पर पानी मत फेरिये।" आगे चलकर क्या होगा, इससे वह पहले ही आशंकित थे। राजनारायण उनसे बेंगलौर में मिले थे और संभवत: अर्स ने उनके मन की बात जान ली थी। उन्हें यह आभास हो गया था कि संभवत: राजनारायण श्रीमती गांधी और संजय से जा मिलेंगे। इस प्रकार अर्स के किये-कराये पर पानी फिर सकता था। पर अब बहुत देर हो चुकी थी। घटनाक्रम पर कोई नियंत्रण नहीं रहा था और ऐसा लगता था कि सभी कुछ

अपने-आप हो रहा है।

इस घटनाक्रम का सूत्रपात मोरारजी के त्यागपत्र के साथ हुआ। राष्ट्रपति ने सतारा के 66-वर्षीय यशवंतराव चह्वाण को बुलाया और उनसे सरकार बनाने के लिए कहा। कुछ दिन पहले तक तो श्री सी० एम० स्टीफ़ेन को ही सरकार बनाने का निमंत्रण मिलता, पर अर्स ने स्टीफ़ेन को उस अवसर से वंचित कर दिया था। वह अब विपक्ष के नेता नहीं रहे थे। चह्वाण ने दो दिन तक भरसक प्रयत्न किया, पर सरकार बनाना उनके बूते की बात नहीं थी। जनसंघ या इंदिरा कांग्रेस का समर्थन प्राप्त किये बिना कोई भी सरकार नहीं बना सकता था और अधिकतर लोगों की दृष्टि में ये दोनों संगठन "अछूत" थे। जो भी हो, जनसंघ जनता पार्टी को छोड़ना नहीं चाहता था और श्रीमती गांधी उन लोगों के साथ समझौता नहीं कर सकती थीं जो कांग्रेस में ही उनके "शत्रु" और "ग़द्दार" थे। वह यह सोच भी नहीं सकती थीं कि शासन की बागडोर चह्वाण और उनके साथियों के हाथ में आ जाये। उनकी दृष्टि में तो इंदिरा-कांग्रेस के अतिरिक्त और कोई कांग्रेस थी ही नहीं। चह्वाण ने चरणसिंह से परोक्ष रूप से जानना चाहा, पर चरणसिंह तो स्वयं उस गद्दी पर बैठना चाहते थे। यह उनका अंतिम अवसर था और उसे वह किसी भी क़ीमत पर हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। चह्वाण ने सरकार बनाने के प्रयत्न छोड़ दिये और राष्ट्रपति के नाम अपनी एक चिट्ठी में कहा, "हमारे प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ऐसे दलों और समूहों का एक गँठजोड़ बना है, जो मेरे विचार से स्थायी सरकार बना सकेगा। मुझे विश्वास है कि आप इस नयी परिस्थिति पर विचार करेंगे और अपने विवेक के अनुसार समुचित कार्रवाई करेंगे।"

अब संजीव रेड्डी को कोई क़दम उठाना था। और जब उन्होंने चरणसिंह और मोरारजी भाई, दोनों से यह कहा कि 48 घंटे के भीतर बहुमत का साक्ष्य दें तो बहुत-से व्यक्तियों ने यह संदेह किया कि वह अपनी ही राजनीति चला रहे हैं। देसाई ने प्रधानमंत्री-पद से त्यागपत्र दे दिया था, पर साथ ही यह बात भी स्पष्ट कह दी कि वह अभी तक जनता पार्टी के नेता बने हुए हैं। जनता पार्टी की कार्य-कारिणी और संसदीय बोर्ड में, जहाँ उनके त्यागपत्र का मसौदा तैयार किया था, उन्हें यह राय दी गयी थी कि वह दल के नेता के पद से भी त्यागपत्र दे दें। परंतु श्री देसाई का उत्तर था, "मैं त्यागपत्र क्यों दूं? मुझे पाँच वर्ष के लिए दल का नेता चुना गया था और संसदीय दल के दो-तिहाई बहुमत से ही मुझे पदच्युत किया जा सकता है।" इस पर बाबू जगजीवनराम को बहुत क्रोध आया, पर वह कर कुछ नहीं सकते थे।

राष्ट्रपति ने 48 घंटे की जो सीमा बाँध दी थी उसमें हर घंटे दोनों पक्षों की स्थिति बदल रही थी। ऐसा लगता था कि राजनीति के मंच ने सट्टा-बाज़ार का रूप धारण कर लिया है। नाना प्रकार की अफ़वाहें उड़ायी जा रही थीं और लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुमान लगा रहे थे। कुछ लोगों का कहना था कि राष्ट्रपति इन दोनों में से किसी को भी सरकार बनाने नहीं देंगे—ऐसा होता तो बड़ी अच्छी बात होती—और कुछ अन्य व्यक्तियों का यह कहना था कि वह एक कठपुतली कार्यवाहक सरकार को स्थापित करेंगे, यद्यपि संविधान में इस बात की अनुमति नहीं है। राजनारायण संजय गांधी के साथ संपर्क बनाये हुए थे और इंदिरा-कांग्रेस ने विधिवत चरणसिंह को अपना समर्थन देने की घोषणा की थी। उस समय यह कहा गया था कि "यह समर्थन बिना किसी शर्त के है"।

राजनारायण यह नहीं समझ पा रहे थे कि राष्ट्रपति टालमटोल क्यों कर रहे हैं ? वह राष्ट्रपति से मिलने गये और उन्हें बताया कि जनसाधारण की "मनःस्थिति" क्या है। उनका कहना था कि "यदि चरणसिंह को सरकार बनाने का निमंत्रण न दिया गया तो दिल्ली की गलियों में खून की नदियाँ बह जायेंगी।" शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन करने की बात चल रही थी। दिल्ली के चारों ओर जाट-क्षेत्र हैं और राजनारायण 24 घंटे में अपने समर्थकों की सेना इकट्ठी कर सकते थे। पर यह स्पष्ट था कि राष्ट्रपति इस प्रकार की धमकी में आने वाले नहीं थे। राष्ट्रपति भवन के समाचार देने वाले पत्रकारों का कहना था कि राष्ट्रपति ने इसके बारे में सेना के अधिकारियों से बातचीत कर ली थी। सारी परिस्थिति बड़ी ख़तरनाक दिखायी दे रही थी, पर उसके बाद 26 जुलाई को अचानक यह समाचार मिला कि राष्ट्रपति ने चरणसिंह से सरकार बनाने के लिए कहा है। उस समय शाम के चार बजकर बीस मिनट हो रहे थे।

जान-बूझकर या अनजाने में मोरारजी देसाई ने राष्ट्रपति को एक झूठी सूची भेजकर "राजनीतिक पाप" कर दिया था। इसमें संदेह नहीं कि उनके पास कई बहाने थे। उनका यह विचार था कि राष्ट्रपति ने उन्हें अपने समर्थकों की सूची देने के लिए एक दिन का समय और दे दिया है। पर 25 तारीख़ को ही प्रातः राष्ट्रपति ने कहा कि तीसरे पहर चार बजे तक सूची आ जानी चाहिए। इस प्रकार "समय के दबाव में आकर" सूची भेजी गयी। फिर भी श्री देसाई को इस पर इतना पश्चाताप हो रहा था कि उन्होंने यह समझा कि "इस भूल के लिए प्रायश्चित्त करना नैतिक कर्तव्य" है। उन्होंने यह घोषणा की कि वह न केवल जनता पार्टी के नेता के पद से त्यागपत्र दे रहे हैं, बल्कि सक्रिय राजनीति का भी परित्याग कर रहे हैं।

अंततोगत्वा चरणसिंह उस गद्दी तक पहुँच ही गये जिसकी उन्हें आजीवन चाह रही। गद्दी पर बैठने के बाद उन्होंने सोचा कि अब मैं अपने रोबदाब से काम ले सकता हूँ और यह सुझाव मानने से इंकार कर दिया कि उन्हें श्रीमती इंदिरा गांधी से मिलने जाना चाहिए और उनके समर्थन के लिए धन्यवाद देना चाहिए। प्रधानमंत्री की गद्दी पर बैठने के कुछ घंटे बाद ही राजनारायण में भी अचानक साहस आ गया था। रामलीला मैदान में एक सभा में बोलते हुए उन्होंने संजय गांधी को बदनाम किया और राजनारायण के मित्र मनीराम बागड़ी ने इससे भी आगे बढ़कर श्रीमती गांधी को "चुहिया" की संज्ञा दी जिसे वे कुचल कर रख देंगे। पर यह तो वह मुखौटा था जिसे पहनकर वे जनता के बीच जाते थे। राजनारायण ने घर पहुँचते ही संजय गांधी को टेलीफ़ोन किया और अपनी "अनायास भूल" के लिए क्षमा-याचना की।

श्रीमती गांधी और संजय को एक और बात पर क्रोध आया और वह थी कांग्रेस के उन सदस्यों की सूची जिन्हें मंत्री-पद की शपथ लेनी थी। उनमें से कुछ उनके "शत्रु" थे और कुछ "विश्वासघाती"। स्वर्णसिंह कांग्रेस में भी उन व्यक्तियों के मंत्री बनाये जाने पर विरोध की एक लहर उठ खड़ी हुई थी और श्रीमती गांधी ने अपने लोगों से यह कहलवा दिया था कि चरणसिंह की सरकार कुछ ही दिनों की मेहमान है। विडंबना यह है कि चरणसिंह को यह भी दिखायी नहीं पड़ा कि अभी तक उनके आसपास वही लोग थे जिन्हें उन्होंने "नपुंसक व्यक्तियों का समूह" कहा था। सच तो यह है कि अब वही उन व्यक्तियों के मुखिया थे। जितने भी "भ्रष्ट" व्यक्ति थे वे चौधरी साहब का हाथ लगते ही

पवित्र हो गये थे। जहाँ तक जगजीवनराम का संबंध है, उनकी निराशा का एक बहुत बड़ा कारण यह था कि वह दल बदलकर कांग्रेस में नहीं जा सकते थे और मंत्री-पद पर नहीं पहुँच सकते थे। कामराज-योजना के दिनों को छोड़कर—और वह भी कुछ ही दिनों के लिए—उनके राजनीतिक जीवन में यह पहला अवसर आया था जब उनके सामने यह निराशाजनक स्थिति आयी थी कि वह सरकार में नहीं होंगे। यह बात न केवल निराशा बल्कि डर का भी कारण थी, क्योंकि उन्हें अपने बहुत-से कृत्यों पर परदा डालना था। पर अब वह विरोध-पक्ष के नेता बन गये थे और अपने पंजे फैला रहे थे, नये संपर्क स्थापित कर रहे थे। उन्होंने पत्रकारों को बताया कि उनका श्रीमती गांधी से भेंट करना असंभव नहीं है। उनके समर्थक कानाफूसी करते फिरते रहे थे कि इन दोनों नेताओं की परस्पर भेंट संभव है। और फिर क्यों न हो? इससे दोनों पक्षों को लाभ पहुँच सकता था। श्रीमती गांधी सुरेशकुमार कांड और जैगुअर सौदे की बात भुला सकती थीं और बाबूजी संजय गांधी की हरकतों की ओर से आँखें मूँद सकते थे। इन दोनों में समझौता हो सकता था और दोनों हँसी-खुशी रह सकते थे।

पर जो लोग श्रीमती गांधी को भली भाँति जानते थे उन्हें पता था कि यह तो उनकी ब्लैकमेल करने की चालों का एक अंग था। मध्यावधि चुनाव के लिए कमर कसने से पहले वह एक-एक करके उन सभी व्यक्तियों को समाप्त कर देना चाहती थीं जो उनके प्रतिस्पर्द्धी बन सकते थे। और इस बीच वह उन सबको अपने चारों ओर नचाते रहना चाहती थीं। किसी को भी इस बात में संदेह नहीं था कि श्रीमती गांधी की मंशा क्या है। देसाई-सरकार उनके लिए बहुत कष्टप्रद सिद्ध हुई थी। सरकार चलती ही जा रही थी और ऐसा लग रहा था कि वह घमंडी बूढ़ा उतना ही शक्तिशाली हो जायेगा जितनी कि किसी समय वह स्वयं थीं। देसाई ने अपने प्रतिस्पर्द्धियों को एक-एक करके हरा दिया था—पहले जगजीवन बाबू को और फिर चरणसिंह को। श्रीमती गांधी बहुत दिनों से सरकार को गिराने की घात में थीं, पर उन्हें पता था कि यह काम सरकार के अंदर से ही किया जा सकता है। उनका बेटा मोहन मीकिन ब्रुअरीज़ के कपिल मोहन के माध्यम से—जो संजय के भी मित्र थे और राजनारायण के भी—राजनारायण को फुसलाने की चेष्टा में था। पर प्रश्न यह था कि वह विदूषक क्या कर सकता था? अब उसे अपना साथी बनाना बहुत आसान था, पर श्रीमती गांधी के लिए चरणसिंह का समर्थन करने का निर्णय फिर भी बड़ा कठिन था। वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थीं कि वह ऐसी बात करेंगी। पर वह बड़ी विकट स्थिति में फँसी हुई थीं और इसके सिवा और कोई चारा नहीं था। उनके एक समर्थक का कहना था: "हमने एक राक्षस से दूसरे राक्षस को मरवा दिया है। देसाई तो गये, अब चरणसिंह की बारी है।"

इंदिरा-कांग्रेस ने नयी मिली-जुली सरकार की स्थापना से पहले ही उसके विरुद्ध प्रचार प्रारंभ कर दिया था। इन लोगों का कहना था: "आप समझते हैं कि हम ऐसे व्यक्ति को सहन करेंगे जिसने हमारी नेता को झूठी कहा था? देखते जाइये कि हम उनका क्या हाल करते हैं।" दो-तीन दिन में ही पता चल गया कि वे लोग चरणसिंह के विरुद्ध क्या कर सकते हैं। श्रीमती गांधी के दल ने बिहार में रामसुंदर दास के मंत्रिमंडल को, जो बिखर रहा था, समर्थन प्रदान किया और इस प्रकार नये प्रधानमंत्री को स्पष्ट रूप से चेतावनी दे दी कि वह रास्ते पर आ जायें।

संजय गांधी ने पहले ही राजनारायण को यह बता दिया था कि इंदिरा-कांग्रेस का समर्थन बनाये रखने के लिए उन्हें सबसे पहला क़दम यह उठाना चाहिए कि उस विज्ञप्ति को वापस ले लें जो विशेष न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत 19 जुलाई को सर्वोच्च न्यायालय में पेश की गयी थी। यह भी कहा गया कि न केवल "किस्सा कुर्सी का" वाला मामला वापस ले लिया जाये, बल्कि इस मामले में राम जेठमलानी को विशेष वकील के पद से भी तुरंत हटा लिया जाये। पर चरणसिंह अपनी जाटों जैसी वीरता दिखाने पर तुले बैठे थे। उन्होंने भूतपूर्व एच० आर० खन्ना को विधि-मंत्री के पद पर नियुक्त करने की घोषणा कर दी। यह जान-बूझकर श्रीमती गांधी को चिढ़ाने वाली बात थी। खन्ना ने कुछ ही दिन बाद स्वयं ही त्यागपत्र दे दिया, पर उनके उत्तराधिकारी एस० एन० कक्कड़ ने तुरंत बड़ी ढिठाई से एक वक्तव्य दिया जिसमें कहा गया था कि न तो विशेष न्यायालय समाप्त किये जायेंगे और न 'किस्सा कुर्सी का' वाला मामला वापस लिया जायेगा।

चौधरी चरणसिंह को छोड़कर—जो अचानक देसाई के समान आनन्द तथा आशा की मुद्रा में पहुँच गये थे—कोई भी यह नहीं सोच रहा था कि यह मंत्रि-मंडल कुछ महीने से अधिक चलेगा। और तो और, जिन मंत्रियों ने अपने पदों की शपथ ली थी उन्हें भी यह आशा नहीं थी। उनमें विश्वास का इतना अभाव था कि उनमें से कई तो उन बड़ी कोठियों में भी नहीं गये जो मंत्रियों के लिए थीं। संभवतः यह पहला ऐसा अवसर था जब मंत्रियों ने बँगलों के लिए दौड़-धूप नहीं की। इसलिए नहीं कि उन्हें बड़े बँगले पसंद नहीं थे, बल्कि यह सोचकर कि कुछ ही महीनों में उन्हें अगर अपने पुराने घरों में लौटना पड़ा तो उनकी कितनी नाक कटेगी! सच तो यह है कि नयी सरकार की स्थिति इतनी कमज़ोर थी कि राज-धानी में कई विदेशी राजदूत दुविधा में पड़े हुए थे। उनमें से एक ने तनिक झिझकते हुए पूछा: "क्या आप समझते हैं कि इस समय नयी सरकार को बधाई देना नासमझी होगी?" ब्रेज़नेव और कार्टर के सद्भावना के संदेश आ जाने के बाद ही दिल्ली में विदेशी राजनयिकों ने अपने बधाई संदेश सरकार को भेजे।

लेकिन तुरुप का पत्ता तो श्रीमती गांधी के, बल्कि उनके पुत्र के, हाथ में था और कोई भी विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता था कि किस प्रकार उसका प्रयोग किया जायेगा? माँ-बेटे के दरबारियों ने स्थिति को और भी भ्रममूलक बना दिया था। कुछ कहते थे कि वह सरकार को नवंबर तक चलने देंगी और कुछ का विचार यह था कि जिस दिन लोकसभा का सत्र प्रारंभ होगा, अर्थात 20 अगस्त को, उसी दिन इसे गिरा दिया जायेगा। ऐसा लगता था कि वे जान-बूझकर परस्पर विरोधी बातें कर रहे थे जिससे कि किसी को उनके मन की असली बात का पता न चले।

जगजीवनराम चरणसिंह की अपेक्षा प्रधानमंत्री-पद के बहुत पुराने आकांक्षी थे और वह श्रीमती गांधी और उनके पुत्र के साथ किसी समझौते पर पहुँच सकने का प्रयत्न कर चुके थे। उनके निष्ठावान पिछलग्गू द्वारिकानाथ तिवारी ने संजय गांधी को प्रणाम करना प्रारंभ कर दिया था और यह वादा करने लगे थे कि जगजीवनराम कोई भी क़ीमत देने के लिए तैयार हैं। जगजीवनराम मोरारजी भाई को कभी क्षमा नहीं कर सकते थे, क्योंकि वह उनकी आकांक्षा की पूर्ति में बाधक हुए थे। उन्हें विश्वास था कि यदि देसाई पहले ही दिन दल के नेता के पद से हट जाते तो वह इंदिरा गांधी के समर्थन के बिना ही इतना बहुमत प्राप्त कर

सकते थे कि प्रधानमंत्री बन जाते। कई दिन तक देसाई जनता पार्टी के नेता के पद पर डटे रहे और जगजीवनराम क्रोध की अग्नि में जलते रहे। उनका कहना था: "चाहे कुछ भी हो जाये मैं उस जाट को प्रधानमंत्री नहीं बनने दूँगा।"

लेकिन अब तो वह केवल प्रयत्न मात्र कर सकते थे। 29 जुलाई के अपने प्रसारण में उन्होंने परोक्ष रूप से यह घोषणा कर दी थी कि वह चरणसिंह सरकार का तख़्ता पलट देंगे और राष्ट्रपति के सामने सिवाय इसके कोई विकल्प नहीं रह जायेगा कि वह उन्हें सरकार बनाने का निमंत्रण दें। इस समय वह अचानक राजनीति में नैतिकता और मानदंडों की बातें करने लगे थे, यद्यपि वह सोच बस इतना ही रहे थे कि कितने लोग अपने-अपने दलों को छोड़कर उनके साथ जाते हैं। दूरदर्शन से एक भेंट में—जिससे उनकी ख्याति में कोई वृद्धि नहीं हुई—जगजीवनराम ने बड़ी गूँज-गरज के साथ "हाल की घटनाओं की चर्चा की जिनसे न तो लोकतांत्रिक परंपराओं का मान बढ़ा और न सामान्य नैतिक मानदंडों का।" एक राजनीतिक टिप्पणीकार ने ठीक ही कहा था कि "जब तक बाबूजी किसी गद्दी पर बैठे रहें" तभी तक लोकतंत्र और नैतिकता को कोई ख़तरा नहीं हो सकता!

सभी को भ्रम में डालने के लिए जगजीवन बाबू ने जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से एक प्रस्ताव पास करवा लिया जिसमें कहा गया था कि जो भी व्यक्ति हिंदू या मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना में विश्वास रखता हो उसे जनता पार्टी में नहीं रहने दिया जायेगा। यह तो दोहरी सदस्यता की जटिल समस्या को टाल देने की एक चाल मात्र थी। उनका विचार था कि इस प्रस्ताव के बाद दूसरे दलों के सदस्यों को अपना दल छोड़कर जनता पार्टी में आने का प्रोत्साहन मिलेगा। पर, यद्यपि वह किसी भी संसद-सदस्य को अपने साथ लाने के लिए तैयार थे, वास्तव में वह श्रीमती गांधी के संदेश की प्रतीक्षा में थे। वह सोच यह रहे थे कि क्या वह चरणसिंह की अपेक्षा उन्हें पसंद नहीं करेंगी? राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण करने वाले ऐसे व्यक्ति भी मौजूद थे जिनका कहना था कि श्रीमती गांधी कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहीं होने देंगी जिसमें जगजीवनराम प्रधानमंत्री बन सकें। श्रीमती गांधी की नज़रें तो अगले चुनाव पर लगी हुई थीं। वह अपने समर्थन का मुख्य आधार यह बनाना चाहती थीं कि ऊँची जातियाँ, हरिजन और अल्पसंख्यक उनके साथ आ जायें। यदि यह गँठजोड़ उनका समर्थन करता तो उन्हें लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो सकता था। उस समय तक जगजीवन बाबू को हरिजनों का बहुत थोड़ा ही समर्थन प्राप्त रह गया था, पर श्रीमती गांधी के साथियों को इस बात का विश्वास नहीं था कि यदि जगजीवनराम को प्रधानमंत्री बनने दिया जाये तो यही स्थिति बनी रहेगी या नहीं। उनकी आशंका थी कि प्रधानमंत्री बनने के बाद जगजीवन बाबू देश में हरिजनों के मत अपने पक्ष में जमा कर सकेंगे।

यह धारणा तर्करहित भी नहीं थी। पर दूसरा विकल्प भी श्रीमती गांधी के लिए बहुत अच्छा नहीं था। चरणसिंह के पीछे न केवल पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक करोड़ जाट थे, बल्कि बीच की जातियों का एक बहुत बड़ा समुदाय भी था, जो बहुत समय से दबे हुए थे। उनके साथ यादवों, अहीरों, कोयरियों, कुर्मियों, हज्जामों और अन्य जातियों के लोकप्रिय नेता भी थे। उनकी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाएँ जुझारूपन के शिखर पर पहुँच गयी थीं जिसका प्रमाण दिसंबर 1978 में होने वाले किसान सम्मेलन में मिल चुका था। उस समय पिछड़े वर्गों की नव-सिद्ध शक्ति के एक प्रतीक कर्पूरी ठाकुर ने देश को

चेतावनी दी थी : "अब किसान माँगेंगे नहीं, बल्कि छीन लेंगे।" कर्पूरी ठाकुर, देवीलाल और रामनरेश यादव की पगड़ियों के हवा में लहराते हुए तुर्रे शक्ति के उस नये ढाँचे की घोषणा कर रहे थे जिसकी स्थापना हो चुकी थी। अगर श्रीमती गांधी दलित हरिजनों और अल्पसंख्यकों की संरक्षक होने का दावा करती थीं तो चरणसिंह को भी देश की उदीयमान वीच की जातियों का पैग़म्बर कहा जाने लगा था। देश की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के एक अत्यंत गहरी समझ रखने वाले विश्लेषक प्रधान एच० प्रसाद ने लिखा है :

> उत्तर भारत की बीच की जातियों के हिंदू एक शक्तिशाली वर्ग हैं। उनकी संख्या जनसंख्या का 36 प्रतिशत है। और वे ऊँची जातियों के हिंदुओं की अपेक्षा 55 प्रतिशत अधिक हैं। बीच की जातियों की बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति के कारण ऊँची जातियों के हिंदुओं का परंपरागत वर्चस्व समाप्त हो रहा है। इसलिए ऐसा लगता है कि बीच की जातियों का पलड़ा भारी है।... हमारे लोकतंत्र की प्रक्रियाओं के कारण उत्तर भारत में अर्द्ध-सामंती सत्ता का अखंड ढाँचा टूट चुका है। यह वड़ा अच्छा शकुन है...अर्द्ध-सामंती कृषि-संबंधों का वह ढाँचा टूटता दिखायी दे रहा है जिसके कारण कृषि में तीव्रगति से प्रगति नहीं हो पा रही थी। ज्यों-ज्यों संघर्ष अधिक तीव्र होगा नये प्रकार के गँठजोड़ सामने आयेंगे...। (मेनस्ट्रीम, 25 अगस्त, 1979)

यों भी चरणसिंह का समर्थन करने वाली शक्तियाँ उन राज्यों में श्रीमती गांधी की शक्तियों के टक्कर की तो थीं ही जहाँ उनका भविष्य बन या बिगड़ सकता था। चरणसिंह ऐसी मिली-जुली सरकार के प्रधानमंत्री बन गये थे जिसमें कांग्रेस, सी० एफ़० डी० और समाजवादी (यद्यपि सी० एफ़० डी० और समाजवादियों के कुछ ही अंग सरकार में आये थे) मंत्री थे और प्रधानमंत्री होने के नाते चरणसिंह दक्षिण में बीच की जातियों में अपना समर्थन और अधिक बढ़ा सकते थे। वहाँ देवराज अर्स अपने राज्य में बीच की जातियों को संगठित करके ऊपर चढ़े थे और वह चरणसिंह की सहायता कर सकते थे। श्रीमती गांधी के लिए इससे अधिक परेशान करनेवाली कोई बात नहीं थी कि बहुगुणा चरणसिंह के साथ थे। बहुगुणा के बारे में और चाहे कुछ भी कहा जाये, यह बात तो निर्विवाद है कि वह उत्तर प्रदेश के मुसलमानों में लोकप्रिय थे। और फिर राजनीति में, विशेष रूप से चुनाव की राजनीति में, उनकी कार्यकुशलता अपूर्व थी और श्रीमती गांधी इस बात से भली भाँति परिचित थीं। इसलिए वह यह कभी नहीं चाहतीं कि चरणसिंह और बहुगुणा का गँठजोड़ अधिक समय तक चले और कम-से-कम सरकार में तो न चले। ये दोनों मिलकर उत्तर के राज्यों में श्रीमती गांधी की चुनाव-संबंधी आशाओं पर पानी फेर सकते थे।

लेकिन घटनाक्रम को देखकर पता चलता है कि श्रीमती गांधी ने उपरोक्त बातों से प्रभावित होकर चरणसिंह सरकार को समर्थन देना बंद नहीं किया था। मुख्य कारण यह था कि चरणसिंह ने संजय गांधी को उसकी क़ानूनी समस्याओं के घेरे से निकालने से इंकार कर दिया था। जिस दिन चरणसिंह को लोकसभा का विश्वास प्राप्त करना था उससे दो-तीन दिन पहले संजय गांधी ने राजनारायण को चेतावनी दे दी थी कि यदि आप यह चाहते हैं कि चरणसिंह-सरकार चलती रहे तो मेरी माँगें मनवा दीजिये। मोहन मीकिन की अतिथिशाला में एक धार्मिक

उत्सव के बहाने राजनारायण और संजय गांधी की भेंट हुई थी और वहाँ से राजनारायण भागे-भागे सीधे चरणसिंह के पास और उसके बाद बीजू पटनायक से मिलने गये थे। उन्होंने इंदिरा-कांग्रेस के एक दिग्गज को परामर्श के लिए बुलाया था। इस बातचीत के परिणामस्वरूप यह स्थिति स्पष्ट हो गयी कि यदि संजय गांधी की माँगें न मानी गयीं तो कांग्रेस (इं) सरकार का समर्थन करना बंद कर देगी। राजनाराण फिर चरणसिंह के पास भागे और सारी स्थिति उन्हें समझायी। चरणसिंह ने विधि-मंत्री एस० एन० कक्कड़ को बुलाया और उनसे कहा कि इस बात का पता लगाया जाये कि "किस्सा कुर्सी का" वाले मामले में कुछ हो सकता है या नहीं। कक्कड़ ने अपने मंत्रालय के बड़े-बड़े अधिकारियों के साथ परामर्श करने के बाद प्रधानमंत्री को निम्नलिखित टिप्पणी दी : "...7 जून, 1979 को विधि-मंत्रालय ने विशेष न्यायालय अधिनियम की धारा 5 (1) के अंतर्गत जारी की जाने वाली घोषणा के मसौदे को अंतिम रूप दिया और 22 जून को यह घोषणा जारी कर दी। इसमें अन्य बातों के अलावा यह भी कहा गया है कि केंद्रीय सरकार ने सारी सामग्री का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद यह राय बनायी है कि इस बात का प्रारंभिक प्रमाण है कि अपराध किया गया है... 19 जुलाई को विशेष न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय में सरकारी घोषणा दाखिल कर दी गयी। इसके अनुसार जो अपीलें उच्च न्यायालय के सामने सुनवाई के लिए गयी थीं, अपने-आप सर्वोच्च न्यायालय के विचाराधीन आ गयीं। अधिनियम में 'स्थानांतरित हो जायेंगी' शब्दावली का प्रयोग किया गया है। **उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए अधिसूचना को वापस लेना संभव नहीं है। यदि इस समय ऐसा किया जाता है तो सरकार उपहास का पात्र बन जायेगी।** श्री राम जेठमलानी को इस मामले में विशेष वकील पिछली सरकार ने नियुक्त किया था। यदि उन्हें हटाया जाता है तो यह बात सोचनी होगी कि उसके क्या परिणाम होंगे, क्योंकि यह तो निश्चित है कि इस बात की आलोचना की जायेगी और यह कहा जायेगा कि यह तो 'अपराधियों के प्रति नर्म रवैये अपनाने की शुरूआत है।" (शब्दों पर ज़ोर मेरा)

चरणसिंह का कहना था कि संजय गांधी की इस ब्लैकमेल के आगे झुकने के बजाय वह त्यागपत्र देना ज़्यादा अच्छा समझेंगे। इस पर राजनारायण जल-भुनकर यह कहते हुए कमरे से बाहर चले गये कि "इस जाट को कभी अक़्ल नहीं आयेगी।"

जब 20 अगस्त को लोकसभा की बैठक प्रारंभ हुई तो चरणसिंह ने यह घोषणा कर दी कि वह अपनी सरकार का त्यागपत्र दे रहे हैं और राष्ट्रपति को यह राय देने जा रहे हैं कि वह सदन को भंग कर दें। उन्हें प्रधानमंत्री की कुर्सी पर केवल 35 सेकंड तक बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दो दिन तक नाना प्रकार की अफ़वाहें उड़ती रहीं और कई अनुमान लगाये गये और फिर राष्ट्रपति-भवन से संक्षिप्त विज्ञप्ति जारी की गयी : "संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (2) के उपखंड (ख) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए मैं एतद्द्वारा लोकसभा का विघटन करता हूँ।"

इंडिया टुडे ने इसके बारे में जनमत का सर्वेक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि देश की अधिकतर जनता राष्ट्रपति के निर्णय से सहमत है। लोगों से यह प्रश्न पूछा गया था कि क्या वे मध्यावधि चुनाव के पक्ष में हैं? उनके उत्तर इस प्रकार थे : "हाँ—शहरों में 75 प्रतिशत, गाँवों में 63 प्रतिशत; नहीं—शहरों

में 20 प्रतिशत, गाँवों में 21 प्रतिशत; नहीं जानता—शहरों में 5 प्रतिशत, गाँवों में 16 प्रतिशत। सच तो यह है कि 9 जुलाई के बाद से जो अशोभनीय घटनाएँ हुई थीं उनको देखते हुए संजीव रेड्डी के सामने और कोई रास्ता ही नहीं रह गया था, चाहे इस निर्णय के विरोधी इसमें कितने ही दोष क्यों न निकालें। सच तो यह है कि चरणसिंह को सरकार बनाने की अनुमति देकर राष्ट्रपति ने जगजीवनराम के नेतृत्व में जनता पार्टी के नेताओं को शोर मचाने का बहाना दे दिया था। इस बात में कोई संदेह नहीं कि संजीव रेड्डी ने दलबदलुओं के दो दलों के बीच विभेद किया था—एक में वे लोग थे जो चरणसिंह के साथ चले गये थे और दूसरा समूह वह था जिसके बन जाने की आशा जगजीवनराम कर रहे थे। राष्ट्रपति दोनों पक्षों के नेताओं से बातचीत करते समय ही अपना निर्णय कर चुके थे। 22 अगस्त को प्रातः राष्ट्रपति रेड्डी और जनता पार्टी के नेताओं के बीच अंतिम भेंट के दौरान जो बातचीत हुई, और जिसका प्रमाण मौजूद है—उससे यह स्पष्ट था कि रेड्डी ने सबसे पहला काम यह किया कि जगजीवनराम और चंद्रशेखर को वह चिट्ठी दिखायी जो सी० एम० स्टीफ़ेन और डॉ० चेन्ना रेड्डी श्रीमती गांधी के पास से लेकर आये थे। उसमें राष्ट्रपति के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया था कि श्री सुरजितसिंह बरनाला को अंतरिम सरकार का नेता नियुक्त किया जाये। यह सभी जानते हैं कि उससे पहले श्री रेड्डी ने शेख़ अब्दुल्ला और हिदायतुल्ला के नाम सोचे थे, पर बरनाला का नाम सुनकर जनता पार्टी के नेताओं को बड़ा धक्का लगा।

जगजीवनराम ने बड़े क्रोध में आकर कहा, "जब मुझे अपने बहुमत का विश्वास है तो आप यह कैसे कर सकते हैं ?"

राष्ट्रपति ने उत्तर दिया, "लगता है कि आप दलबदलुओं पर भरोसा कर रहे हैं।"

जगजीवन बाबू बोले, "लेकिन आपने तो एक दलबदलू को प्रधानमंत्री बना रखा है।"

राष्ट्रपति ने कहा, "वह दलबदल नहीं था, विद्रोह था।"

संभवतः राष्ट्रपति रेड्डी ने केवल इस कारण जगजीवनराम को अपने बहुमत का प्रमाण देने के लिए अपने समर्थकों की सूची भेजने को कहा कि उन्हें आनेवाला घटनाओं से बहुत धक्का न पहुँचे।

पर जगजीवनराम बोले, "मैं अपने बहुमत का प्रमाण सदन में दूँगा।"

राष्ट्रपति इस बात से सहमत न हुए और यह मुलाक़ात अचानक ही समाप्त हो गयी। चंद्रशेखर जाते-जाते बोले, "ठीक है, हम कल आपसे मिलेंगे।"

लगभग एक घंटे के भीतर ही चरणसिंह को कामचलाऊ सरकार का प्रधान-बनने के लिए कहा गया।

श्रीमती गांधी की जयजयकार करने वाले नारे लगाते हैं : "इंदिरा लाओ, देश को बचाओ।" इस बार फिर श्रीमती गांधी "स्थायित्व" और "व्यवस्था" का सहारा लेंगी। 1971 में नगरों के दीवारों पर जो पोस्टर लगे थे उनमें इंदिरा को "व्यवस्था और अव्यवस्था के बीच खड़ी" दिखाया गया था। जो अशोभनीय राजनीतिक दृश्य लोगों को हाल ही में देखने को मिला है उसकी पृष्ठभूमि में यह नारा कुछ व्यक्तियों को बड़ा आकर्षक लगेगा। उनमें शीघ्रता से समृद्धि प्राप्त करनेवाले, औद्योगिक और व्यापारिक घरानों के लोग और हिंदू मध्यम वर्ग के

लोग होंगे जो सदा यह आशा करते हैं कि कोई करिश्माती नेता उन्हें अपने नियंत्रण में रखे। वे सभी श्रीमती गांधी के नारे से आकृष्ट होंगे। भारत के राजनीतिक मानस के बारे में जितने सिद्धांतों की चर्चा की जा रही है उनमें से एक यह है कि देश में बारी-बारी से कभी तानाशाही रही है और कभी स्वतंत्रता का वातावरण और इस बार लोग तानाशाही के पीछे ही भागेंगे, चाहे वह मिट्टी का बना हुआ ही क्यों न हो। एक ब्रिटिश लेखक मॉरिस लेटी ने अपनी किताब, **टिरैनी ए स्टडी इन द एब्यूज ऑफ़ पावर** में कहा है कि अत्याचारी के पतन के बाद भी उसकी थाती बड़ी खतरनाक होती है। रोम में जब यह भ्रम फैल गया कि कुख्यात नीरो फिर जी उठा है और क़ब्र से निकलकर आ गया है तो लोगों ने इस समाचार का स्वागत किया था और फ्रांस के लोग लोकतंत्रीय सरकारों की अयोग्यता और उनकी नीरसता से तंग आकर फिर नेपोलियन के वैभव और उसके उत्तेजक व्यक्तित्व के लिए आतुर हो उठे थे। सामान्यतया तानाशाह बहुधा अकारण ही इस बात के लिए नाम कमा लेते हैं कि वे "काम कर दिखाते हैं"—

> इस बात की कल्पना करना बड़ा कठिन है कि लोग हिटलर द्वारा बनायी गयी चौड़ी सड़कों और बेरोजगारी के समाप्त किये जाने की बातें तो याद रखें और यह भूला दें कि उसी ने यहूदियों और अपने विरोधियों को गैस की कोठरियों में बंद करके मौत के घाट उतारा और युद्ध की विभीषिका का सूत्रपात किया। पर हम में से ऐसा कौन व्यक्ति है जो जनता की सहमति से स्थापित किये गये शासन में कार्यकुशलता के अभाव और उसके झगड़ों से तंग आकर कभी-कभार यह न सोचता हो कि 'यदि मेरे हाथ में तानाशाही की शक्ति होती तो मैं क्या न कर दिखाता? समस्याएँ बहुत सीधी-सादी हैं। बस, कुछ बेईमान और अयोग्य व्यक्तियों को हटाने की ज़रूरत है। पर नहीं, नज़रबंदों के शिविरों या खुफ़िया पुलिस की भी आवश्यकता नहीं। गैस की कोठरियों या अणु बमों की बात तो दूर रही।' पर यदि बहुत-से लोग एक ही समय में ऐसा सोचने लगें और काफ़ी उत्कटता से कुछ समय तक यही सोचते जायें तो तानाशाही की स्थापना निश्चित ही है।

श्रीमती गांधी में चुनाव-अभियान चलाने की विलक्षण क्षमता है और यह तो निश्चित है कि वह जनता सरकार के निराशाजनक प्रशासकीय काम का अधिकाधिक लाभ उठायेंगी और इस बात पर बल देंगी कि उसमें परस्पर विरोधाभास और कभी न समाप्त होनेवाले झगड़े चलते रहे हैं, वह अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण समस्याओं को निपटा नहीं पायी और अल्पसंख्यकों तथा निर्धन वर्गों में विश्वास की भावना उत्पन्न नहीं कर सकी। श्रीमती गांधी अपने-आपको मुसलमानों और हरिजनों का एकमात्र संरक्षक बतायेंगी और कहेंगी कि उन्हीं के नेतृत्व में देश एक रह सकता है, वही देश में स्थायित्व ला सकती हैं—यह बात और है कि वह स्थायित्व श्मशान भूमि का स्थायित्व होगा। इनमें से उनका कोई भी दावा नया नहीं है। सच तो यह है कि चुनाव-अभियान में किसी ने श्रीमती गांधी का एक भी ऐसा भाषण नहीं सुना है, जिसमें उन्होंने इन बातों की चर्चा न की हो। लेकिन इस बार वह लगातार यही राग अलापेंगी और क्योंकि जनसाधारण की स्मरण-शक्ति बहुत कमज़ोर होती है इसलिए लोग उनकी बातों पर विश्वास भी कर लेंगे। वह बेलछी और बजितपुर की बात करेंगी और मैं शर्त लगा सकता हूँ कि उनके

प्रत्येक भाषण में जमशेदपुर, अलीगढ़, हैदराबाद, संभल और उन सभी स्थानों की चर्चा होगी जिनमें पिछले 28 महीनों में अप्रिय घटनाएँ हुई हैं। और, इनकी बातें करते समय श्रीमती गांधी यह सोचती रहेंगी कि लोग यह भूल गये होंगे कि उनके शासनकाल के "भव्य दशक" में हरिजनों पर कैसे-कैसे अत्याचार हुए थे और कितने सांप्रदायिक दंगे हुए थे। वह यह भी आशा करेंगी कि लोग मुजफ़्फ़रनगर या तुर्कमानगेट की घटनाओं को कभी याद नहीं करेंगे। वह इस बात को भी भुला देंगी कि 1974 से लेकर जून 1977 तक जब वह सत्तारूढ़ थीं, हरिजनों पर अधिक अत्याचार हुए और जनता पार्टी के शासनकाल में कम। राज्य सरकारों द्वारा भेजे गये प्रतिवेदनों और गुप्तचर विभाग की जानकारी के आधार पर केंद्रीय सरकार के राष्ट्रीय एकता विभाग द्वारा संकलित किये गये आँकड़ों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है। संभवतः वह यह कहेंगी कि उन्होंने हाथी पर चढ़कर बेलछी का जो दौरा किया था उससे हर कलंक धुल गया है।

सिद्धांतों के बारे में लच्छेदार भाषण अपने प्रतिद्वंद्वियों के विरुद्ध श्रीमती गांधी का एक सबल हथियार रहे हैं। वह सदा यह प्रमाणित करने में सफल हुई हैं कि उनके विरोधी "प्रतिक्रियावादी" हैं और अपना चित्र यह उभारा है कि वह निर्धन और दलित वर्गों की समर्थक हैं। 1969 में कांग्रेस के पहले विभाजन के समय उन्होंने यही किया था। हिटलर के समान सभी भावी तानाशाह शक्ति हथियाने के लिए लोकतंत्र और "समाजवाद" की दुहाई देते रहे हैं। एक बार ब्रह्मानंद रेड्डी ने कहा था, "जब भी श्रीमती गांधी किसी कठिन स्थिति में पड़ जाती हैं तो समाजवाद की बातें करने लगती हैं। लेकिन मज़दूरों के बोनस को 8.33 प्रतिशत से घटाकर 4 प्रतिशत किसने किया था ?" (स्टेट्समैन, 18 जनवरी, 1978)। जब अक्तूबर 1978 में श्रीमती गांधी वेल्स (ब्रिटेन) में अपने उद्योगपति मित्र के इस्पात के कारख़ाने का उद्‌घाटन करने गयीं तो उन्होंने लोकतंत्र में अपनी आस्था के बारे में लंबी-चौड़ी बातें कीं, लेकिन इसके साथ "जनता की आवश्यकताओं" की शर्त लगा दी। अपने भाषण में उन्होंने बड़ी वाक्‌पटुता से कहा, "कौन-सी बात अधिक महत्वपूर्ण है—जनता की आवश्यकताएँ, या जनता की आवाज़, या कुछ व्यक्तियों के विशेषाधिकार ? यही समस्या आज भारत के सामने है। यदि निर्धन लोग किसी भी समय यह अनुभव करें कि शासन-व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही है, तो क्या वे उसे सहन करेंगे ? हमें इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ना है...।" जैसाकि एस० निहालसिंह ने लिखा था, श्रीमती गांधी देश को लोकप्रिय नारे और बल-प्रयोग की देन ही दे सकती हैं। केवल एक ही दर्शन उन्हें प्रेरित करता है और वह है स्वार्थपूर्ति का।

लेकिन इसके बावजूद श्रीमती गांधी की कटुतम आलोचना करनेवाले लोग भी इस बात से सहमत होंगे कि उनमें कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। इसमें संदेह नहीं कि वह देश में सबसे अधिक सुसंस्कृत, प्रियदर्शिनी नेता हैं। मीठा बोलने पर आ जायें तो उनसे अधिक मीठा कोई नहीं बोल सकता। बहुधा यह कहा जाता है कि वह साधारण व्यक्ति नहीं हैं, "वह जवाहरलाल नेहरू की बेटी हैं।" इस स्पष्ट-सी बात को जिस तरह बार-बार दोहराया जाता है, उसी में यह आशय निहित है कि आप उन्हें अन्य नेताओं के साथ नहीं रख सकते। सच तो यह है कि वह केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, उनमें साम्राज्ञी का भी पुट है। और ऐसे देश में जहाँ राजाओं और रानियों की परंपरा रही हो और बच्चों की कोई भी कहानी राजा, रानी या उनकी संतान के उल्लेख के बिना प्रारंभ न होती हो, अन्य लोगों की

अपेक्षा श्रीमती गांधी अधिक अच्छी स्थिति में होती हैं। जैसाकि षष्टि ब्रत ने लिखा था, "इसी बात में श्रीमती गांधी युद्ध के मैदान में उतरने से पहले ही विजयी हो जाती हैं। उनकी सबसे बड़ी राजनीतिक शक्ति यह है कि उन्हें न तो लोकतंत्र में विश्वास है और न सच्चाई में। इसके विपरीत उनके मन में यह बात घर कर गयी है कि उनके व्यक्तिगत शासन में ही राष्ट्र का भला है। निर्द्वंद्व अहं-भाव पर अंकुश लगानेवाली सुसंस्कृत और सभ्य शिक्षा की मर्यादाओं से मुक्त होने के कारण उन्हें यह सोच लेने में कोई बुरी बात नहीं लगती कि भारत का भाग्य-विधाता नेहरू-कुल ही है...।" सच तो यह है कि अगर श्रीमती गांधी, संजय और नेहरू-वंश के लोग यह सोचें कि उनका जन्म ही राज्य करने के लिए हुआ है तो उन्हें क्षमा किया जा सकता है, क्योंकि इस देश में हज़ारों ऐसे व्यक्ति हैं जो सच्चे मन से इस बात में विश्वास करते हैं कि नेहरू-वंश में अति-मानव-जैसे गुणों का समावेश है। जब 1977 में कांग्रेस सरकार के पतन के बाद देश-भर में ख़ुशी मनायी जा रही थी, उस समय इस देश में बहुत-से ऐसे व्यक्ति भी थे जिन्हें इस बात का दुख था कि श्रीमती गांधी चुनाव हार गयीं, मानो किसी छोटे-से असुर ने किसी देवी को पराजित कर दिया हो।

श्रीमती गांधी के पक्ष में एक बहुत बड़ा तत्व है जिसे बहुत-से मनोवैज्ञानिक और चुनावों के अध्येता भूल जाते हैं और वह यह है कि जब वह मुसीबत में होती हैं तो उनके प्रति जनता में सहानुभूति की एक लहर उठती है। वह सहानुभूति ऐसी साम्राज्ञी के प्रति सहानुभूति के समान होती है जिसे उसकी प्रजा ने ही परेशान कर रखा हो। इसी सहानुभूति के कारण सारे भारत में श्रीमती गांधी को बहुत-से वोट मिल जायेंगे, क्योंकि इसमें तो कोई संदेह नहीं कि वह एकमात्र राजनीतिज्ञ हैं जिनके समर्थक सारे भारत में फैले हुए हैं। यह बात दुख का विषय हो सकती है, पर सत्य अवश्य है कि किसी अन्य नेता के व्यक्तिगत समर्थकों की संख्या उतनी नहीं है जितनी कि श्रीमती गांधी के समर्थकों की—इसके कारण चाहे कुछ भी क्यों न हों। और यहीं पर बस नहीं है। जहाँ तक चुनाव-अभियान चलाने का संबंध है, श्रीमती गांधी की टक्कर का और कोई व्यक्ति नहीं है। जब उनसे आधी आयु के लोग थकावट से चूर होकर गिर पड़ते हैं, श्रीमती गांधी चलती ही चली जाती हैं। एक समय यह समझा जाता था कि वह बड़ी कृषकाय और दुर्बल हैं। उनकी बुआ श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित तक ने यह कहा था कि राजनीति की उखाड़-पछाड़ इंदिरा के वश की बात नहीं है। पर उन्होंने जिस दृढ़ता और अपार शक्ति का परिचय दिया है उसके आगे अपने-आपको शक्ति-शाली कहने वाले पुरुष-नेता भी उनका लोहा मानने लगे हैं। जितने समय में चरणसिंह, यशवंतराव चह्वाण, जगजीवनराम या उनसे भी कम आयु के चंद्रशेखर सरीखे राजनेता पाँच मील में अधिक-से-अधिक एक दर्जन सभाओं में भाषण दे पायेंगे, उतनी देर में श्रीमती गांधी पचास मील की यात्रा करके कम-से-कम 25 सभाओं को संबोधित कर लेंगी। जिस व्यक्ति ने भी 1978 की भीषण गर्मी में उन्हें आज़मगढ़ में चुनाव-अभियान करते देखा है वह मेरी इस बात से सहमत होगा। इस मामले में कोई उन्हें हरा नहीं सकता। एक पत्रकार का कहना है कि 48 घंटे में वह तीन या चार घंटे से अधिक नहीं सोयी थीं, जबकि उत्तर प्रदेश में मई के महीने में भीषण गर्मी पड़ती है। श्रीमती गांधी अक्षय शक्ति के स्रोत के समान काम करती ही रही थीं। एक बात और भी है कि उनकी सभाओं में अपार भीड़ होती है। 15 या 20 हज़ार आदमी तो केवल उनके दर्शनमात्र के लिए

इकट्ठे हो जाते हैं, जबकि अन्य बहुत-से नेताओं के लिए इतनी भीड़ इकट्ठी करने के लिए कई दिन तक तैयारी करनी पड़ती है। जो लोग उनकी सभाओं में भीड़ बढ़ाने आते हैं, वे सभी उन्हें वोट नहीं देते, लेकिन अपार भीड़ को देखकर एक वातावरण अवश्य तैयार हो जाता है।

किसी भी चुनाव में वातावरण बनने का बड़ा महत्व होता है। जिस दिन लोकसभा का विघटन हुआ और मध्यावधि चुनाव की घोषणा की गयी उसी दिन से उनके समर्थकों ने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि वह भारी बहुमत से जीतेंगी। तांत्रिक और ज्योतिषी भी उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने लगे। तांत्रिक और ज्योतिषी तो नक्षत्रों और ग्रहों की चाल देखते हैं। पर यदि आप राजनीतिज्ञों से पूछें कि उनका अनुमान किस बात पर आधारित है तो वे केवल इतना कहेंगे कि मुझे "ऐसा लग रहा है।" उनके फिर से सत्तारूढ़ होने की बातों के कारण न केवल एक वातावरण तैयार हो रहा था, बल्कि उनके विरोधियों का मनोबल भी टूट रहा था। उनके विरोधियों के मन में झाँककर देखा जाये तो निश्चित रूप से यह पता चलेगा कि उनमें से अधिकतर डरे हुए हैं, यद्यपि शेख़ी अवश्य बघारते हैं।

इन सब बातों के होते हुए भी उनके निकटतम समर्थक भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि उनके रास्ते में बहुत-सी बाधाएँ आयेंगी। उनके राजनीतिक जीवन में यह पहला अवसर होगा जब वह शासनतंत्र की सहायता के बिना चुनाव लड़ेंगी। सत्तारूढ़ होने के कारण प्राप्त होनेवाली सुविधाओं के बिना भी किसी उपचुनाव में जीतना कोई बड़ी बात नहीं है। पर सारे देश में वायुसेना के हेलीकाप्टरों और विमानों की सहायता के बिना, जिनकी कि वह आदी रही हैं, चुनाव-अभियान चलाना अलग ही बात है। ऐसी बात नहीं कि इन बाधाओं को वह लाँघ नहीं पायेंगी, क्योंकि कहते हैं कि उनके पास अपार साधन हैं। पर इस परिस्थिति में उनका चुनाव-अभियान चलाने का ढँग कुछ ठिठुर अवश्य जायेगा। दुख की बात यह है कि इस बार उन्हें कर्नाटक में भी ऐसी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

श्रीमती गांधी की सबसे बड़ी समस्या वे लोग हैं जो उनके साथ हैं। उन्हें न केवल चुनाव के लिए उचित उम्मीदवार ढूँढ़ने में कठिनाई हो रही है, बल्कि एक भी ऐसा ढँग का नेता नहीं है जो चुनाव-अभियान में उनका हाथ बँटा सके। उनके दल में उनके सिवाय और कुछ नहीं है। पिछले कुछ वर्षों से उनके साथ या तो उनका परिवार रह गया है या, चाटुकार। कुछ छोटे-मोटे राजनीतिज्ञ भी हैं जिनके पास अपनी कोई शक्ति नहीं और इसलिए वे इंदिरा गांधी या संजय गांधी के लिए ख़तरा उत्पन्न नहीं कर सकते। जिन राज्यों के चुनाव-परिणामों से सारे चुनावों के परिणामों का निर्धारण होता है उनमें उनके साथ मिश्र, पांडे, त्रिपाठी और दीक्षित जैसे लोगों को छोड़कर और कोई नहीं था। एक बार एक पत्रकार ने कहा था कि उत्तर प्रदेश और बिहार में श्रीमती गांधी के समर्थकों की सूची देखने से ऐसा लगता है कि किसी ने ब्राह्मणों की सूची बनाकर रख दी हो। श्रीमती गांधी के दल के लिए यह बात निश्चित रूप से हानिकारक होगी कि उनके दल में वर्चस्व तुच्छ बातों पर ध्यान देनेवाले ब्राह्मणों का है जो जनता का विश्वास खो चुके हैं और जो उत्तर भारत के महत्वपूर्ण राज्यों के मतदाताओं का एक छोटे-से हिस्से में भी कोई जोश नहीं पैदा कर सकते। इंदिरा-कांग्रेस में अधिकतर तथाकथित नेता केवल इस कारण उनका साथ दे रहे हैं कि आपात-काल में जो अपराध हुए उनमें वे भी भागीदार थे। जगन्नाथ मिश्र, नारायणदत्त तिवारी, विद्याचरण शुक्ल

और वंसीलाल—ये सभी केवल इस कारण श्रीमती गांधी के साथ हैं कि उनके सामने और कोई रास्ता नहीं है। जहाँ तक श्रीमती गांधी के लिए वोट जुटा सकने का सवाल है, ये लोग इस वार कोई विशेष सहायता नहीं दे पायेंगे।

यह मध्यावधि चुनाव पिछले चुनावों से निस्संदेह भिन्न होगा और 1977 के चुनाव की तुलना में तो निश्चित रूप से अलग होगा, क्योंकि उस चुनाव में मतदाताओं ने जाति, वर्ग और दल का कोई ध्यान नहीं रखा और देश के अधिकतर राज्यों में एक ही दल को समर्थन प्राप्त हुआ। कम-से-कम जब यह पुस्तक लिखी जा रही थी तब तो ऐसा ही लगता था कि इस वार चुनावों में फिर वही पुराने मुद्दे उठाये जायेंगे, अंतर केवल इतना होगा कि उम्मीदवारों को उन तत्वों और गँठजोड़ों का सामना करना पड़ेगा जो पहले नहीं थे। यह अच्छा होगा या बुरा, वह बात तो अलग है, लेकिन इस वार जाति और वर्ग के आधार पर पहले की अपेक्षा अधिक भीषण रूप से मतदान होगा।

दक्षिण और उत्तर के राज्यों में एक वार फिर अलग-अलग चित्र उभरकर सामने आने की संभावना है। बहुधा लोग यह कहते सुने जाते हैं कि दक्षिण में तो श्रीमती गांधी का ज़ोर रहेगा। इसमें संदेह नहीं कि सामान्यता दक्षिण में 1977 में भी जनता पार्टी का अधिक प्रभाव नहीं था और 1978 के विधानसभा के चुनावों में श्रीमती गांधी की सफलता के कारण (आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में) उन्हें फिर राजनीतिक क्षितिज पर उभरने का अवसर मिला। यदि हम यह मान लें कि आंध्र प्रदेश में वह अधिकतर स्थानों पर चुनाव जीत जाती हैं और देवराज अर्स के प्रयत्नों के वावजूद कर्नाटक के अधिकतर स्थान श्रीमती गांधी को मिल जाते हैं तो भी दक्षिण में केवल यही दो राज्य तो नहीं। केरल और तमिलनाडु में क्या स्थिति है? ऐसा लगता है कि केरल में शायद उन्हें एक भी स्थान न मिले और तमिलनाडु में डी० एम० के० के साथ गँठजोड़ और जन-साधारण की उनके दर्शनों की उत्कट इच्छा के वावजूद यदि वह 39 में से 7 स्थान जीत लेती हैं तो यह बहुत बड़ी बात समझी जायेगी। यदि उनका दल आंध्र में 42 में से 37 स्थान प्राप्त कर लेता है (यदि दोनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ और वेंगलराव मिल जायें तव इस बात का भी कोई भरोसा नहीं है) और कर्नाटक में 28 में से 16 स्थान इन्हें मिल जायें तव भी दक्षिण 60 से अधिक स्थान इंदिरा-कांग्रेस के नहीं हो सकते। इस बात के वावजूद कि महाराष्ट्र के निराश और डरे हुए कांग्रेसजन रेंगते हुए उनके शिविर में चले आ रहे हैं और विदर्भ तथा मराठवाड़ा क्षेत्रों में उनके प्रभाव को देखते हुए भी श्रीमती गांधी महाराष्ट्र के 48 में से आधे से अधिक स्थान प्राप्त नहीं कर सकतीं। गुजरात में लोकसभा के 26 स्थान हैं और वहाँ पर जीनाभाई दारजी, माधवसिंह सोलंकी और सनत मेहता जैसे प्रभावशाली नेता उनके साथ होने के कारण राज्य के कुछ भागों में, विशेष रूप से उत्तर गुजरात के जनजाति क्षेत्रों में उनकी स्थिति अच्छी रहेगी। पर गुजरात में उनके सबसे कट्टर समर्थक भी अधिक-से-अधिक 16 स्थान जीतने की आशा करते हैं। और जो लोग वस्तुनिष्ठ होकर चुनाव के परिणामों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं उनका विचार है कि इंदिरा कांग्रेस वहाँ 12 से अधिक स्थान नहीं जीत पायेंगी। अब मान लीजिये कि वह गुजरात में 13 स्थान जीत लेती हैं तो महाराष्ट्र और गुजरात को मिलाकर इंदिरा कांग्रेस के 37 स्थान होंगे। दक्षिण भारत और गुजरात तथा महाराष्ट्र में इनकी संभावित सफलता 97 स्थानों से अधिक नहीं हो सकती।

और फिर वही पुरानी स्थिति रहेगी कि इंदिरा-कांग्रेस को, या जो भी दल

लोकसभा में सम्पूर्ण वहुमत प्राप्त करना चाहता हो उसे उत्तर भारत के राज्यों में, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और विहार में, अधिक सफलता प्राप्त करनी पड़ेगी। इन दोनों राज्यों के संसद-सदस्यों की संख्या दक्षिण भारत के चारों राज्यों की अपेक्षा अधिक है। लोकसभा के कुल 544 स्थानों में से 238 उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, पंजाव, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के हैं। मध्य प्रदेश तो जनसंघ का गढ़ वन चुका है और वहाँ श्रीमती गांधी के दल और जनता पार्टी के वीच सीधा मुक़ावला होगा। वहाँ पर यदि इंदिरा-कांग्रेस 40 में से 12 से अधिक स्थान प्राप्त कर ले तो वड़े आश्चर्य की वात होगी। राजस्थान में भी जनसंघ की स्थिति वहुत अच्छी है। परंतु यहाँ पिछड़े वर्गों में जनता (एस) के प्रभाव के कारण जनता पार्टी को कड़े मुक़ावले का सामना करना पड़ेगा। इंदिरा-कांग्रेस और जनता पार्टी दोनों को ऊँची जातियों के मतों पर निर्भर रहना पड़ेगा और इनके उम्मीदवार एक-दूसरे के वोट काटेंगे। जनता (एस) किसी हद तक इंदिरा-कांग्रेस के हरिजन और मुस्लिम मतदाताओं का मत प्राप्त करने में सफल हो सकती है। संभावना इस बात की है कि राजस्थान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं की संख्या में वृद्धि के कारण वहाँ पर जनता पार्टी सवसे अधिक स्थान ले जाये। इसका एक कारण यह भी है कि वहाँ प्रशासन जनसंघ के हाथ में है। जनता (एस) और कांग्रेस का गँठजोड़ पिछड़ी जातियों पर निर्भर कर सकता है जिसमें जागृति आ रही है। यदि उस राज्य में श्रीमती गांधी 25 में से 6 स्थान ले लें तो यह उनका सौभाग्य होगा।

पंजाव में जनता (एस), कांग्रेस और कम्युनिस्टों के संयुक्त मोर्चे के साथ गँठजोड़ के प्रश्न पर अकाली दल में फूट पड़ी हुई है और वहाँ के 13 में से 3 या 4 स्थान इंदिरा कांग्रेस को मिल सकते हैं। हरियाणा में उन्हें दो से अधिक स्थान नहीं मिलेंगे और हिमाचल में तो शायद एक भी नहीं मिलेगा। यदि किसी हद तक इंदिरा की हवा चली है तो वह किसी अद्भुत कारण से केवल दिल्ली तक ही सीमित है। और ऐसा लगता है कि वह दिल्ली में सात में से चार स्थान जीत सकेंगी।

अव प्रश्न आता है विहार और उत्तर प्रदेश का, जहाँ का चुनाव निर्णायक सिद्ध होगा। जव श्रीमती गांधी 1971 में अपने वैभव के शिखर पर थीं तो उन्हें विहार में मत तो केवल 40 प्रतिशत मिले पर 54 में से 39 स्थान वह ले गयी थीं। उत्तर प्रदेश में उन्हें 48.57 प्रतिशत मत और 85 में से 73 स्थान मिले थे। इन दोनों राज्यों में उनके समर्थक मतदाताओं में अधिकतर ऊँची जातियों के लोग, हरिजन और मुसलमान थे। परंतु पिछड़ी जातियों ने भी उन्हें समर्थन प्रदान किया था।

यद्यपि किसी भी राज्य में आजकल इस बात के ठीक-ठीक आँकड़े प्राप्त करना वड़ा कठिन है कि विभिन्न जातियों के लोगों की संख्या कितनी है, फिर भी विहार के बारे में जिन आँकड़ों[1] का पता चला है। वह अगले पृष्ठ पर तालिका में दिये जा रहे हैं :

---

1. स्रोत : मुसलमानों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए भारत सरकार के 1965 के आँकड़े। अन्य के लिए भारत सरकार के 1932 के आँकड़े। पर उनमें राज्यों की सीमाओं में 1932 के वाद होने वाले परिवर्तनों के अनुसार संशोधन कर दिया गया है।

कोटि	जाति-समूह	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
ऊँची जातियाँ	ब्राह्मण	4.7
	भूमिहार	2.9
	राजपूत	4.2
	कायस्थ	1.2
	बनिए	0.6
	योग	13.6
बीच की जातियाँ	यादव	11.0
	कुर्मी	3.6
	कोयरी	4.1
	बढ़ई	1.0
	धनुक	1.8
	कहार	1.7
	कंडु	1.6
	कुम्हार	1.3
	लुहार	1.3
	मल्लाह	1.5
	नाई (हज्जाम)	1.4
	टटवा	1.6
	तेली	2.8
	दूसरी पिछड़ी जातियों के लोग	16.0
	योग	50.7
मुसलमान		12.5
अनुसूचित जातियाँ (हरिजन)		14.1
अनुसूचित जनजातियाँ		9.1

जैसा कि इन आँकड़ों से स्पष्ट है, बिहार में जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत भाग बीच की जातियों का है। उत्तर प्रदेश में स्थिति कुछ भिन्न है; वहाँ बीच की जातियों के लोगों की संख्या कुल जनसंख्या की 35 प्रतिशत है और ऊँची जातियों की 25 प्रतिशत। पहली बार श्रीमती गांधी को इस बात का सामना करना पड़ेगा कि दोनों राज्यों में बीच की जातियाँ संगठित हो गयी हैं, विशेषकर बिहार में जहाँ उन्होंने कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में, जो स्वयं हज्जाम हैं, जुझारू शक्ति का रूप धारण कर लिया है। रामलखन यादव (कांग्रेस) के साथ मिलकर, जो कि निर्विवाद रूप से बिहार के यादवों के नेता हैं, कर्पूरी ठाकुर इस बात का भरसक प्रयत्न करेंगे कि बीच की जातियों के अधिकाधिक मत लोकदल और कांग्रेस गँठजोड़ को मिलें। बिहार की स्थिति का मूल इस बात में है कि आज तक ऊँची जातियों का वर्चस्व रहा है, पर अब वह समाप्त हो गया है। राजनीतिक सत्ता पिछड़ी या बीच की जातियों के हाथ में आ गयी है और अब वह छोड़ेंगी नहीं। जब बिहार में पिछड़ी जातियों के लिए नौकरियों के आरक्षण का आंदोलन

चल रहा था, उस समय एक भी राजनीतिक दल या संगठन ऐसा नहीं था जिसमें इस प्रश्न को लेकर फूट न पड़ी हो। आरक्षण के कट्टर विरोधियों को भी सिद्धांत के आधार पर इसका विरोध करने का साहस नहीं होगा।

मध्य जातियों का संगठित होना और उनमें अपनी शक्ति की अनुभूति कोई ऐसी बात नहीं है जो अचानक हो गयी हो। यह उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है जो कई दशकों से चल रही थी 1952 की तुलना में 1967 में कांग्रेस को मिलनेवाले मतों के प्रतिशत-अनुपात में धीरे-धीरे जो कमी हुई है उसका बीच की जातियों के उभरने के साथ गहरा संबंध है। इन जातियों का सबसे पहला मंच लोहिया के नेतृत्व में संयुक्त समाजवादी दल था जो 1967 में बिहार विधानसभा के चुनाव में सबसे बड़े दल के रूप में सामने आया था। सच तो यह है कि यदि चरणसिंह 1950 के दशक के प्रारंभ से तहसील के स्तर के राजनीतिज्ञ से ऊपर उठकर 1967 में राज्य के मुख्यमंत्री के पद पर पहुँचे और 1979 में प्रधानमंत्री बने, तो उसका भी कारण बहुत हद तक यह है कि उत्तर भारत में बीच की जातियों की शक्ति बराबर बढ़ती रही है। इस प्रक्रिया का सूत्रपात संभवतः दूसरे महायुद्ध के काल में हुआ जब अनाज के मूल्य अचानक बढ़ गये थे और लगान का बोझ बहुत हद तक कम हो गया था। बीच की जातियों की आय बढ़ गयी और इनमें अधिकतर कृषक थे। इन लोगों ने धीरे-धीरे ठाकुरों और भूमिहारों के पास बंधक रखी हुई अपनी ज़मीनें छुड़ा लीं। ठाकुर और भूमिहार तो ऐसे ज़मींदार थे जो स्वयं खेती नहीं करते थे और जो अँग्रेज़ों द्वारा छोड़ी गयी राजनीतिक और प्रशासनिक सत्ता में भागीदार बनते जा रहे थे। शासक वर्ग ने बीच की जातियों को राजनीतिक और प्रशासनिक पदों से वंचित रखने का भरपूर प्रयत्न किया, पर वे सदा के लिए तो इसमें सफल नहीं हो सकते थे। वयस्क मताधिकार और शिक्षा का वस्तुतः विस्फोटक प्रसार उन लोगों के सबसे बड़े शत्रु सिद्ध हुए। प्रत्येक चुनाव के बाद संसद और राज्य विधानसभाओं में बीच की जातियों के सदस्यों की संख्या बढ़ती चली गयी। यदि लोकसभा में इनके प्रतिनिधित्व को देखा जाये तो स्थिति यह थी : 1952-57 में 22.4 प्रतिशत; 1957-62 में 29.1 प्रतिशत; 1962-67 में 27.4 प्रतिशत; 1967-71 में 30.6 प्रतिशत; 1971-77 में 33.2 प्रतिशत और 1977-79 में 36 प्रतिशत। बीच की जातियाँ धीरे-धीरे कांग्रेस के प्रभाव से मुक्त होती गयी हैं, क्योंकि कांग्रेस विशिष्ट वर्गों के हितों की रक्षा के प्रति कटिबद्ध दिखायी देती रही है।

बिहार और उत्तर प्रदेश में श्रीमती गांधी को विशेष रूप से एक और मुसीबत पेश आयेगी और वह यह है कि हरिजनों और मुसलमानों के वोट बँट जायँगे। बिहार में कर्पूरी ठाकुर जब तक मुख्यमंत्री रहे, उन्होंने "पिछड़े हुए मुसलमानों" को और हरिजनों के हिस्सों को कांग्रेस से तोड़ लिया। यदि वह अपने गँठजोड़ के कारण बीस प्रतिशत हरिजनों और 25 प्रतिशत मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हो जाते हैं तो वह बिहार के 54 में से कम-से-कम 25 स्थान अवश्य जीत लेंगे। श्रीमती गांधी के लिए बिहार में इस कारण स्थिति और भी बिगड़ गयी है कि जगजीवनराम को प्रधानमंत्री बनने का अवसर नहीं दिया गया। इस कारण बहुत-से हरिजनों और विशेष रूप से चमारों में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गयी है। इस प्रकार यदि श्री जगजीवनराम का दल उत्तर भारत के राज्यों में काफ़ी हरिजन-वोट प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो श्रीमती गांधी पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। बिहार और उत्तर प्रदेश के मुसलमान मतदाताओं

की और भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होगी। यह अकारण ही नहीं था कि श्रीमती गांधी ने बिहार में रामसुंदरदास की सरकार को गिरने से बचाकर अचानक उसकी आलोचना प्रारंभ कर दी थी। कारण यह है कि रामसुंदरदास मंत्रिमंडल को श्रीमती गांधी के दल द्वारा समर्थन दिये जाने के कारण बिहार के मुसलमान उनके विरुद्ध हो गये थे। और फिर जमशेदपुर के दंगों के बाद इंदिरा-कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर आरोप लगाना और बिहार सरकार को समर्थन देना कठिन हो गया था, क्योंकि जनसंघ उस सरकार का एक घटक है। श्रीमती गांधी को परंपरा से अपना समर्थन करनेवाले क्षेत्रों में अधिक वोट प्राप्त करने के लिए अत्यंत कठिन परिश्रम करना पड़ेगा।

चुनावों में श्रीमती गांधी की सफलता की संभावना का विश्लेषण किया जाये तो उन उत्साही लोगों की आशाओं पर तुषारापात हो जायेगा जो अभी से यह घोषणा करने लगे हैं कि इंदिरा गांधी वापस आ रही हैं।

पर राजनीति में निश्चित रूप से कोई बात नहीं कही जा सकती और विशेष-कर जिस प्रकार की राजनीति भारत में प्रचलित है, उसमें निश्चय से कुछ भी कहना संभव नहीं है। यदि श्रीमती गांधी बहुमत प्राप्त नहीं कर सकतीं—और लग रहा है कि वह नहीं कर पायेंगी—तो वह कोई-न-कोई चाल चलकर सत्तारूढ़ हो सकती हैं। चारों ओर सिद्धांतहीनता और किसी भी विचारधारा में विश्वास न होने का वातावरण उनके लिए आदर्श वातावरण है। इससे भी अधिक महत्व इस बात का है कि लोगों को याद है कि वह और उनका बेटा किस चीज़ के प्रतीक है, उन्होंने देश के साथ क्या किया है और यदि वह फिर सत्तारूढ़ हो जायें तो देश का कितना अहित कर सकती हैं।

श्रीमती गांधी और उनका बेटा जिन "मापदंडों और सिद्धांतों" के समर्थक हैं उनका ब्यौरा न्यायमूर्ति शाह ने अपने प्रतिवेदन में दिया है। उसकी कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

> शक्तियों का दुरुपयोग और श्रीमती गांधी के कहने पर केंद्रीय जाँच ब्यूरो द्वारा चार वरिष्ठ अधिकारियों के विरुद्ध झूठी फ़ौजदारी शिकायतें : साक्ष्य से पता चलता है कि श्रीमती गांधी ने अपने अधिकारों का सरासर दुरुपयोग किया। उन्होंने वाणिज्य तथा उद्योग-मंत्रालयों में इन अधिकारियों के विरुद्ध जो कार्रवाई की वह केवल इस कारण की कि उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए ऐसी जानकारी इकट्ठी करने की चेष्टा की जिसका मारुति लिमिटेड के हितों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता था। श्रीमती गांधी ने केंद्रीय जाँच ब्यूरो के निदेशक श्री डी० सेन को इन अधिकारियों के घरों की तलाशी लेने और भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम के अंतर्गत उनके विरुद्ध मामले दर्ज करने के लिए उकसाया। यह कार्रवाई सर्वथा अनुचित थी और बाद में बंद कर दी गयी (पैरा 7.69)।
>
> श्रीमती गांधी चार संबंधित अधिकारियों के विरुद्ध फ़ौजदारी मुक़दमे चलाने और उनके घरों की तलाशी लेने तथा उनका अपमान करने के लिए ज़िम्मेदार थीं (पैरा 7.102)।
>
> दिल्ली प्रशासन ने आंसुका के अंतर्गत कपड़ा-सीमा शुल्क कर्मचारियों को अवैध ढंग से नज़रबंद किया और केंद्रीय जाँच ब्यूरो ने उनमें से चार के विरुद्ध झूठे मुक़दमे दायर किये। आयोग का विचार है कि श्रीमती गांधी ने

उन बारह अधिकारियों की गिरफ़्तारी और नज़रबंदी के लिए अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया, जबकि इनके विरुद्ध कार्रवाई का कोई औचित्य नहीं था और उन्होंने केंद्रीय जाँच ब्यूरो का प्रयोग इनमें से चार के विरुद्ध मुक़दमे चलाने के लिए किया। ये मुक़दमे साक्ष्य के अभाव के कारण वापस लेने पड़े (पैरा 7.134)।

पंजाब नेशनल बैंक के अध्यक्ष श्री टी० आर० तुली ने नेशनल हैरॅल्ड का प्रकाशन करनेवाली कंपनी मेसर्स एसोसिएटेड जर्नल्स को ओवरड्राफ़्ट (जमा धन से अधिक राशि निकालने) की सुविधा देने में प्रक्रिया की अवहेलना की, और शक्ति का दुरुपयोग किया।...इस बात की सावधानी नहीं बरती गयी कि इस प्रकार धन निकलवाने की सुविधा देने से पहले सामान्यतया जो कार्रवाई की जाती है वह की जाये, बल्कि एक मंत्री पी० सी० सेठी के कहने पर उन सिद्धांतों की उपेक्षा करके, जो ऐसे कर्ज़ पर लागू होते हैं, कर्ज़ा दे दिया गया (पैरा 7.156)।

इंडियन एयरलाइंस द्वारा तीन बोइंग 737 ख़रीदने के बारे में निर्णय प्रक्रिया : श्री राजीव गांधी इंडियन एयरलाइंस के अध्यक्ष के कार्यालय में गये और वहाँ पर उन्हें अध्यक्ष के आदेश से वित्त-निदेशक ने वित्तीय लेखा-जोखा बताया। यह प्रक्रिया सर्वथा असाधारण थी...(पैरा 7.202)।

श्री भीमसेन सच्चर और सात अन्य व्यक्तियों को नज़रबंद किया गया : यह निर्णय श्रीमती गांधी ने किया था। उन्होंने अपने पद और अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया...(पैरा 7.250)।

अपर्ण आश्रम ने धीरेंद्र ब्रह्मचारी ने विमान का आयात किया : ब्रह्मचारी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री के घराने से अपने संबंधों का पूरा लाभ उठाया और यह झूठ बोलकर विमान का आयात किया कि यह ख़रीदा नहीं गया बल्कि भेंट के रूप में मिला है (पैरा 10.58)।

गिरफ़्तारियाँ और नज़रबंदी : श्रीमती गांधी क़ानूनी अधिकार के बिना और केवल सत्ता में बने रहने की इच्छा से प्रेरित होकर बहुत-से सम्मानित नागरिकों की गिरफ़्तारी और नज़रबंदी के लिए ज़िम्मेदार हैं (पैरा 11.79)।

डी० आइ० एस० आइ० आर० अधिनियम के अंतर्गत विश्व युवक केंद्र, चाणक्यपुरी, नयी दिल्ली का अधिग्रहण किया गया : यह भवन श्रीमती गांधी के कहने पर केवल इस कारण ले लिया गया था कि भारतीय युवक केंद्र न्यास के प्रबंधकों को न्यास-मंडल का पुनर्गठन करने पर विवश किया जा सके...(पैरा 12.13)।

मैसर्स पंडित ब्रदर्स नाम की फ़र्म को परेशान किया गया। उनके मालिकों की गिरफ़्तारी और अन्य मामले : परेशान करने की कार्रवाइयाँ श्री संजय गांधी के कहने पर की गयीं (पैरा 12.4)।

आपातकाल में श्रीमती गांधी की इतनी अपार शक्तियाँ थीं कि वे मकानों, घरों और औद्योगिक भवनों के गिराने तक ही सीमित नहीं थीं... इस बारे में आयोग के मन में कोई भी संदेह नहीं है कि पंडित ब्रदर्स को परेशान करने की सीधी ज़िम्मेदारी श्री संजय गांधी की है (पैरा 12.71)।

आयोग का विचार था कि दिल्ली के सार्वजनिक मामलों से श्री

संजय गांधी की जो भूमिका थी वह आपात-काल में की गयी ज्यादतियों का एक सबसे बड़ा प्रमाण थी। स्वतंत्र भारत के इतिहास में आज तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता और न इस प्रकार एक व्यक्ति द्वारा सत्ता या शक्तियों के प्रयोग के औचित्य का ही कोई प्रमाण मिलता है। जहाँ तक ज्यादतियों के अन्य उदाहरणों का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि उनके लिए कुछ ऐसे व्यक्ति ज़िम्मेदार थे जो पदारूढ़ थे और जिन्होंने अपनी शक्ति की सीमाओं से बाहर जाकर कार्य किया, पर श्री संजय गांधी का मामला तो ऐसे व्यक्ति का मामला है जिसने तानाशाही ढंग से असीमित शक्तियों का प्रयोग किया, यद्यपि उसे इन शक्तियों के प्रयोग का तनिक भी अधिकार नहीं था। इस देश को आनेवाली पीढ़ियों के लिए तभी सुरक्षित रखा जा सकता है जब लोग इस बात को समझें और इस बात की व्यवस्था करें कि इस प्रकार का अनुत्तरदायी और असंवैधानिक शक्ति-केंद्र न बन पाये जैसा कि आपात-काल में श्री संजय गांधी के इर्द-गिर्द बना हुआ था। ऐसे किसी भी शक्ति-केंद्र को किसी भी रूप में और किसी भी देश में उभरने नहीं देना चाहिए (पैरा 13.311)।

तुर्कमान दरवाज़े का गोलीकांड : श्री संजय गांधी ने श्री भिंडर की ओर से कार्यवाही की और ज़िला मैजिस्ट्रेट और उसके सहयोगियों तथा एक कनिष्ठ मैजिस्ट्रेट पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे गोली चलाने के उस आदेश पर हस्ताक्षर करें जिस पर पहले की तिथि पड़ी हुई थी (पैरा 14.178)।

आयोग की राय...जिन परिस्थितियों में आपात-काल की घोषणा की गयी और जिस आसानी से ऐसा करना संभव हो सका वह देश के नागरिकों के लिए एक चेताकनी होनी चाहिए। श्रीमती गांधी ने इस बारे में अपने मंत्रिमंडल से परामर्श नहीं किया, यद्यपि परामर्श करने का समय था। इस बात का समुचित साक्ष्य मौजूद है कि श्रीमती गांधी 22 जून से ही आपात-काल लागू करने की योजना बना चुकी थीं...यह निष्कर्ष अनिवार्य है कि प्रधानमंत्री ने अपने विरुद्ध न्यायिक निर्णय से बचने के लिए इस प्रकार का राजनीतिक निर्णय निराश होकर किया, क्योंकि उनके सामने और कोई चारा नहीं था (पैरा 15.5)।

आज की और आनेवाली पीढ़ियों के प्रति राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि इस बात की व्यवस्था की जाये कि भविष्य में प्रशासनिक ढाँचे को उस प्रकार ध्वस्त न किया जा सके जैसे कि किसी एक व्यक्ति, या व्यक्तियों के समूह, या सरकार के आस-पास घूमनेवाले लोगों के हित में और उनके स्वार्थ की खातिर किया गया (पैरा 15.6)।

समाचारों पर सैंसर और जिस ढंग से प्रचार-साधनों का उपयोग किया गया वह सरकार और इस महान और बड़े देश की जनता के लिए एक चेतावनी होनी चाहिए कि जिस प्रकार समाचारों पर परदा डाला गया उसका लोगों के जीवन और उनके विचारों पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है (पैरा 15.7)।

यह प्रबंध करना सरकार की विशेष ज़िम्मेदारी है कि अति-संवैधानिक शक्ति-केंद्र न बनने पायें और जब भी इनका पता चले तो उन्हें निर्ममता से समाप्त कर दिया जाये (पैरा 15.21)।

पर श्रीमती गांधी यह कहती फिरती हैं कि उन्होंने और उनके पुत्र ने जो कुछ भी किया वह जनता और देश के कल्याण के लिए था। उनमें शाह आयोग के सामने यह कहने का दुस्साहस था कि जब उन्होंने भारत में आपात-स्थिति की घोषणा की तो वैसी ही परिस्थितियाँ थीं जैसी कि 1958 में फ्रांस में व्याप्त थीं जब जनरल द गाल सत्तारूढ़ हुए (उनका शाह आयोग के नाम 21 नवंबर, 1977 का पत्र)। आज उनके साहित्यिक दलाल यह कहने लगे हैं कि फिर वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। यह कहा जा रहा है कि वह द गाल से भी महान हैं और वही सारी समस्याओं का समाधान खोज सकती हैं।

इस महिला के बारे में क्या कहा जाये ? यह विवादास्पद है कि इन्हें अत्याचारियों के वर्ग में रखा जाना चाहिए। एक परिभाषा के अनुसार अत्याचारी "ऐसे शासक को कहेंगे जो क़ानून, प्रथा और अपने समय तथा समाज के मापदंडों की मर्यादा से बाहर जाकर शक्तियों का प्रयोग करता है और जो अपनी सत्ता को बनाये रखने या उसमें वृद्धि करने के लिए ऐसा करता है।" (मोरिस लेटी, टिरैनी : ए स्टडी इन द एब्यूज ऑफ़ पावर)। इस परिभाषा के अनुसार तो श्रीमती गांधी इसी वर्ग में आती हैं।

पर उन्होंने कभी भी अपने कामों के लिए पश्चाताप नहीं दिखाया। इसके विपरीत उन्होंने बड़ी हेकड़ी से अपने और संजय के विरुद्ध जाँच आयोगों के निर्णयों को "राजनीतिक प्रचार" की संज्ञा दी है। इससे भी बुरी बात यह है कि वह बड़ी "अनुकंपा" से यह कहती फिर रही हैं कि यदि वह फिर सत्तारूढ़ हो गयीं तो किसी के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से कार्य नहीं करेंगी और मित्रों और शत्रुओं के प्रति समान दया दिखायेंगी। वह कितनी दयालु और लोकतांत्रिक हैं ! हिटलर ने एक बार कहा था कि कोई भी राष्ट्र दूसरी बार धोखा नहीं खाता। काठ की हाँडी तो एक ही बार चढ़ती है। हम यही आशा कर सकते हैं कि यह उक्ति सच्ची प्रमाणित होगी।

•